देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

वर्ष : १ अंक : १ जनवरी-जून २००८

साहित्य, कला, संस्कृति,
आयुर्वेद, मानविकी
एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

इंटीग्रेटेड सेन्टर फॉर ग्लोबल स्टडीज, उरई जालौन (उ०प्र०) भारत द्वारा प्रकाशित

पंजीकरण नं. : यू.पी.एच.आई.एन. ३५३४६/२४.०१.२००६-टी.सी.

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

डॉ० शकुन्तला मिश्रा पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ • हिन्दी विभाग

वर्ष : १ | अंक : १ | जनवरी-जून २००८

प्रधान सम्पादक

डॉ. चन्द्रमा सिंह

✦

मुख्य सम्पादक

डॉ. सुरेश एफ कानडे

डॉ. कश्मीरी देवी

प्रा. योगेन्द्र बेचैन

डॉ. रोशन लाल जिन्टा

✦

कला सम्पादक

डॉ. नीना शर्मा 'हरेश'

✦

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ. शंकरलाल

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

इंटीग्रेटेड सेन्टर फॉर ग्लोबल स्टडीज, उरई जालौन (उ. प्र.) भारत द्वारा प्रकाशित

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : १ *अंक : १* *जनवरी-जून २००८*

सहयोग राशि : ६० रुपये यू. एस. २५ $ यूरो २० $

व्यक्तिगत सदस्यों के लिये

वार्षिक सदस्यता : १२० रुपये

पाँच वर्ष के लिये : ६०० रुपये

आजीवन : ३००० रुपये

संस्थाओं के लिये

वार्षिक सदस्यता : ३०० रुपये

प्रति अंक : १५० रुपये

पाँच वर्ष के लिये : १५०० रुपये

आजीवन : ३००० रुपये

प्रकाशक :

इंटीग्रेटेड सेन्टर फॉर ग्लोबल स्टडीज

उरई जालौन (उ. प्र.) भारत

मुद्रक :

महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स

१५, आजाद नगर, उरई (जालौन) उ. प्र.

विशेष : सभी भुगतान 'कृतिका' के नाम नकद/मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट/चेक द्वारा उरई (ORAI) के पते पर भेजें। कृपया चेक के साथ बैंक कमीशन के रूप में निश्चित अतिरिक्त राशि जोड़ दें।

सम्पादन - अवैतनिक *प्रकाशन - अव्यावसायिक*

❒ विधिक वादों के लिये क्षेत्र उरई न्यायालय के अधीन होंगे।

❒ कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।

❒ शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुर्नप्रकाशन के लिये संपादक मण्डल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के संपादन प्रकाशन व संचालन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : १ | अंक : १ | जनवरी-जून २००८

क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. चन्द्रमा सिंह
नयकागाँव जी. टी. रोड
सासाराम (बिहार) ८२१११५
सम्पर्क - ०६१८४-२२३२७१, ०६४३०८६५४५१
Email : chandrama_kritika@rediffmail.com

डॉ. कश्मीरी देवी
म. नं. १६५१/21 हैफेड चौक
रोहतक, हरियाणा १२४००१
सम्पर्क - ०६८१२३८४८८८
Email : kashmiridevi.2008@rediffmail.com

डॉ. रोशन लाल जिन्टा
वरिष्ठ प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हिमाचल प्रदेश)
सम्पर्क - ०६८१६१०८२५७
Email : roshanlal.2008.42@rediffmail.com

डॉ. सुरेश एफ कानडे
८ साई धाम अपार्टमेंट, दादा जी कोंडदेव नगर
गंगापुर रोड, नासिक ४२२०१३ (महाराष्ट्र)
सम्पर्क - ०६४२२७६८१४१
Email : sureshkande.2008@rediffmail.com

डॉ. शंकरलाल
एस.बी.डी.एम.बी.
मेजा रोड, इलाहाबाद (उ. प्र.)
सम्पर्क - ०६७६३८५६७७८, ०६६३५५१२७७०
Email : drshankarlal.2008@rediffmail.com

डॉ. नीना शर्मा 'हरेश'
व्याख्याता, हिन्दी विभाग
आनन्द आर्ट्स कालेज, गुजरात २५०२६०
सम्पर्क - ०६६२५०१६१६०, ०६८२४४६०५१६
Email : neenasharma.2008@rediffmail.com

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

१७६०, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र. २८५००१

सम्पर्क - ०६४१५६२४८८८, ०६८८६५१७६५०, ०६६१६१२३७६३, ०६४५०४८०८७०, ०६१८४-२२३२७१

Email : kritika_orai@rediffmail.com
Email : virendra_kritika@rediffmail.com
Email : lokkalyansansthanorai@rediffmail.com

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृति अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। कृतिका, इंटीग्रेटेड सेन्टर फॉर ग्लोबल स्टडीज, उरई जालौन (उ. प्र.) भारत द्वारा प्रकाशित अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक रिसर्च जनरल है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस रिसर्च जनरल का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ-साथ सात समुन्दर पार यू.एस.ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निदेशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हो बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर अनुपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर समय-समय पर कृतिका परिवार विषय- विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकालेगा जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकर्मियों को समय-समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों/शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- कृतिका साहित्य, कला संस्कृति आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय-विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जायेंगी।
- कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिये प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र/आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें पुस्तक का सन्दर्भ, पत्र-पत्रिका का सन्दर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र/आलेख की शब्द सीमा दो हजार शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों/पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियां एवं लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेपण पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- किसी भी दशा में शोध पत्र/आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति/अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है ! कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भलीभाँति तय कर लें कि यह शोधपत्र/आलेख/रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है। और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नहीं। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित अथवा चाँदनी/कृति देव १० में १४ फान्ट साइज में पेजमेकर साफ्टवेयर के 6.5 वर्जन में टाइप करके साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें।
- कृतिका की गोपनीय समिति द्वारा चयनित शोध पत्रों/आलेखों में से श्रेष्ठ रचना को पारतोषिक देकर सम्मानित किया जायेगा।

– कृतिका परिवार

सम्पादकीय

सम्पूर्ण दुनिया आज उत्तर-आधुनिकता के संक्रमण काल के दोर से बड़ी तेज रफ्तार से बदल रही है। अगर १९८० का दशक यूरोप और अमेरिका में उत्तर-आधुनिकता की अवधारणा था तो सन् १९९० का दशक वैश्वीकरण का है। अब तो यह भी सोचा जाने लगा है कि वैश्वीकरण के बाद का युग उत्तर-वैश्वीकरण का युग होगा। वैश्वीकरण ने इस दौर को नई हवा दी है। जिस गति से उत्तर-आधुनिक समाज उभर रहा है। उसी गति से समानान्तर रूप से सांस्कृतिक बहुलवाद भी अपनी पहचान बनाने के लिये तीव्र गति से आन्दोलन का रूप ले रहा है। उत्तर-आधुनिक समाज स्थानीय समाज के विपरीत है, वह उसे डकार जाना चाहती है और स्थानीय समाज है जो प्राण पण से अपनी पहचान बनाये रखना चाहता है। इसके लिये यह लड़ाई जीवन-मरण की लड़ाई है। ऐसी अवस्था में उत्तर आधुनिकता की प्रासंगिकता का प्रश्न हमारे देश में बहस का मुद्दा है। कुछ विश्लेषकों की आमधारणा है कि भारतीय समाज दोराहे पर खड़ा है वह आधुनिक भी है और उत्तर-आधुनिक भी। वहीं कुछ दूसरे विचारक सोचते हैं कि अभी आधुनिकता इस देश में अधूरी है और उत्तर-आधुनिकता के आने में अभी थोड़ा और समय लगेगा। इस बहस के होते हुए भी एक बात निश्चित है कि उत्तर-आधुनिकता के निर्माण में कई प्रक्रियायें काम करती हैं। इसमें समाज के एक भाग में आधुनिकता का आना सम्भव है और इसी समय दूसरा भाग पारम्परिक और रूढ़िवादी रह सकता है। उत्तर-आधुनिकता कभी भी एक बारगी नहीं आती। यह टुकड़ों में धीरे-धीरे आती है।

उत्तर आधुनिकता एक ऐसी विचारधारा है जिसमें कलाकार हैं, साहित्यकार हैं, दार्शनिक हैं और शायद अव्वल स्थान पर भाषाविद् भी हैं। सबने मिलकर उत्तर-आधुनिकता को भानुमती का कुनबा बना दिया है। हालांकि समाज विज्ञानों में उत्तर आधुनिकता का प्रवेश अभी नहीं हुआ है। समाजशास्त्र से तो उत्तर-आधुनिकता अभी कोसों दूर है। क्योंकि यहाँ हाल के वर्षों में न तो कोई बोड्रिलार्ड हुआ है और न ही कोई ल्योतार और न किसी डेनियल बैल या गोर्ज ने उत्तर-उद्योगवाद की ही चर्चा की है। हमें जाति बिरादरी और गाँव चौपाल से ही फुरसत नहीं मिली है। यह बात दूसरी है कि भारतीय समाज में कई अन्य क्षेत्रों में उत्तर-आधुनिकता का समर्थन किया जा रहा है और उसी बुलंदी से विरोध भी। इतना तो निश्चित है कि जिस आधुनिकता को हम बीसवीं सदी में इस देश में लेकर आये वह आधुनिकता आज पिछड़े वर्गों को उपेक्षा की दृष्टि से देख रही है। अगर आधुनिकता इन वर्गों के दुःख दर्द के प्रति ऐसे ही बेखबर रही, तब इसका विकल्प उत्तर-आधुनिकता ही है। क्योंकि 'उन्नीसवीं सदी में जिस तरह पश्चिम से राष्ट्रीयता की अवधारणा लेकर हमने अपनी राष्ट्रीयता गढ़ी, उसी तरह बीसवीं शताब्दी में लोकतंत्र और तलघरों में घुटते हुये लोगों ने पहली बार समानता और स्वतंत्रता की रोशनियाँ देखीं। आज आवाजों को अनसुना करना असंभव हो गया है। इन्हीं आवाजों में सबसे ऊँची आवाजें हैं दलितों और स्त्रियों की, सही अर्थों में वे ही समाज के सर्वहारा हैं। जो कुछ समाज में हो रहा है उससे साहित्य और रचना का बचे रहना सम्भव कैसे हो सकता है ? या सारी दुनिया का जो केन्द्रीय विमर्श है, वह हमारे यहाँ कब तक रहता ? इन तथ्यों एवं विश्लेषणों से इतना तो स्पष्ट है कि उत्तर आधुनिकता जो विकसित देशों का आज मुहावरा है, भारत के गरीब-गुरूबों का एक मात्र

विकल्प है। आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकता की बहस से परे जाकर सोचें तो उत्तर आधुनिकता परम्परावादी व्यवस्था की अवधारणा को स्वीकार नहीं करती और इसका विश्वास सड़ी-गली रूढ़ि एवं जर्जर हो रही परम्पराओं के विश्वास विखण्डन से है। आज का विखंडन यह मानता है कि साहित्य भी दर्शन है, सोचने का एक तरीका है (बकौल 'देरिदा')। यह सोच समाज सापेक्ष होती है। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार हमारी सोच और चिंतन में भी परिवर्तन होते रहते हैं। चूंकि समय के साथ-साथ मूल्य, मर्यादाएं, मिथक और मान्यताएं भी बदलती रहती हैं। अतः कालक्रम से साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता है। किंतु मूल चिंतन की वह अंतर्धारा फिर भी बनी रहती है जिसे साहित्य और परम्परावादी संस्कृति की मुख्यधारा कहते हैं। इसलिये अब समय आ गया है कि परम्परावादी संस्कृति का अध्ययन हम उत्तर-आधुनिकता के विशेष संदर्भ में करें।

उत्तर-आधुनिकता के आविर्भाव का बहुत बड़ा कारण यह समझा जाता है कि यह आधुनिकता का विरोधी है। ज्ञानोदय के बाद जब यूरोप में आधुनिकता स्थापित हुई तब उद्विकास की प्रक्रिया से इसमें कुछ दोष आ गये। इन दोनों की आलोचना में ही उत्तर-आधुनिकता का जन्म हुआ। भौतिकता, धर्मनिरपेक्षता, व्यक्तिवाद, पर्यावरण के साथ छेड़छाड़ अर्थात मनमाना व्यवहार कुछ ऐसे प्रमुख दोष हैं। जिन्होंने इसे आलोचना का पात्र बनाया। इन दोनों की बात करना उचित है। लेकिन उत्तर-आधुनिकता सदैव दोषों के निकालने में ही निपुण हो, ऐसा नहीं है। इसके कुछ पहलू ऐसे हैं जो इसे रचनात्मक भूमिका भी प्रदान करते हैं। इस अर्थ में उत्तर आधुनिकता रचनात्मक भी है और यह आधुनिकता के निषेधक तत्वों का विकल्प भी प्रस्तुत करती है। हमारे देश में उत्तर-आधुनिकता आ गई है, आने वाली है या अभी नहीं आई, इस पर विमर्श जारी है परन्तु इतना तो सुनिश्चित है कि उत्तर आधुनिकता सामान्यजन में आशावादी दृष्टि लिये हुये है और उत्तर-आधुनिकता के समर्थकों को भरोसा है कि जिस तरह आधुनिकता ने विज्ञान और विकास के नाम पर अपना बौद्धिक और राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया है वैसे ही उत्तर-आधुनिकता मनुष्य की मुक्ति के रूप अगणित अल्पसंख्यक समूह, उदाहरण के लिये, पिछड़े और कमजोर वर्ग, स्त्रियां और नाना प्रकार के सम्प्रदाय आगे आ पायेंगे। जिसमें विखण्डन, संस्कृतियों की बहुलता और समूहों की विविधता है अपने आपको स्थापित कर लेगी। इसमें हजारों-हजार फूल खिलेंगे।

ज्ञान अपने आपमें एक वस्तु है। इसलिये हम वस्तु नहीं खरीदते, ज्ञान खरीदते हैं। ज्ञान उत्पादन का साधन है। ज्ञान शक्ति है। ज्ञान का उद्देश्य सत्य की खोज करना नहीं हैं। इसका उद्देश्य अधिकतम उत्पादन करना है। अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण पहलू उत्पादन द्वारा जुटाया गया प्रमाण है। ज्ञान व विज्ञान वह है जो समग्र सृष्टि के जीवन का कायाकल्प कर दे, उसे नई ऊर्जा से जीवंतता प्रदान कर दे, उपस्थित मानव समुदाय की दृष्टि बदलकर दृष्टि जगत की आम जनों के लिये महत्व की वस्तु बना दे। जब हम विज्ञान में कोई अवलोकन करते हैं तो इसकी अनुभूति हमें इन्द्रियों द्वारा होती है। यहीं पर विज्ञान का स्थान तकनीक तंत्र ले लेता है। तकनीक विज्ञान का व्यावहारिक स्वरूप है। उद्योग में तकनीकी का अर्थ अधिकतम उत्पादन के लिये किया जाता है इसमें सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् जैसी कोई बात नहीं होती। तकनीक में सबसे महत्वपूर्ण बात निपुणता या दक्षता की होती है। किसी भी तकनीकी को उत्कृष्ट तब कहा जाता है जब इसका परिणाम श्रेष्ठ हो यानी उसकी उत्पादकता (नवीन सृजनात्मकता) में वृद्धि होती है। तकनीक से तात्पर्य (उद्देश्य) मात्र सत्य की

खोज करना ही नहीं बल्कि इसका उद्देश्य उत्पादन में निपुणता से है। इसके द्वारा निवेश और उपज के अनुपात को बनाये रखा जाता है। वैज्ञानिकों और तकनीकी व्यक्तियों को बड़ा वेतन इसलिये नहीं दिया जाता कि वे सत्य की खोज करें। बल्कि यह वेतन उन्हें शक्ति लाने के लिये दिया जाता है। तकनीक में शक्ति होती है। यह उत्पादन करती है और इसलिये आज के शोध एवं अनुसंधान में इस पद्धति की प्रमुख भूमिका रहती है। वर्तमान की शिक्षण संस्थाओं में जब तकनीक की चर्चा होती है तब इसकी उत्पादन दक्षता पर जोर दिया जाता है। अब शिक्षा में दबाव, नैतिकता, आदर्शों की अपेक्षा कुशलता और निपुणता पर अधिक होता है।

किसी भी तकनीकी का उद्देश्य उत्पादन को बढ़ाना होता है। तकनीकी सत्य की खोज के मसले को नहीं छूती। सत्य की खोज न तो खाने के काम आती है, न पहिनने के। इसका बहुत बड़ा लक्षण इसकी उत्पादन में निपुणता है अर्थात जो उत्पादन में वृद्धि करे वही सत्य है, शुभ है, सुन्दर है। क्योंकि अब आने वाली युवा पीढ़ी को निपुणता से युक्त तकनीकी का प्रयोग करना होगा और इस तरह उन्हें अपने जीवन में ही तकनीकी के नये प्रयोगों का प्रशिक्षण मिलता रहेगा। हमारी समझ में तकनीकी का ज्ञान तो एक प्रकार का सतत या निरन्तर ज्ञान है। अनुसंधान को उपयोगी बनाने के लिये और संसार को समझने के लिये वैश्वीकरण को बहुलवादी होना ही होगा। बहुलवादी से तात्पर्य संसार की विभिन्नता से है। वैश्वीकरण के परिणाम बहुलवादी हैं और इसका साहित्य, कला, संस्कृति, इतिहास, दर्शन, मानविकी, सामाजिक प्रक्रियाओं और व्यवहार से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

शोध एवं अनुसंधान के अनेक रूप होते हैं इसकी सीमायें अनन्त एवं इसका विस्तार अथाह होता है हम उसे न तो पूर्ण रूप से और न ही अन्तिम रूप से अर्जित कर सकते हैं। हम सब ज्ञान की उस परम्परा में अपना योगदान देकर उसको बढ़ा सकते हैं। ज्ञान की इसी परम्परा एवं आकांक्षा को आगे बढ़ाने का कार्य कृतिका युवा शोध मंच करेगा। शोध रूपी ज्ञान का आकाश असीम है। उसका पार पाना कहाँ सम्भव है फिर भी प्रत्येक पक्षी रूपी मनुष्य अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसमें उड़ता है। कृतिका का यह भी प्रयास होगा कि वैश्वीकरण एवं भौतिकता के इस युग में युवा शक्ति मौलिक एवं सकारात्मक सृजन की ओर अग्रसर हो, वर्तमान की यह एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। जो बदलता नहीं वो टूट जाता है। वैश्वीकरण के इस संक्रमण काल में हमें इन परिवर्तनों को अपने अनुकूल बनाने के लिये वैज्ञानिक और तकनीक सोच को विकसित करना होगा। परम्परा से चली आ रही प्राचीन मान्यताओं, धार्मिक आडम्बर, रूढ़िवादिता, अंधविश्वासों, लौकिक-अलौकिक चमत्कारों एवं कूप मंडूकता से निकलकर एक नई वैज्ञानिक सोच तथा तकनीक को विकसित करना होगा। भूमण्डलीकरण बनाम वैश्वीकरण का रूख हालांकि कठोर एवं हृदयहीन है परन्तु इसका फलक तार्किक एवं तकनीक से युक्त है। इससे मुकाबला करने के लिये हमें अपने आपमें इसके तर्कों एवं यथार्थ को आत्मसात करना होगा।

शोध एवं अन्वेषण से हमारा तात्पर्य एक विशिष्ट ज्ञान से है एक ऐसा ज्ञान जिसका विश्लेषण किया जा सके, जो तथ्यपूर्ण हो जिसकी जांच-पड़ताल की जा सके अर्थात जिसका निरीक्षण या परीक्षण किया जा सके और उसके कार्य-कारणों को एक दूसरे से जोड़ा जा सके। अर्थात जो पहले, सनातन शाश्वत सत्य था वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उसमें कितनी वास्तविकता एवं यथार्थ है। आस्था, विश्वास, प्रार्थना या उपवास, पूजापाठ की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कितनी प्रासंगिकता है इस पर भी हमें शिद्दत के साथ विचार करना होगा। कृतिका परिवार

रचनाकारों, युवा अध्येताओं एवं शोधार्थियों से अपेक्षा करता है कि उनका सामाजिक अनुसंधान ऐसा होना चाहिये जो इन्टर डिसीप्लनरी हो और उसमें भौतिकवादी तथा सामाजिक तथ्यों का समावेश व्यावहारिक धरातल पर अनुपयोगी हो। इसलिये रचनाकारों के लिये यह जरूरी हो जाता है कि वह अनुसंधान की दिशा को सिद्धान्त और आनुभविकता दोनों को मिलाकर सुनिश्चित निष्कर्ष तक ले जाएं। युवा अन्वेषक यदि सिद्धान्त की आनुभविकता और आनुभविकता को सिद्धान्त में जोड़ने की कोशिश करें तो उनका ये अनुसंधान समाज के ज्ञान को प्राप्त करने में कामयाब होगा।

वैज्ञानिक जागरूकता एवं समसामयिक मौलिक सोच की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुये कृतिका का यह अंक आपके समक्ष प्रेषित है। आज के वैश्विक परिदृश्य में साहित्य की सीमा और व्यापक हुई है। यह अपनी शास्त्रीय सीमा को छोड़कर मानव जीवन के सामाजिक दर्शन और समाजशास्त्र से जुड़ गया है। सोवियत विखंडन के साथ 'इतिहास' और 'विचारधाराओं' के अंत की तमाम घोषणाओं और दावों के बावजूद समकालीन साहित्य के अनेक वादों, विचारों और विचारधाराओं की श्रृंखला सृजित की है। उत्तर आधुनिकता, नारी चेतना और दलित विमर्श की तमाम विचारधाराएं साहित्य की इसी रचनात्मक ऊर्जा के परिणाम हैं। वास्तव में देखा जाये तो लेखन केवल कलम घसीटने का नाम नहीं होता। वरन उसे एक प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। लेखन की इस प्रक्रिया में किसी प्रकार का घाल-मेल या दुराव-छिपाव नहीं चलता, अन्दर तक महसूस करके ही, अन्तरतम की गहराई तक जाकर ही अभिव्यक्ति को अन्जाम देना वास्तविक लेखन होता है। दिखावे के लिये कुछ और तथा अन्दर-ही-अन्दर कुछ और का होना लेखन प्रक्रिया को प्रदूषित करता है अर्थात उसके बनावटीपन की झलक कहीं न कहीं वाणी एवं कर्म के द्वारा झलक ही जाती है। वर्तमान का लेखन इसी परम्परा का वाहक बनता नजर आ रहा है। दलित विमर्श, स्त्री चिंतन तथा उत्तर-आधुनिकता पर ऐसे कलम-घसीटू लेखकों की कमीं नहीं है साथ ही विशेषांक के नाम पर एक-दो रचनाओं के अलावा यहाँ कुछ नहीं दिखता है। दरअसल अपनी लेखनी के प्रति ईमानदार लेखक (सृजनकर्ता) मुखौटाधारी नहीं हो सकता वह जो है जैसा है, वही उसके लेखन के माध्यम से प्रकट हो, यही सृजन की सच्ची पीड़ा और यही रचनाधर्मिता का तकाजा है।

कृतिका के क्रियान्वयन एवं मूर्तीकरण की प्रक्रिया में रचनाओं के चयन में सम्पादक मण्डल के सदस्यों के बीच गुणवत्ता, मौलिकता एवं संख्यात्मकता को लेकर एक लम्बा विमर्श जारी रहा। देश एवं विदेश के रचनाकारों की इतनी अधिक रचनाएं आ गयी थीं कि जिनका चयन करना सम्पादक मण्डल के लिये निर्णय के कठिन दौर से गुजरना था। (हमारे पास तीन से चार अंक तक पर्याप्त सामग्री थी) परन्तु सर्वसम्मत से विषय विशेषज्ञों (भारतीय एवं अप्रवासी मित्रों) के सर्वमान्य स्वीकृति द्वारा ही इन शोधपत्रों/आलेखों को गुणवत्ता की दृष्टि से इस अंक में स्थान दिया जा रहा है। जिन अध्येताओं, युवा शोधार्थियों एवं रचनाकारों की रचनाएं इस अंक में नहीं जा पायी हैं। उन्हें इसकी सूचना दे दी गयी है। भारत में रहने वाले अपने रचनाकारों एवं पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे हमारे क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल के सदस्यों से सम्पर्क कर रचनात्मक सहयोग एवं पत्रिका की प्रति उनके द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। विदेश में रहने वाले अप्रवासी रचनाकार एवं पाठक कृतिका सम्पादक मण्डल के अप्रवासी मित्रों से रचनात्मक सहयोग तथा प्रति (कृतिका) प्राप्त कर सकते हैं। पत्रिका प्राप्त करने के लिये कृतिका के प्रधान कार्यालय से भी सम्पर्क स्थापित कर इसकी प्रति सुरक्षित करवा सकते हैं।

– सम्पादक मण्डल

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : १ | अंक : १ | जनवरी-जून २००८

अनुक्रमणिका

	शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
सम्पादकीय			v-viii
सुलगते सवाल			
१.	ब्राह्मणत्व या ब्राह्मणवाद	भारतेन्दु श्रीवास्तव	१-३
भूमण्डलीकरण			
२.	भूमण्डलीकरण : पूंजीवाद तथा साम्राज्यवाद की साजिश	डॉ. जार्जकुट्टी वट्टोत्त	४-११
३.	भूमण्डलीकरण के दौर में कथा सत्यनारायण की प्रासंगिकता	दिव्या माथुर	१२-१६
४.	भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ और हिंदी भाषा	प्रा. डॉ. सतीश यादव	१७-२१
५.	भूमण्डलीकरण से संस्कृति का सपाटीकरण एवं भाषा का महत्व	डॉ. सुरेश एफ कानडे ममता यादव	२२-२७
उत्तर-आधुनिकता			
६.	आधुनिकता, उत्तरोत्तर आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता की उत्तरोत्तरता	डॉ. सत्येन्द्र कुमार दुबे	२८-३४
स्त्री विमर्श			
७.	नारी और उसका अस्तित्व	डॉ. कश्मीरी देवी	३५-३६
८.	नये सन्दर्भ तलाशती स्त्री	डॉ. प्रतिमा यादव	३७-३९
९.	हिन्दी कथा साहित्य में दलित स्त्री-विमर्श	डॉ. श्रीमती हेमा देवरानी	४०-४४
१०.	आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी चिंतन के विविध आयाम	डॉ. सुनीता शर्मा	४५-५५
११.	हाशिए की औरत : एक चर्चा प्रेमचंद के बहाने	डॉ. नीना शर्मा 'हरेश'	५६-५८
१२.	संत साहित्य और नारी विमर्श	डॉ. श्रीपति कुमार यादव	५९-६४
अध्यात्म एवं दर्शन			
१३.	वेद एवं विज्ञान की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता	डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी	६५-७१
१४.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अष्टांगिक मार्ग और योग की प्रासंगिकता एवं उपादेयता	डॉ. उर्मिला कुमारी	७२-७५

संगीत

१५.	भारतीय संगीत-एक वैज्ञानिक विवेचन	डॉ. ज्योति सिन्हा	७६-७८

शिक्षा दर्शन

१६.	उत्तर प्रदेश में उच्च शिक्षा में मुस्लिमों की वर्तमान स्थिति : एक विश्लेषण	प्रा. योगेन्द्र वेचैन	७६-८३

इतिहास दृष्टि

१७.	१८५७ का विद्रोह और नागपुर	डॉ. (श्रीमती) शुभा जौहरी	८४-८७
१८.	मौर्य काल से गुप्त काल तक के सिंचाई के साधनों का एक वैज्ञानिक अवलोकन	डॉ. शंकरलाल यादव	८८-९२
१६.	ओरछा स्थित बुन्देला शासकों की छत्रियां एवं स्थापत्य कला	डॉ. रमेश चन्द्र यादव	९३-९७

नागरिक समाज

२०.	भारत में मानव अधिकार : दशा एवं दिशा	डॉ. किशन यादव	९८-१००

भाषा एवं साहित्य

२१.	जर्मन भाषा का निराला साहित्यकार या पॉल और उसका भारत चित्र	डॉ. तिलक राज चोपड़ा	१०१-१०६
२२.	आषाढ़ का एक दिन में पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	१०७-११९
२३.	बिहार में भोजपुरी आन्दोलन की शुरूआत	डॉ. प्रभा कुमारी	१२०-१२७

लोक कला/लोक साहित्य

२४.	लोक संस्कृति के आइने में अरूणाचल प्रदेश का लोक साहित्य	डॉ. हरि निवास पाण्डेय	१२८-१३२

बीच बहस में

२५.	अंतर्जातीय, अंतर्धर्मीय व अंतर्क्षेत्रीय विवाहों की सामाजिक समरसता में कारगर भूमिका	डॉ. प्रदीप शर्मा "स्नेही"	१३३-१३५

अछूते सन्दर्भ

२६.	बच्चों में सृजन-शक्ति का विकास	डॉ. निर्मल कौशिक	१३६-१३८

शोधार्थी

२७.	वैश्विक परिप्रेक्ष्य में स्वयंसेवी संगठन और उनकी भूमिका	मुकेश भूषण, सहदेव सिंह	१३९-१४५

पुस्तक मंच

२८.	आधी दुनिया के यथार्थ का संकल्प	डॉ० मधुरबाला यादव	१४६
२६.	प्रकृति से प्रकृति का सनातन मिलन	डॉ० कुमुदिनी एम पाटील	१४७
३०.	पर्यावरण के बहाने समाज को कुछ समझाने का प्रयास	डॉ० अर्जीत सिंह राही	१४८
३१.	मुखौटे में छिपा सत्य	डॉ० कुमारेन्द्र सिंह सेंगर	१४९
३२.	सरकारी योजना का आंकलन	डॉ० रौशन कुमार	१५०
३३.	नई राह दिखाता संघर्ष	डॉ० उमारतन	१५१
३४.	अँधेरी सुरंग में रोशनी फैलाने की प्रतिबद्धता	डॉ० रोशनलाल जिन्टा	१५२
३५.	क्या तुम्हें इसका एहसास है ?	डॉ० आलोक रंजन	१५३

ब्राह्मणत्व या ब्राह्मणवाद

❒ भारतेन्दु श्रीवास्तव

इस शोध आलेख का उद्देश्य है कि हिन्दू समाज में जो जातिवाद की कुरीति है, उसका पर्दाफाश हो। निस्संदेह जाति ने हिन्दू समाज के हाथ में हथकड़ी और पैर में बेड़ी डालकर उसकी उन्नति और समृद्धि पर विराम चिन्ह लगा दिया है। जातिप्रथा, भारत में निर्मित सामाजिक प्रणाली, समाज को व्यवस्थित करने के लिये बनाई गई, बाद में उसको धार्मिक रूप दे दिया गया। ऋग्वेद् में पुरुषसूक्त (१०.९०.११-१२) में सर्वप्रथम जाति का उल्लेख आया है। वेद कहता है :-

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिथा व्यकल्पयन,
मुख किमस्य को बाहू का उरू पादा उच्यते।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहू राजन्यः कुतः,
उरू तदस्सय यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।

(इसका अर्थ है - विराट पुरूष कितने प्रकारों से उत्पन्न हुए ? उनके मुख, हाथ, पाँव और और जंघाएँ आदि कौन हुए ? (इसके उत्तर में कहा है कि) उनका मुख ब्राह्मण, भुजा क्षत्रिय और जंघाएँ वैश्य तथा पैर शूद्र हुए।)

इसी सूक्त के चौदहवें श्लोक में कहा है :-

नाभ्या असीदन्तरिक्षं शीषर्णो द्यौः समवर्तत,
पदयां भूमिदिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन।

अर्थात् इनके (विराट पुरूष के) शिर से स्वर्ग, नाभि से अंतरिक्ष और चरणों से पृथ्वी पैदा हुई, कान से लोक और दिशाओं का निर्माण हुआ।

उपर्युक्त सूक्त में काव्य की भाषा में वेद निर्माता कह रहे हैं कि विराट पुरूष से ही भौतिक और मानसिक जगत आया है। यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में जाति का अस्तित्व रहा होगा तभी तो वेदर्षि ने विराट पुरूष को जाति स्रोत कहा। अधिकतर धर्मों में भौतिक जगत को ईश्वर का सृजक माना जाता है, परंतु मानसिक जगत की कोई अधिक चर्चा नहीं होती। हिन्दू धर्म में सर्व जगत का कारण ब्रह्म ही है। अतएव मानसिक शक्ति से भी जो हुआ है वह ब्रह्म के कारण ही है।

केन उपनिषद में (१.६) ऋषि कहते हैं :-

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्,
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिमुपासते।

अर्थात् वह नहीं जो मनुष्य के मस्तिष्क से समझ लिया जाता है, वरन वह जिससे मस्तिष्क समझता है, उसे ब्रह्म समझो।

ऋग्वेद् के उपरिचर्चित सूक्त को इसी उपनिषद की दृष्टि से समझने पर ब्राह्मणत्व की आभा झलकती है, नहीं तो ब्राह्मणवाद का ही सब झमेला है।

वास्तव में हिन्दू धर्म का उद्देश्य ब्राह्मणत्व को प्राप्त करना है,परंतु विडम्बना है कि हिन्दू ब्राह्मणवाद में जकड़ गया है। आइए, ब्राह्मणत्व और ब्राह्मणवाद की तनिक विस्तार में चर्चा करें।

ब्राह्मणवाद वह है जो, मनुष्य को मनुष्य से अलग करता है। भेद भाव उत्पन्न करता है, समाज के एक वर्ग को उच्च्य और दूसरे को निम्न कहने में संकोच तक नहीं करता। मनुस्मृति में ब्राह्मणवाद को काफी तूल दिया गया है। मनुस्मृति (९.३१९) कहती है :

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वककर्मसु,
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परम दैवत हितत।

अर्थात (अग्नि की तरह) सभी प्रकार के अपवित्र

❒ टोरांटो ओंटेरियो, कनाडा

कार्यों में संलग्न रहने पर भी ब्राह्मण सब प्रकार से पूजनीय है, क्योंकि वह परम देवता है।

ब्राह्मणवाद की झलक अन्य धर्मग्रंथों में भी मिलती है, परंतु सबका सार लक्ष्य ब्राह्मत्व की प्राप्ति और रक्षा करना है। रामायण में शंबूक की कथा (वाल्मीकीय रामायण उत्तरकांड सर्ग ७३.७६) जोड़ना ब्राह्मणवाद का नगण्य उदाहरण है, इस कथा में रामराज्य में शंबूक नाम के एक शूद्र व्यक्ति ने तपस्या करना प्रारंभ कर दिया, उसी समय राम जी के राज्य में एक ब्राह्मण के बालक की मृत्यु हो गई, उसके निवारण के लिए राम ने शंबूक का वध कर दिया। इसी जातिवाद को फिर इतना बढ़ाया गया कि वेदों का श्रवण भी निम्न जातीय लोगों के लिए वर्जित हो गया। मेरे मत में, जिस राम की हम आराधना करते हैं,वे कभी भी शंबूक जैसे एक तपस्वी का निरादर नहीं करेंगे, मारने की बात तो दूर रही। ब्राह्मणवादी को सही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

महाभारत में द्रोणाचार्य के एकलव्य के अंगूठे काटने की कहानी तो सर्वविदित ही है। महाभारत में एक कथा और आती है (आदि पर्व-अध्याय २२२)। इस कथा में एक श्वेतिक नाम के राजा सौ वर्ष तक लगातार चलने वाला यज्ञ करना चाहते थे। राज्य के ब्राह्मणों के मना करने पर उन्होंने उग्र तप के द्वारा भगवान शंकर को प्रसन्न कर लिया और शिव जी से यज्ञ कराने का वर माँगा तब शिव जी बोले, "याजनं ब्राह्मणनां तु विधिदृष्टं परंतप।" अर्थात शास्त्रीय विधि के अनुसार यज्ञ कराने का अधिकार ब्राह्मणों को ही है। तब शिव जी ने दुर्वासा जी से श्वेतिक का यज्ञ संपन्न करवाया। ब्राह्मणवादियों के अनुसार यह कथा बता रही है कि पुरोहित कार्य भगवान भी नहीं करा सकता,वह तो केवल अपनी पूजा करवा सकता है। अन्य शब्दों में ब्राह्मण को भगवान से भी अधिक अधिकार प्राप्त है।

इसी परंपरा का परिणाम हुआ कि बस ब्रह्मण ही पुजारी और पुरोहित आदि बन सका है। यद्यपि कुछ साल पहले ही भारत के सर्वोच्च्य न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि पुरोहित या पुजारी आदि के बनने का अधिकार सबको है, तथापि मैं कई बार भारत से आए हुए स्वामी और कथाकारों के मुख से मंदिरों में (टोरांटो में) सुन चुका हूँ कि कथा कहने का या पूजा कराने का अधिकार बस ब्राह्मण को है। अन्य शब्दों में ब्राह्मण जाति एक व्यवसाय का पेटेंट लिये हुए है। इस तरह की धारणा अंग्रेजी में रेसिस्म कहलाती है और हिन्दी में जातिवाद। मैंने जान बूझ कर इस लेख का शीर्षक जातित्व या जातिवाद नहीं लिखा क्योंकि जातिवाद का आधार ब्राह्मणवाद ही है जिसको ब्राह्मणत्व की ओट में बढ़ावा दिया जाता है।

जैसे पहले कहा जा चुका है, हिन्दू धर्म वास्तव में ब्राह्मणधर्म ही है और यह ब्राह्मणत्व प्राप्त करने का धर्म है। अब ब्राह्मणत्व की कुछ चर्चा कर लें। ब्राह्मणत्व का संदेश है: "ईशावास्यमिदं सर्व" (यजुर्वेद ४०.१) अर्थात ईश्वर का आवास सबमें है, "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" (भगवदगीता १८.६१) अर्थात, अर्जुन, ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में विद्यमान है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में कहा है, "सीयराम मैं सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।" ब्राह्मणत्व में ईश्वर की व्यापकता और सबकी समता की बात कही गई है। इसी धारणा को लेकर हिन्दू

सर्वे भवन्तु सुखिनःसर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुःख भाग्भवेत्।

कहकर सबके लिए प्रार्थना करता है। इसका अर्थ है कि सभी सुखी हों, सभी स्वस्थ हों, सभी कल्याण का दर्शन करें और किसी को भी दुःख न हो। इन प्रार्थनाओं में हिन्दू धर्म की व्यापकता और उदारता का प्रमाण मिलता है।

अब प्रश्न हो सकता है कि फिर भिन्न जातियों का वर्णन वेदादि धार्मिक ग्रंथों में क्यों है ? वास्तव में सब मनुष्यों का स्वभाव एक सा नहीं होता है और इसलिए सामाजिक ऋषियों ने चिंतन करके चार वर्गों में समाज को बाँट दिया। गीता में (१८.४०.४४) भगवान कृष्ण कहते हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए, गुणों द्वारा ही, परंतप यहाँ विभक्त किए गए। मन इन्द्रिय निग्रह, तप, शौच क्षमा भाव और सरलता, ज्ञान विज्ञान, आस्तिकता, स्वाभाविक ब्राह्मण कर्म करता। युद्ध स्थल से नहीं भागता, दान, तेज, धैर्य, चतुरता, शौर्य और शासन भाव, स्वाभाविक क्षत्रिय कर्म करता। कृषि, गो पालन और व्यापार वैश्य के स्वाभाविक कर्म, सभी प्राणियों की सेवा शूद्र का भी स्वाभाविक कर्म।

अपने अपने स्वाभाविक कर्मो पर ही जाति का वर्गीकरण आधारित था और इसी कारण हर समाज चार वर्गो में बाँटा गया। इस विभाग में ब्राह्मण समाज का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग माना गया और मानना भी चाहिए, पर कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण हो सकता है। इसी का संकेत महाभारत में गरूड़ के अमृत लाने की कथा में मिलता है। जब गरूड़ अमृत लेने को गए और उनको भोजन की चिंता हुई, तब उनकी माता विनता (महाभारत, आदिपर्व, अध्याय २८) ने उनको आदेश दिया कि वह हिंसक निषादों को मारकर खा लें पर उनमें ब्राह्मणों को ना खाएँ। ध्यान देने की बात है निषादों में भी ब्राह्मण थे, विनता गरूड़ को अपनी भूख के लिए निषादों का आहार करना बता रहीं हैं, निषाद समाज का नाश करना नहीं बता रहीं हैं। किसी समाज को नष्ट करना हो तो उसके बुद्धिजीवियों (ब्राह्मणों) को नष्ट कर दो। हिटलर ने यहूदी बुद्धिजीवियों की हत्या की, कम्यूनिस्टों ने कई देशों में विज्ञानी, लेखक, प्राध्यापक आदि को मारा या उन्हें मजदूरी करने के लिए विवश किया है हमारे ही समय में। ब्राह्मण वध इसी कारण निषेध कहा गया क्योंकि इससे समाज अधोगत हो जाता है। ब्राह्मणवादियों ने इसका अनुचित प्रयोग किया है।

ब्राह्मणवाद के कारण ही अनेकों ब्राह्मण उप जातियाँ हैं। अन्य शिक्षित लोगों ने अपनी अलग जातें बना लीं और ब्राह्मणवादी इनसे संघर्ष तो करते रहें हैं, पर जीत नहीं पाए। इसी कारण हिन्दू समाज में सैकड़ों जातियां आज विद्यमान हैं। जब तक जाति जन्म पर आधारित रहेगी, हिन्दू समाज अपनी पूर्ण उन्नति नहीं कर सकता।

महाभारत के यक्ष और युधिष्ठिर संवाद से ही इस लेख का अंत करते हैं। यक्ष ने युधिष्ठिर से अनेकों प्रश्न पूछे, उनमें से एक था (महाभारत,वनपर्व.३१३. १०७)

राजन कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायोन श्रुतेन वा,
ब्राह्मण्यं केन भवति प्रब्रूहोतत सुनिश्चितम।

अर्थात राजा (युधिष्ठिर) कुल, आचार, स्वाध्याय तथा शास्त्र श्रवण इनमें से किसके द्वारा ब्राह्मणत्व सिद्ध होता है ? प्रत्युत्तर में युधिष्ठिर कहते हैं (महाभारत ३.३१३.१०८)

श्रृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्ययो न च श्रुतम,
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशय।

अर्थात तात यक्ष सुनो, कुल, स्वाध्याय और शास्त्र श्रवण कोई भी ब्राह्मणत्व में कारण नहीं हैं इसमें कोई संशय नहीं है कि ब्राह्मत्व का हेतु आचार ही है।

यह स्पष्ट है कि ब्राह्मणत्व सबको प्राप्त हो सकता है आचरण के द्वारा। परंतु ब्राह्मणवाद बस एक वर्ग का ही ध्यान करता है, स्वभाव और कर्म के अनुसार वर्गीकरण करने की जगह जन्म पर जाति को आघृत मानता है। हिन्दुओं को ब्राह्मणत्व की रक्षा करनी है और ब्राह्मणत्व की प्राप्ति करनी है।

❖❖❖❖

भूमण्डलीकरण : पूंजीवाद तथा साम्राज्यवाद की साजिश

(हिन्दी कथा साहित्य के विशेष सन्दर्भ में)

❒ *डॉ. जार्जकुट्टी वट्टोत*

यह भूमंडलीकरण का युग है। आर्थिक उदारीकरण, विश्व बाजारवाद, निजीकरण, उपभोक्तावाद आदि इसके उपोत्पाद हैं। वैश्वीकरण की खूबियों की तुलना में उसकी खामियाँ बहुत अधिक हैं। इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि देश के धनी लोग ज्यादा सम्पन्न हो जाते हैं जबकि आम आदमी का जीवन अधिकाधिक दूभर हो जाता है। इस कटु सत्य को सामयिक कहानीकारों ने बखूबी अभिव्यक्त किया है अपनी कहानियों में। नई पीढ़ी के प्रमुख कथाकार कैलाश बनवासी की कुछ प्रमुख कहानियों के आलोक में इस गंभीर मुद्दे पर प्रकाश डालने का प्रयास यहाँ किया जाता है।

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भूमंडलीकरण का प्रभाव देखने को मिलता है। सम्पन्न व्यक्ति एवं राष्ट्र इस स्थिति में आनंद का अनुभव करते हैं जबकि बाज़ारवाद के शिकंजे में पड़कर दम घुटने वाला आम आदमी दिग्भ्रमित होकर खड़ा हो जाता है। भूमंडलीकरण के कारण पिछले कुछ वर्षों के अन्दर दुनिया में युगान्तरकारी परिवर्तन आ गया है। त्रिभुवननाथ शुक्ल की राय में "आज का समय मिसाइलों हथियारों की लडाई का नहीं, अपितु विचारों की लड़ाई का हो गया है। व्यक्ति दिनोंदिन बाज़ारवाद के चंगुल में फंसता जा रहा है।"[1] इसमें संदेह नहीं है कि भूमंडलीकरण से व्यक्ति के आचरण और व्यवहार भी बड़ी मात्रा में प्रभावित हो जाते हैं। परंपरागत मूल्यों को नकारकर अर्थ केन्द्रित मूल्य-व्यवस्था को अपनाने के लिए व्यक्ति जाने-अनजाने तैयार हो जाता है। डॉ. ब्रह्मस्वरूप शर्मा के शब्दों में "वैश्वीकरणोन्मुखी अर्थ-व्यवस्था बाज़ार-व्यवहार को ही प्रभावित नहीं कर रही, व्यक्ति-व्यवहार में भी परिवर्तन ला रही है। महानगरों में ही नहीं, सुदूर गाँवों के निम्नवर्गीय व्यक्तियों की सोच में अंतर आया है।"[2]

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर कैलाश बनवासी का नवीनतम कहानी संग्रह है 'बाज़ार में रामधन'। इसमें संकलित 'बाज़ार में रामधन', 'लोहा और आग और वे', 'मोहल्ले का मैदान और खाड़ी युद्ध' तथा 'एक गाँव फुलझर' शीर्षक कहानियों के केन्द्र में भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप हाशिये पर धकेल दिये जाने वाले आम आदमी का प्रतिष्ठान हुआ है। 'बाज़ार में रामधन' शीर्षक कहानी का रामधन एक मामूली किसान है। कठिन मेहनत कर वह परिवार चलाता है। उसके परिवार की एकमात्र मूल्यवान तथा पुश्तैनी संपत्ति है एक जोड़ा बैल जो खेत जोतने में, गाड़ी खींचने में काम आते हैं। वर्षों तक मिलजुलकर रहने के कारण रामधन और बैल अंतरंग मित्र बन जाते हैं। रामधन का छोटा भाई मुन्ना पढ़ा-लिखा नौजवान है। लेकिन वर्षों तक नौकरी की तलाश में भटकने के बावजूद नौकरी पाने में वह असफल हो जाता है। अंततः वह कुछ न कुछ काम-धन्धा स्वयं शुरू करने का निश्चय करता है। इसके लिए उसे पूंजी की आवश्यकता होती है। वह बैलों को बेचकर रूपए देने की माँग करता है रामधन से बैलों को बेचने पर संभाव्य कष्टताओं का विवरण देकर रामधन भाई को इस जिद से पीछे हटाने का हर संभव प्रयास करता है। लेकिन मुन्ना अडिग रहता है अपनी मांग पर और स्थिति बिगड़कर धीरे-धीरे घरेलू झगड़े में रूपांतरित होने लगती है। अंततः और

❒ *प्रपाठक, हिन्दी स्नातकोत्तर एवं शोध विभाग, सेन्ट थॉमस कॉलेज पाला, जिला कोट्टयम (केरल)*

कोई चारा न होने की स्थिति में रामधन बैलों को बेचने का निर्णय लेता है जिससे उसके शरीर और मन की शक्ति नष्ट हो जाती है। वह अनमन से अपने प्यारे बैलों को लेकर बुधवारी बाज़ार पहुंचता है। ग्राहक आकर रामधन के बैलों को देखते-परखते हैं। भुलऊ महाराज दोनों बैलों के लिए तीन हजार दो सौ रूपए देने के लिए तैयार होता है। सहदेव नामक बैल दलाल आकर साढ़े तीन हजार रूपए देने की बात बताता है। लेकिन रामधन अपने पक्के बैलों को पूरे चार हजार से कम रूपए पर बेचने के लिए तैयार नहीं होता। तब कुप्रसिद्ध दलाल चइता आकर रामधन को धमकाकर साढ़े तीन सौ पर बैलों को खरीदने का प्रयास करता है। लेकिन दृढ़निश्चयी रामधन अटल रहता है। इतने में शाम होने लगती है और रामधन अपने बैलों को बेचे बिना गाँव लौट जाता है। इसके बाद और दो बार बैलों को बाज़ार में ले जाने के बावजूद उन्हें चार हजार रूपए पर बेचने में रामधन असमर्थ हो जाता है। आखिरी बार गाँव लौटते वक्त रास्ते में बैल रामधन से पूंछते हैं कि पूरे चार हजार रूपए मिलते तो क्या वह उन्हें बेच देता। इसके उत्तर में रामधन नहीं बताता है। बैल आगे पूछते हैं कि आखिर कब तक रामधन उन्हें बचा सकेगा। इसके उत्तर में रामधन उदास तथा अनिश्चितता पूर्ण मुस्कान के साथ कहता है कि अगली हाट में मुन्ना उन्हें बेच देगा। "जवाब में रामधन मुस्करा दिया - एक बहुत फीकी और उदास मुस्कान ... अनिश्चितता से भरी हुई। रामधन अपने बैलों से कह रहा है, देखो हो सकता है अगली हाट में मुन्ना तुम्हें लेकर आये।"(३)

प्रस्तुत कहानी में वैश्वीकरण के ज्वार-भाटे में लड़खड़ाने वाले आम आदमी का चित्रण हुआ है। बेकारी, गरीबी आदि से ग्रस्त आम आदमी आज अपनी एकमात्र पूंजी भी बाजार में बेचने के लिए मजबूर हो जाता है। लेकिन उसे न्यायपूर्ण मूल्य भी प्राप्त नहीं होता। किसान लोग विश्व बाज़ारवाद से अधिक मात्रा में पीड़ित हो जाते हैं। रामधन बाज़ार की शक्तियों के बीच असहाय होकर दम घुटने वाले आम आदमी का प्रतिनिधि है। रामधन के लिए जीवन-यापन का एकमात्र उपाय है उसके बैल। इसलिए वह अपने प्रिय बैलों को बिकने से बचाने का प्रयास करता है। लेकिन जाहिर है, काफी दिनों तक वह उन्हें बचा नहीं सकता। बाज़ार की शक्तियों के हाथों उन्हें बेचने के लिए वह जल्दी ही मजबूर हो जाएगा। आम आदमी का भविष्य आज अनिश्चिततापूर्ण है। बाज़ार की ताकतों द्वारा उसका निर्मम शोषण हो रहा है। बैलों के सवाल का उत्तर देते समय रामधन की उदास मुस्कान उसकी असहायता का द्योतक है। भूमंडलीकरण से वस्तुतः रोजगार के अवसर कम हो जाते हैं और आम आदमी बेकार बन जाता है। कहानी के आरंभ में रामधन को गाँव में शहर बन जाने का चित्रण देखने को मिलता है। शहरीकरण की प्रक्रिया तेज होने पर आम आदमी, विशेषकर किसान लोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ जाते हैं। उनके जीवन-यापन के समस्त मार्ग एक-एक कर बन्द हो जाते हैं। आर्थिक उदारीकरण, बाज़ारवाद आदि से केवल धनी लोगों को फायदा मिलता है, आम आदमी का उससे खास लेना-देना नहीं है। मिसाल के तौर पर, एक्सप्रेस हाईवे से प्रयोजन मिलता है निजी गाड़ी में सवार करने वाले लोगों को पैदल चलने वाले या सार्वजनिक परिवहनों में यात्रा करने वाले आम आदमी को उससे खास प्रयोजन नहीं मिलता। विश्व बाज़ारवाद के इस युग में रामधन जैसे लोगों की थोड़ी संपत्ति भी संपन्न लोग तुच्छ मूल्य देकर हथियाने का प्रयास करते हैं। उनके प्रयासों को परास्त करने में रामधन कुछ दिनों तक विजयी होता है। लेकिन कहानी के अंत में साफ संकेत किया गया है कि रामधन की यह जीत क्षणिक है। निकट भविष्य में ही वह बैलों को तुच्छ मूल्य पर बेचने के लिए विवश हो जाएगा। वैश्वीकरण से जन्मी वर्तमान कटु सामाजिक परिस्थितियाँ तथा घोर आर्थिक तंगी उसे इसके लिए मजबूर बनाती हैं। इस प्रकार धनी लोग दिनों-दिन अधिकाधिक धनी और निर्धन लोग अधिकाधिक निर्धन बन जाने का युगीन

सत्य कहानी में साफ उभर आता है।

'लोहा और आग और वे' शीर्षक कहानी में साम्राज्यवाद तथा आधुनिकता की बाढ़ में उखड़ जाने वाले निम्न वर्ग के लोगों की कथा कही गयी है। एक बंजारा परिवार इस कहानी के केन्द्र में है जो जीवन-यापन के लिए लोहे के टुकड़ों से घरेलू औजार और बनाकर बेचते हैं। इस्पात शहर भिलाई के मुख्य मैदान में इस लुहार-परिवार को कर्मनिरत देखकर लेखक चकित हो जाता है। स्वयं इस्पात कारखाने का कर्मचारी होने के कारण लेखक के मन में कुतूहलता और आश्चर्य की भावना उत्पन्न होती है। "यह भी कोई हँसी की बात नहीं थी कि भिलाई, जो सारी दुनिया को इस्पात बेचता है, वहाँ ये अपना लोहा बेचने आये थे। अपना अनगढ़ और प्राचीन लोहा।"[४] दहकती हुई भट्टी के निकट बैठकर एक युवक लोहे के टुकड़े को तपाकर हथौड़े से पीटता है और दो नारियाँ उसकी सहायता करती हैं। एक बूढ़ा बैठकर बनाये गये औजारों को रेत-पत्थर से धार देता है। शाम होने पर नारियाँ रोटी बनाने में निरत होती हैं। एक आदमी बोरा बिछाकर उस पर कुल्हाड़ी, हथौड़ी, छैनी, पटासी, छुरी आदि औजारों को सजाकर रखता है। लेकिन उसकी 'दुकान' से औजार खरीदने कोई नहीं आता। यह देखकर लेखक सोचता है कि आजकल अधिकांश लोग झिलमिलाते सुपर मार्केट की ओर उन्मुख हैं। "शायद सारे ग्राहक इस समय बिजली की चकाचौंध और रंगीनियों से सराबोर सिविक सेण्टर के सुपर मार्केट की खूब सजी-धजी दुकानों में होंगे... फास्टफ्रूड, कोल्ड ड्रिंक्स, आइसक्रीम, कलर टी.वी., फ्रिज, वाशिंग मशीन, कूलर, जूते इत्यादि खरीदते हुए किसी अदृश्य अतीव आकर्षण में।"[५] भूमंडलीकरण के कारण लोगों की सूची और आदत में आए युगान्तरकारी परिवर्तन के बारे में लेखक विचारता है कि लोग आजकल अपने लिए अनावश्यक तथा अनुपयोगी सामान भी खरीदते हैं फैशन के नाम पर। "आखिर ग्राहक अपनी जरूरत की ही चीजें तो खरीदेगा, चाहे यह जरूरत कितनी ही झूठी, अवास्तविक और फैशनबुल हो। जमाना इसी का है।"[६] बंजारों की 'दुकान' से कोई औजार न खरीदते देखकर लेखक को दया आती है और उन्हें अपने बचपन के एक लुहार की याद आती है जिससे उनके दादाजी कुछ न कुछ खरीदते थे। दादाजी की याद करते हुए बंजारों की सहायता करने के लिए आवश्यकता न होते हुए भी लेखक एक कुल्हाड़ी खरीदता है। लेकिन कुल्हाड़ी लेकर घर पहुंचने पर पत्नी हैरान, चकित और परेशान होकर लेखक को घूरकर देखने लगती है। पत्नी को शांत करने में लेखक परास्त हो जाता है।

प्रस्तुत कहानी में साफ व्यक्त किया गया है कि बड़े-बड़े कल-कारखानों और उद्योगों से निम्नवर्ग के लोगों को खास प्रयोजन नहीं मिलता। भूमंडलीकरण के प्रभाव आजकल देश में आई.टी. पार्क, स्मार्ट सिटी, टेक्नो पार्क आदि की स्थापना हो रही है। लेकिन इनका निम्नवर्ग के लोगों से खास संबंध नहीं है। जिस प्रकार इस्पात शहर भिलाई के मध्य भाग में लोहे के टुकड़े को हथौड़े से पीटते-पीटते औजार बनाकर बेचने वाले लोग होते हैं उसी प्रकार उपर्युक्त कल-कारखानों के शहरों में जीवनयापन के लिए छोटे-छोटे काम करने वाले लोगों की संख्या बढ़ रही है। खाली बोतल बटोरने वाले या जूता पालिश करने वाले लोगों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। दूसरे शब्दों में, निर्धन और धनी लोगों के बीच का फासला निरंतर बढ़ रहा है। बड़े-बड़े कारखानों के आगमन से निर्धन लोगों की आजीविका के साधन एक-एक कर नष्ट हो रहे हैं। आजकल लोग लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा निर्मित देशी चीजों को उपेक्षित कर बड़े-बड़े कारखानों द्वारा निर्मित आकर्षक चीजों को खरीदते हैं। यह निर्विवाद है कि दूसरों को अपना बड़प्पन दिखाने के उद्देश्य से कीमती चीजें खरीदने वाले लोगों की संख्या आज निरंतर बढ़ रही है। आज समाज में उपभोक्तावाद का बोलावाला है जिसके फलस्वरूप निर्धन लोग भी कार, कूलर, फ्रिज आदि खरीदने की

बात सोच रहे हैं। इसी कारण से बंजारे की दुकान से औजार खरीदने कोई नहीं आता। अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों द्वारा फैक्ट्रियों में निर्मित और मनमोहक तथा लुभाने वाले विज्ञापनों की सहायता से वातानुकूलित सुपर मार्केटों में बिकने वाली चीजों की आज खूब बिक्री होती है। इसके फलस्वरूप परंपरागत पेशे के बल पर जीवनयापन करने वाले लोग गरीबी में धकेल दिए जाते हैं। डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव ने ठीक ही लिखा है ''बहुराष्ट्रीय कंपनियों के समक्ष देशज उद्योग-धन्धे समाप्त होने जा रहे हैं। बेरोजगारी का प्रकोप सुरसा जैसा मुंह फैलाये अधिकांश मानवता को हताशा, निराशा, कुण्ठा, मोहभंग की घोरतम त्रासद मनःस्थितियों की भट्टी में झोंक रहा है।''[७] सुन्दर नारियों की देह-भंगिमा को दर्शाने वाले आकर्षक विज्ञापनों के जाल में फंसकर व्यक्ति बहुराष्ट्रीय कंपनियों की चीजें खरीदता है। कुमुद शर्मा के मत में ''आज विज्ञापन की दुनिया में विज्ञापन और स्त्री पर्याय बन गये हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति को प्रोत्साहित करते बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पाद को बाजार में स्थापित करने वाले विज्ञापनों में स्त्री की कामुक अपील को भुनाया जा रहा है।''[८] बंजारों के औजार विज्ञापन, इनाम, छूट, बट्टा यहाँ तक कि पैकिंग से भी वंचित हैं। इसलिए उन औजारों को खरीदने से लोग विमुख हो जाते हैं। भूमंडलीकरण के इन दुष्परिणामों को यह कहानी खूब दर्शाती है।

'मोहल्ले का मैदान और खाड़ी युद्ध' शीर्षक कहानी में भूमंडलीकरण की आड़ में साम्राज्यवाद की जड़ें गहराई में पैठ जाने से उत्पन्न आपत्ति की ओर संकेत किया गया है। कहानी का नायक मोहनलाल पेशे से धोबी है। वास्तविकता यह है कि शिक्षित मोहनलाल नौकरी की खोज में काफी भटकने के बाद स्वयं धोबी बन जाता है। वह एक अच्छा खिलाड़ी और हॉकी का प्रेमी है। हाईस्कूल में पढ़ते वक्त मोहनलाल हॉकी टीम का कप्तान था। इसलिए अपने मोहल्ले के मैदान में बच्चों को हॉकी खेलते देखने पर उसे असीम आनन्द का अनुभव होता है। मैदान को स्वस्थ और साफ-सुथरा बनाए रखने के लिए वह सदा जागरूक रहता है। दरअसल वह एक समाजसेवी भी है जो दूसरों की हर संभव सहायता करता है। महंगाई के कारण मोहनलाल का पारिवारिक जीवन कष्टपूर्ण बन जाता है। मतलब है कि गृहस्थी चलाने के लिए आवश्यक पैसा कपड़ों को धोकर स्त्री कर देने से उसे प्राप्त नहीं होता। इस दशा में वह बेहद चिंतित हो जाता है। ''उनके चार बच्चे हैं - दो लड़कियाँ। सभी की पढ़ाई चल रही है। घर का खर्च, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई का खर्च। बूढ़ी माँ के लिए दवा-दारू का खर्च। उन्हें समझ नहीं आता इस जीना हराम कर देने वाली महंगाई में आदमी क्या-क्या देखे ! किस पर खर्च करे और किस पर छोड़े।''[९] बड़ी हो रही लड़कियों की शादी के बारे में चिंतित होकर मोहनलाल की पत्नी दिनों दिन सूखकर कांटा हो रही है। एक दिन पटेल साहब नामक धनिक अचानक मैदान में एक गोशाला का निर्माण करता है और उसका बेटा वहाँ भैंसों को पालने लगता है। मैदान नष्ट होते देखकर मोहनलाल क्षुब्ध होता है और वह कुछ लोगों को इकट्ठा कर अधिकारियों के सामने फरियाद करता है। अगले दिन सरकारी अफसर आकर मैदान की जाँच-पड़ताल करते हैं। आवश्यक कार्यवाही करने का आश्वासन देकर वे लौट जाते हैं। भारतीय प्रजातंत्र की विजय फरियाद करते ही जाँच करने की स्थिति देखकर देशप्रेमी नागरिक मोहनलाल बहुत प्रसन्न हो जाता है। लौटने से पहले अधिकारी लोग पटेल साहब के घर में भी प्रवेश करते हैं और वहाँ से बाहर आते वक्त वे मोहनलाल को घूरकर देखते हैं। उसी दिन शाम को चार पहलवान मोहनलाल के घर आकर उसे बुरी तरह पीटते हैं। खबर पाकर मोहनलाल के सहयोगी लोग भयभीत हो जाते हैं। पूरे मोहल्ले में संत्रास का वातावरण छा जाता है। अगले दिन खाड़ी युद्ध आरंभ होता है। अमरीका इराक पर घमासान आक्रमण शुरू करता है। टी. वी. में बमवारी का प्रसारण होता है जो आतिशबाजी

के समान दीख पड़ती है। अगले क्षण जॉर्ज बुश टी. वी. में दिखाई पड़ता है। बुश को देखकर मोहनलाल कुपित होकर कह उठता है कि वह दूसरा पटेल साहब है। मोहनलाल सोचता है कि भय के कारण पटेल साहब और बुश दोनों ने आक्रमण किया है। "मोहनलाल इसी बहाने ही सही, यह जान गये है कि पटेल साहब ने उस पर या अमरीका ने इराक़ पर हमला किस लिए किया था। डर और केवल डर। लोगों को भयभीत करने के लिए और खुद को हर भय से सुरक्षित रखने के लिए।"(१०)

प्रस्तुत कहानी में साम्राज्यवाद का विकराल एवं बीभत्स रूप देखने को मिलता है। निजीकरण के कारण उत्पन्न गड़बड़ियों का चित्रण भी इसमें हुआ है। आजकल प्रत्येक क्षेत्र में, यहाँ तक कि भारतीय रेल में भी निजीकरण की प्रक्रिया जोरदार ढंग से चल रही है। इसके फलस्वरूप सार्वजनिक स्थलों, संस्थाओं, उपक्रमों में संपन्न लोगों का प्रभुत्व स्थापित हो रहा है। देश की सार्वजनिक संपत्ति पूंजीपति के अधीन में पड़ने का चित्रण कहानी में बखूबी हुआ है। इस विपत्ति के विरूद्ध आवाज़ उठाने वाले मोहनलाल जैसे सचेत एवं चिंतनशील लोगों की आवाज़ ताकतवर पूंजीपतियों द्वारा अवरूद्ध की जाती है। जाहिर है, संगठित शासन-व्यवस्था एवं पूंजीवाद के सम्मुख अकेला आम आदमी असहाय है। महंगाई के इस युग में आम आदमी की कष्टपूर्ण जिन्दगी का मार्मिक चित्रण भी कहानी में हुआ है। इराक पर हमला कर बच्चों और नारियों समेत अनेक निर्दोष लोगों को मारने वाले ताकतवर साम्राज्यवादियों को यह कहानी कठघरे में डालती है। भूमंडलीकरण का बहाना बनाकर संपूर्ण विश्व में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए उद्यत साम्राज्यवादी ताकतों की साजिश को यह कहानी अनावरण करती है। यह बिलकुल चिंता की बात है कि संभाव्य खतरे से अनभिज्ञ होने के कारण देश की केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारें विदेशी पूँजी का निवेश करने के लिए आजकल स्पर्धा कर रही हैं। आलोचक - प्रवर डॉ. रामविलास शर्मा लिखते है "भारत में जिन प्रदेशों की सरकारें विदेशी पूंजी की आमद का विरोध करती थीं, अब वे भी उसका स्वागत करने लगी हैं। उनकी समझ में उसका विरोध करने से आर्थिक विकास में भारी हानि होगी। केन्द्रीय सरकार के नेता बहुत प्रसन्न हैं कि अब दक्षिण वाम का भेद नहीं रहा। सभी लोग विदेशी पूंजी को आमंत्रित कर रहे हैं।"(११)

'एक गाँव फुलझर' शीर्षक कहानी में आर्थिक उदारीकरण एवं निजीकरण के फलस्वरूप अस्तित्वहीन बन जाने वाले आम आदमी की कथा कही गयी है। फुलझर गाँव में पहली बार पोकलेन मशीन आती है। मशीन की कर्ण कठोर आवाज सुनकर बहुत सारे ग्रामवासी इकट्ठे होते हैं। उनमें से अधिकांश लोग पोकलेन मशीन प्रथम बार देख रहे हैं। यहाँ तक कि स्थानीय पाठशाला के साहू गुरूजी और अनिल कुमार देशमुक भी वहाँ पहुंचते हैं। छत्रपाल गुप्ता नामक करोड़पति गाँव में प्लास्टिक उपकरणों का उत्पादन करने वाला एक कारखाना स्थापित कर रहा है। इसके लिए पोकलेन मशीन लाकर वह काम शुरू करता है। भयानक आकृतिवाली मशीन को ही नहीं ठेकेदार सरदार बिशन सिंह, इंजीनियर सक्सेना, मशीन का अभ्यस्त ड्राइवर आदि को लोग कुतूहलतापूर्वक देखते रहते हैं। डराने वाली मशीन बड़ी मात्रा में मिट्टी एक साथ निकालने की क्रिया देखकर इकट्ठे हुए लोग हैरान हो जाते हैं। गाँव की अधिकांश भूमि छत्रपाल गुप्ता की पुश्तैनी संपत्ति है। आज वह उस मैदानी स्थल पर निर्माण कार्य शुरू करता है जो गाँव के बच्चों को खेलने के लिए और गाय-बैलों को चरने के लिए काम में आता है। इसलिए ग्रामीण लोग निर्माण कार्य के प्रति एतराज प्रकट करते हैं। लेकिन छत्रपाल गुप्ता गाँव के सरपंच को अपने वश में कर लेता है और उसके द्वारा गाँववालों को यह कहकर शांत करता है कि कारखाना पूरा होने पर गाँव के बेरोजगार युवकों को नौकरी मिलेगी। "ये गाँववालों को

तरह-तरह से समझाने में लगे रहते – तुम लोग यार सच में एकदम गँवार हो। थोड़ी सी ज़मीन जाने का हमको इतना लाभ मिल रहा है तो ज़म को जाने दो। क्या करना है गाय-गरू तो और कहीं जाकर चर लेंगे। ये सोचो, तुम्हारे बेरोज़गार लड़कों को काम मिलेगा। इससे तरक्की होगी, हमारा गाँव खुशहाल गाँव बनेगा।"(१२) इस प्रकार पंच के द्वारा विरोध करने वालों को छत्रपाल गुप्ता कुशलतापूर्वक अपना समर्थक बनाता है। छत्रपाल गुप्ता शहर के प्रसिद्ध ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवाकर फैक्टरी के शिलान्यास की तैयारियाँ आरंभ करता है। शिलान्यास के लिए मंत्री महोदय ही पधारते हैं। पूरे गाँव के लिए वह दिन उत्सव का दिन बन जाता है। लेकिन साहू गुरूजी आदि चिंतनशील लोग इस योजना को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। वे जानते है कि निजी क्षेत्र की कंपनी में कंप्यूटर की सहायता से काम चलाया जाएगा और इसलिए वहाँ कम से कम मज़दूरों की नियुक्ति होगी। क्योंकि निजी क्षेत्र की किसी भी कंपनी का मूल लक्ष्य अधिकाधिक लाभ पाना है। गाँव के बेकार युवक इकट्ठे होकर प्रायः जुआ खेलते रहते हैं। मजदूरी प्राप्त करने की होड़ में वे एक दूसरे का शत्रु भी बन जाते हैं। इसी होड़ के कारण ठेकेदार उनका शोषण करने में विजयी होता है। "प्रतिद्वन्द्विता बाजार का शाश्वत नियम है जो कम से कम कीमत में अपने दिन भर की मेहनत बेचने को तैयार हो, ठेकेदार या ग्राहक उन्हीं को ले जाते हैं। कहने के लिए उनका रेट फिक्स है, लेकिन ज्यादातर कम कीमत में जाने को तैयार हो जाते हैं।"(१३)

मशीनों के आगमन से गाँव की बेकारी बढ़ जाती है और मजदूर लोग अपने ही गाँव में पराये बन जाते हैं। देश भर में फैल रही इस विपत्ति की ओर संकेत करते हुए देशमुख गुरू जी साहू गुरू जी से कहता है "साहू जी, आपको तो सिर्फ इन पचीस-पचास लोगों की चिंता हो रही है। आगे देखिए, क्या होने वाला है इस देश का। ऐसे-ऐसे कानून पास हो रहे हैं कि बेरोज़गारी और बढ़ेगी। प्राइवेटाइजेशन बढ़ाया जा रहा है, छँटनी की जा रही है। देशी उद्योग-धन्धों का भट्टा बैठ जाएगा।"(१४) पीपल का एक बहुत बड़ा पेड़ मैदान में स्थित है। आरी की सहायता से उसकी जड़ों को कटवाकर छत्रपाल गुप्ता फैक्टरी का निर्माण कार्य जारी रखता है। उसी दिन रात को साहू गुरूजी स्वप्न में देखता है कि गाँव में कारखाने का उद्घाटन हुआ है और चिमनियों से बड़ी मात्रा में काला-काला धुआँ गाँव के स्वच्छ आकाश में व्याप्त हो रहा है। अपने स्कूल के स्थान पर गुरूजी फैक्टरी से निकलने वाले कचरों का ढेर दीखता है। शहर भी परिवर्तित हुआ है जहाँ आकर्षक, मादक, सनसनाती विज्ञापनों का बोर्ड वाली सुन्दर दुकानों की कतारें दीख पड़ती हैं। चिंतित साहूजी वहाँ से चलकर शहर के बड़े स्कूल के समीप पहुंचता है। वहाँ स्वतंत्रता दिवस मनाने की तैयारियाँ हो रही हैं। भोंपे से आयोजकों की आवाज़ आ रही हैं "हमारे आज के कार्यक्रम के प्रायोजक तथा हमारे मुख्य अतिथि हैं परम आदरणीय श्रद्धेय श्री छत्रपाल गुप्ता जो न सिर्फ देश के प्रसिद्ध उद्योगपति हैं, वरन् राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत और सम्मानित समाज सेवक भी।"(१५) यह घोषणा सुनकर चीखते हुए गुरूजी नींद से जाग उठता है तो सपना टूट जाता है। घबराता गुरूजी बुरी तरह हाँफता दीख पड़ता है।

प्रस्तुत कहानी में आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण, साम्राज्यवाद, विश्वबाज़ारवाद, उपभोक्तावाद आदि के परिणामस्वरूप गाँव की मिट्टी को भी बड़े-बड़े मालिकों के द्वारा हथियाने का चित्रण हुआ है। इस स्थिति में आम आदमी असहाय बन जाता है क्योंकि देश की सरकार धनिकों को अधिक धनिक बनाने लायक नियमों का लगातार निर्माण कर रही है। सर्वाधिक खेद की बात है कि संपत्ति को धनी व्यक्ति के हाथों केन्द्रित करने लायक कार्रवाइयाँ सरकार की ओर से ही आजकल चल रही हैं। इस स्थिति में आम आदमी की आवाज़ नक्कारखाने में तूती की आवाज़ बन जाती है। देश का संसद ही निजीकरण को प्रोत्साहन देते तथा धनिकों का

पक्ष लेते देखकर आम आदमी स्तब्ध, परेशान और खिन्न हो जाता है। पूंजीपति लोग देश के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत होने तथा देश का स्वतंत्रता दिवस समारोह भी देशी तथा विदेशी पूंजीपतियों द्वारा प्रायोजित होने की विडंबना को यह कहानी मार्मिक ढंग से दर्शाती है। भूमंडलीकरण के बहाने, पिछली आधी शती से देश में संस्थापित मिश्रित अर्थ व्यवस्था से विचलित होकर पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था को स्वीकारने वाली तथा शोषक शक्तियों का हार्दिक स्वागत करने वाली सरकारी नीति की यह कहानी भर्त्सना करती है। विद्यालय को मिटाकर उसके स्थान पर आकर्षक बाजारों की स्थापना का चित्रण कर लेखक ने देश में व्याप्त बाज़ारवाद की मज़बूती को दर्शाया है। पूरे देश को अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों की चीज़ें बिकने का बाज़ार बनाने की कूटनीति का लेखक ने पर्दाफाश किया है। असंख्य देशस्नेही लोगों के बलिदानों और त्यागपूर्ण कार्रवाइयों के फलस्वरूप प्राप्त देश की प्रभुता और स्वतंत्रता को सरकार द्वारा विदेशी कंपनियों को गिरवी रखते देखकर चीखने वाले चिंतनशील, ईमानदार, देशप्रेमी और असहाय आम आदमी का प्रतिनिधि है कहानी का साहू गुरूजी, दरअसल जोकलेन मशीन देश के असहाय लोगों की संपत्ति बलपूर्वक हथियाने वाले शक्तिशाली पूंजीपतितों का तथा विकासशील देशों पर कब्जा करने का उद्यम करने वाले साम्राज्यवादी देशों एवं अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों का प्रतीक है। पोकलेन मशीन समूची मानवता को निर्जीव बनाने वाली यंत्र-सभ्यता का भी प्रतीक है।

उपर्युक्त लघु विवेचन के आधार पर निसंदेह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के फलस्वरूप आम आदमी जीवन में पिछड़ रहे हैं। विकसित व ताकतवर राष्ट्रों के इरादों को अमल में लाने का संगठित प्रयास विभिन्न एजेन्सियों द्वारा आज जोरों पर चल रहा है। विश्व बैंक जैसी संस्थाओं के द्वारा यह कार्यक्रम चालाकी से विश्व-भर में चलाया जाता है। घनश्याम अहिरवार ने उचित ही लिखा है ''भूमण्डलीकरण के सहज प्रकट हो रहें परिणामों से सामाजिक, आर्थिक, परिदृश्य में एक नया स्वरूप उभर रहा है, जिसमें एक नये तरह के उत्तर आधुनिक युद्ध के चिन्ह दिखते हैं, और इस युद्ध में आई. एम. एफ., वर्ल्ड बैंक, डब्लू. टी. ओ. अपने समस्त भूमण्डलीकरण और उदारीकरण के अस्त्रों के साथ संलग्न है। तीसरे विश्वयुद्ध को बाज़ार में तब्दील करने की अमेरिका और अन्य शक्तिशाली पश्चिमी राष्ट्रों की मनमानी स्वीकार्य हो चली है।''[16] यह बिल्कुल दिलासा देने वाली बात है कि समकालीन कहानीकार भूमंडलीकरण और सम्बद्ध मुद्दों से पूरी तरह अवगत है और सामान्य जनता को हाशिये पर धकेलने वाली स्थितियों का कटु विरोध कर आम आदमी के प्रति अपनी पक्षधरता प्रकट करते हैं। वस्तुतः रचनाकार की सामाजिक प्रतिबद्धता ही उनकी कृतियों को मूल्यवान बनाती है। भूमंडलीकरण दरअसल आम आदमी के कल्याण के लिए नहीं, बल्कि उच्च्य वर्ग की सुख-सुविधा के लिए है। मिसाल के तौर पर बाजार में वही जाता है जिसके पास बिकने के लिए कुछ न कुछ होता है या खरीदने की सामर्थ्य होती है। निर्धन लोग जिनके पास ये दोनों नहीं है, बाज़ार की शक्तियों के सामने निरर्थक हो जाते हैं। यह सत्य है कि वैश्वीकरण के फलस्वरूप अनेकानेक आधुनिक मशीनें, नवीन घरेलू चीज़ें, आकर्षक इलेक्ट्रोनिक उपकरण, यहाँ तक कि चलती-बोलती गुड़ियाँ तक देश के कोने-कोने में स्थित बाज़ारों में उपलब्ध है। लेकिन आम आदमी तथा निम्न वर्ग के लोगों के लिए ये केवल दूर से देखने की चीज़ें मात्र हैं। निजीकरण की प्रक्रिया ज़ोरों पर चलने के कारण ये लोग दिनोंदिन अधिकाधिक दुर्बल बन रहे हैं और उनकी क्रयशक्ति कम हो रही है। भूमंडलीकरण की आड़ में बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद आदि का अन्धाधुन्ध स्वागत-सत्कार करने वाले शासक केवल आर्थिक पक्ष को महत्व देते हैं, इससे संभाव्य नाना प्रकार की विपत्तियों के बारे में या तो अनभिज्ञ हैं या उन्हें अनदेखा करते हैं। डॉ. पुरूषोत्तम ओसापा ने ठीक ही लिखा है

"खुली खिड़कियों वाली अर्थ-व्यवस्था समस्त सामाजिक समस्याओं का समाधान करने वाली संजीवनी बूटी की तरह स्वीकार कर ली गई है। विज्ञापनों की चकाचौंध भरी उपभोक्ता संस्कृति आज समूची सामाजिकता की पहचान बन गई है। बाज़ार की सारी सोच सिर्फ मुनाफाखोरी पर केन्द्रित रहता है, इस कारण भावुकताभरी संवेदनाएं, सांस्कृतिक परम्पराएं और हार्दिक अनुभूतियाँ उसके लिए निरे बेमानी हो जाते हैं।"[१७] संक्षेप में कहा जा सकता है कि ताकतवर बाज़ार की शक्तियों के सम्मुख निष्प्रभ हो जाना वर्तमान युग के आम आदमी की नियति बन गयी है। यह सत्य है कि भूमंडलीकरण एक अनवरत प्रक्रिया है जिससे बचकर आगे बढ़ना बिल्कुल असंभव है क्योंकि आजकल दुनिया का कोई भी राष्ट्र द्वीप की भाँति अलग नहीं रह सकता। डॉ. ब्रह्मस्वरूप शर्मा लिखते है "उपभोक्तावादी संस्कृति कहकर उत्पादन के नवीन साधनों, वैज्ञानिक वितरण व्यवस्था, लाभोन्मुखी पूंजी निवेश, रोज़गारपरक बाज़ार-व्यवस्था, गहराते अंतर्राष्ट्रीय संबंध आदि की भर्त्सना जनहितकारी प्रगतिशील सामाजिक व्यवस्था नहीं कही जा सकती। विश्व का कोई भी राष्ट्र या समाज स्वयंभू, स्वयंपूर्ण, निरावलम्बी, निरपेक्ष, एकाधिपति और सर्वथा असम्पृक्त नहीं हो सकता।"[१८] लेकिन हम इनके दुष्परिणामों को कम कर सकते हैं। इसलिए भूमंडलीकरण रूपी आकर्षक नारे के पीछे निहित विपत्तियों को पहचानने का तथा सचेत, सजग और सतर्क होकर उसकी खामियों से बचने के लिए सही कदम उठाने का वक्त आ गया है। विश्व-भर में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए साम्राज्यवादी तथा पूंजीवादी ताकतें विभिन्न मार्गों से निरन्तर प्रयास कर रही हैं। मतलब है कि पुरानी मदिरा नवीन चषकों में बिकने का प्रयास वे कर रही हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनके द्वारा उठाया गया आकर्षक शब्द है भूमंडलीकरण। दूसरे शब्दों में, साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद की साजिश है भूमंडलीकरण।

सन्दर्भ सूची

१. त्रिभुवननाथ शुक्ल : साक्षात्कार पत्रिका, मार्च २००५, पृ. ७७
२. डॉ. ब्रह्मस्वरूप शर्मा : मधुमती पत्रिका, अप्रैल-मई २००६, पृ. ३८
३. कैलाश बनवासी : बाजार में रामधन कहानी संग्रह, पृ. १६
४. वही, पृ. ३६
५. वही, पृ. ४२
६. वही, पृ. ४२
७. डॉ. रमाकान्त श्रीवास्तव : मधुमती पत्रिका, अप्रैल-मई २००६, पृ. ६३
८. कुमुद शर्मा : साक्षात्कार पत्रिका, जनवरी २००६, पृ. ७७
९. कैलाश बनवासी : बाज़ार में रामधन, पृ. ६१
१०. वही, पृ. ६७
११. डॉ. रामविलास शर्मा : भारतीय साहित्य की भूमिका, पृ. ३२४
१२. कैलाश बनवासी : बाज़ार में रामधन, पृ. ११४
१३. वही, पृ. ११८
१४. वही, पृ. ११६
१५. वही, पृ. १२८
१६. घनश्याम अहिरवार : सम्मेलन पत्रिका, भाग ८८, संख्या ४, वर्ष २००३, पृ. ७२
१७. डॉ. पुरूषोत्तम ओसोपा : मधुमती पत्रिका, मार्च २००६, पृ. २४
१८. डॉ. ब्रह्मस्वरूप शर्मा : मधुमती पत्रिका, अप्रैल-मई, २००६, पृ. ३८

◇◇◇◇

भूमण्डलीकरण के दौर में कथा सत्यनारायण की प्रासंगिकता

❒ *दिव्या माथुर*

आज बुद्ध पूर्णिमा का दिन था और एक अर्से के बाद सुशीला सत्यनारायण का पाठ करने को उद्यत हुई थीं। जितनी शिद्दत से वह पूजा कर रही थीं, उतनी ही तन्मयता से उनकी बेटी रूपा अपनी भवों को चिमटी से नोचे चली जा रही थी। मजाल है कि कथा का एक शब्द भी उसके कानों से गुजरा हो। उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया कि वह रूपा की ओर न देखे किंतु उनकी सारी इन्द्रियाँ मानो रूपा की चिमटी पर केन्द्रित थीं। सामने बैठा था उनका पुत्र राकेश जिसका दिमाग अवश्य दुकान की किसी उधेड़ बुन में उलझा था। अपने पिता की तरह, वह बार-बार अपने माथे को छू रहा था। उसके दिवंगत पति, नवीन को जब भी कोई चिंता सताती थी, वह बार-बार अपने माथे को उंगलियों से छूते रहते थे। ऐसे में सुशीला उनका हाथ पकड़ लेती और पूछती कि उन्हें क्या परेशानी थी। छोटी-छोटी बातों से भी परेशान रहता है राकेश भी। अरे क्या फ़र्क पड़ता है यदि दुकान साढ़े नौ बजे न खुलकर एक दिन ग्यारह बजे खुल जाए।

राकेश के साथ बैठी थी उसकी नवयौवना पत्नी, निधि जो शायद सोच रही थी कि कब कथा का पाँचवा अध्याय आरंभ हो तो वह प्रसाद लगाने की तैयारी करे। अपनी उंगलियों को दरी पर टिकाए वह घुटनों के बल पर बैठी थी, मानो रैडी स्टैडी गो के होते ही वह जल्दी से उठ के भाग पाए। सुशीला कुछ करने या कहने की सोचती ही है कि निधि को पता लग जाता है कि क्या करना है। जैसे अपने मालिक की ओर नज़र जमाए कुत्ता जानता है कि गेंद किस दिशा में जाएगी। उसे हर काम की जल्दी रहती है, उसका बस चले तो कल सुबह का नाश्ता आज ही बनाकर रख दे।

स्वयं सुशीला का ध्यान बार-बार कथा से उचट रहा था। कभी वह नवीन के बारे में सोचने लगती तो कभी बच्चों के उखड़े व्यवहार के बारे में। बार-बार वह अपना ध्यान खींच कर कथा पर लाती, किंतु वह कुछ ही क्षणों में फिर कहीं भटक जाता। दो ही साल पहले तो नवीन की अचानक मौत हो गयी थी और तब से पूजा पाठ में उनका मन बिल्कुल नहीं लगता था। सुबह जब निधि ने बताया कि आज पूर्णिमा है तो वह शायद उस ही की खातिर सत्यनारायण की कथा करने को मान गई। घर में सब कुछ था किंतु निधि बाज़ार से पूजा का सामान खरीद लायी कि घर में रखी चीज़ें तो सब जूठी हैं। इतनी श्रद्धा और निष्ठा तो सुशीला में स्वयं भी नहीं थी। उसके इसी आचार व्यवहार से तो वह निधि पर रीझ गई थी।

'श्री कृष्ण गोविंद हरे मुरारी, हे नाथ नारायण वासुदेवा,' हर अध्याय के बाद संपुट लगाकर पढ़ने में बहुत समय लग रहा था। किंतु निधि को तो मानो कीर्तन करने का मौका ही चाहिए था। सुशीला का बस चलता तो वह एक बार में ही जल्दी से कथा पढ़ डालती ताकि किस्सा खत्म हो और सबको छुट्टी मिले। क्या फ़ायदा जब किसी का मन ही नहीं है कथा सुनने का तो।

'आज लकड़ी बेचने से मुझे जो भी धन प्राप्त होगा, उससे मैं सत्यनारायण का व्रत करूंगा। ये विचार कर लकड़ियाँ सिर पर रख वह उस नगर में गया, जहाँ धनवान लोग रहते थे। उस दिन लकड़हारे को लकड़ियों

❒ *८३/ए, डेकन रोड, लन्दन*

का दाम दूना मिला।'

राकेश की दबी-दबी हंसी सुनकर सुशीला ने सिर उठाया तो देखा कि वह निधि से कह रहा था, 'धनवानों के शहर में जाएगा तो उसे अच्छे दाम मिलेंगे ही। ये बात उसके दिमाग में पहले क्यों नहीं आई ?'

माँ को अपनी ओर देख वह चुप हो गया। भँवे नोचनी छोड़ रूपा ने भाई और भाभी पर एक चुभती नज़र डाली और फिर माँ की ओर देखा मानो कह रही हो कि उन्होंने ही बहू बेटे को सिर पर चढ़ा रखा है।

राकेश की ही तरह नवीन भी चाहे कथा का कितना ही मज़ाक न उड़ाते रहे हों किंतु कथा के समय हमेशा पत्नी के साथ बैठते थे और संपुट गाने में भी सुशीला का साथ अवश्य देते थे। प्रसाद खाते समय वह हमेशा कहते थे कि कथा तो सुनी ही नहीं, केवल यही सुना कि किसने किससे सुनी, किस किसका कैसे कैसे सत्यानास हुआ। सुशीला स्वयं भी यही सोचती थी कि भगवान के डर के मारे वह कभी कुछ कहती नहीं थी।

'लीलावती पति के साथ आनंदित हो सांसारिक धर्म में प्रवृत हो गई और भगवान कि कृपा से गर्भवती हो गई। दसवें महीने में उसने एक श्रेष्ठ कन्या को जन्म दिया'। तीसरा अध्याय अभी शुरू ही हुआ था कि सुशीला को नवीन की याद इतने जोर से सताई कि यकायक वह चुप हो गई। नवीन होते तो खूब चुटकी लेते कि 'सांसारिक धर्म में पहले ही लीन हो जाते तो अब तक दसियों बच्चे हो गए होते, ये सांसारिक बातें भी क्या भगवान को ही बतानी होंगी ?' अथवा 'दसवें महीने में नहीं तो क्या कन्या का जन्म बारहवें महीने में होता ?' सुशीला को लगा जैसे कि किताब के पन्नों पर स्याही फैल गई हो। शब्द गड्डमड्ड हो गए।

'मम्मी जी, मैं पढ़ूँ क्या ?' निधि ने उनकी धुंधलाई आँखों को देखकर पूंछा तो उन्हें सुधि आई और वह आँखे पोंछ कर फिर पढ़ने लगीं।

'पुत्री तू रात भर कहाँ रही और तेरे मन में क्या है ?' पंडित जी कथा के जब इस वाक्य पर पहुंचते तो नवीन पत्नी को हल्के से छूकर शरारती अंदाज़ में आँखों ही आँखों में पूछते, 'तेरे मन में क्या है ?' तो सुशीला के गाल कान तक लाल हो जाते।

पिता की तरह ही राकेश भी कथा के भिन्न अध्यायों पर टिप्पणियाँ कसने से बाज़ नहीं आता। सास की तरह ही आँख तरेर कर निधि पति को ऐसा कहने से वर्जित करती है, 'भगवान नाराज़ हो जाएंगे।' बवंडर सी यादें उन्हें झकझोर के रख देती हैं। सुशीला को अच्छा भी लगता है और बुरा भी। बहू बेटे के संबंधों को इस नज़र से देखना क्या उचित है, यही सोच के वह शर्मिंदा भी होती रहती हैं।

'हे दुर्बुधि तूने मेरी आज्ञा के विरूद्ध जाकर बार-बार कष्ट उठाया है।' राकेश बुड़बुड़ाया, 'लुक्स लाइक पर्सनल वैंडेट्टा टु मी। ईसा मसीह को देखो, एक बार माफी मांग लो तो वह झट माफ कर देते हैं और एक हमारे सत्यनारायण स्वामी हैं कि बेचारे के पीछे हाथ धोकर ही पड़ गए।'

कहीं सत्यनारायण स्वामी के क्रोध का निशाना ही तो नहीं बन गए थे नवीन। जब वह मृत्यु शैय्या पर थे तो सुशीला ने किस देवी देवता को याद नहीं किया, कौन सा व्रत था जो उन्होंने नहीं बोला। ज़मीन पर गिर-गिर कर पति की ओर से बार-बार क्षमा मांगी, हे सत्यनारायण स्वामी, नवीन की त्रुटियों को क्षमा करो, उन्हें बचा लो, मैं जीवन भर तुम्हारी कथा करूंगी।' किंतु सत्यनारायण स्वामी ने उनकी एक नहीं सुनी।

किसी तरह चौथा अध्याय आरंभ ही हुआ था कि फ़ोन की घंटी बजी। रूपा को तो मानो बहाना ही मिल गया वहाँ से उठने का। फ़ोन पर किसी से उसकी

देर तक हा हा ही ही चलती रही। सुशीला को लगा कि कहीं उन्हें दिल का दौरा न पड़ जाए। इतना क्रोध उन्हें पहले कभी नहीं आता था। इन्हीं लच्छनों की वजह से ही तो रूपा को कोई ढंग का वर नहीं मिल पाया था। वैसे ही लोग धड़ाधड़ अपनी बहुएं भारत से ला रहे हैं। राकेश और रूपा यहाँ रच बस गए हैं और लोगों के भारत से बहू या दामाद लाने के सख्त खिलाफ़ हैं। भारत से आए मेहमानों के पहनावे और उच्चारण का जब वे मज़ाक उड़ाते हैं तो सुशीला का मन जलके कोयला हो जाता है। राकेश और रूपा के मना करने के बावजूद वह स्वयं अपनी बहू भारत से ही लाना चाहती थी। भगवान का लाख लाख शुक्र है कि निधि को देखकर राकेश मान गया, नहीं तो वह अपनी किसी काली पीली गर्ल फ्रैंड से ब्याह कर लेता।

हालांकि निधि कितनी प्रसन्न या अप्रसन्न थी, कौन जाने। राकेश का रोज़-रोज़ पब में जा बैठना और देर गए घर लौटना, उसे अवश्य खलता होगा। सुशीला बहू का बहुत ध्यान रखती हैं। उसे व्यस्त रखती हैं कि शाम को उसे राकेश की कमी महसूस न हो। कभी हिन्दी फिल्म दिखाने ले जाती हैं ये कहकर की यहाँ के बच्चे तो हिन्दी फिल्म देख ही नहीं सकते तो कभी शौपिंग पर किंतु निधि को बेकार में दुकानों में भटकना पसंद नहीं है। अब तो उसने ड्राइविंग टैस्ट भी पास कर लिया है किंतु जाए तो वह कहाँ जाए ? 'हे सत्यनारायण स्वामी, निधि को जल्दी से एक पुत्र या पुत्री दे दो तो ये घर बस जाए।' शायद भगवान इस बार सुन ही लें। वह दूनी श्रद्धा से कथा पढ़ने लगी।

आरती का समय हो गया था किंतु फोन पर रूपा की ही ही जारी थी। सुशीला ने निधि को इशारे से रूपा को बुला लाने को कहा। यह उनकी सबसे बड़ी भूल थी।

'ब्लडी हैल। 'रूपा के क्रोध में बोले गए केवल दो शब्द काफी थे। आँखों में बरसात समेटे निधि लौट आई। सुशीला का मन हुआ कि जाके अभी रूपा को घर से बाहर कर दे किंतु यह समय क्लेश के लिये नहीं था। निधि और सुशीला के मना करने के बावजूद राकेश उठा और गुस्से में रूपा से बोला, 'हाऊ डेयर यू ? व्हाट डू यू थिंक यू आर ? गैट आऊट आफ़ आवर हाऊस, बिफोर आई थ्रो यू आउट।'

'दिस इज़ माई फक्किंग हाउस ऐज़ वैल।' रूपा ने चिल्ला कर जवाब दिया। निधि दौड़ कर राकेश को मना लाई। सुशीला के हाथ पांव फूल गए, लगा कि बस अब और उनसे पूजा नहीं हो पाएगी। पूजा की थाली उन्होंने निधि को थमा दी और स्वयं वह दीवार से लगे हीटर से टिक कर बैठ गई लगा कि बिस्तर में जाके लेट जाएं और फिर कभी न उठें। जब तब उनके ज़ख्मों को उधेड़ती रहती है रूपा भी।

निधि सहमी सी आरती गा रही थी, उसकी आवाज़ मानों उसके गले में घुट गई हो। सुशीला स्वयं को कोसे जा रही थीं कि न वह उसे निधि को बुलाने भेजती और न ही निधि का अपमान होता। निडर और ढीठ सी रूपा भी आ खड़ी हुई। अब वह अपने नाखून फ़ाइल कर रही थी। रेती से घिसे जा रहे नाखूनों की आवाज़ आरती के समवेत स्वरों से कहीं ऊंची थी।

कब आरती हुई, कब प्रसाद बंटा, और कब रूपा फोन कर वापिस चली गई, उन्हें कुछ ध्यान नहीं। 'कमबख्त' शब्द उनके दिमाग में घूमे जा रहा था। इस गाली का अर्थ जानती थीं वह और इस शब्द का इस्तेमाल करने कि लिए दूसरों को रोकती भी थी।

नवीन होते तो शायद उनकी लाड़ली इतनी बद्तमीज़ न होती। न जाने रूपा के दिमाग में यह क्यों बैठ गया था कि सुशीला सिर्फ राकेश को ही प्यार करती

हैं। उसे तो वह सदा डांटती ही रहती हैं किंतु कौन माँ अपनी बेटी को घर का काम काज सिखाने के लिये डांटती डपटती नहीं ? खैर, सिवा पढ़ाई के, रूपा ने किसी काम में कोई रूचि नहीं दिखाई। बुनाई कढ़ाई तो दूर रही, रसोई के किसी काम में उसका मन कभी नहीं लगा। पति के घर जाकर वह फूहड़ ही कहलाएगी और बात घूम फिरकर वहीं आ जाएगी कि माँ ने कुछ नहीं सिखाया। वे क्या जाने कि माँ ने क्या क्या नहीं झेला कि बेटी को सुलक्षा बना पाए। निधि जैसी सुशील बहू लाकर सुशीला ने सोचा था कि रूपा कम से कम उसे देखकर ही कुछ सीखेगी किंतु राकेश के ब्याह के बाद तो रूपा और भी बद्तमीज़ हो गई। जितना निधि उसकी खुशामद करती, रूपा उतनी ही उस से ख़फ़ा होती। बेचारी निधि को लगता कि कहीं न कहीं रूपा जीजी उसी से ख़फ़ा है।

कल ही तो निधि बड़े शौक से अपनी ननद के लिए गुलाबी साड़ी लाई थी। सुबह-सुबह उसने प्यार से रूपा से आग्रह किया था कि वह आज कथा में वह साड़ी पहन ले। 'हूँ' कहकर वह साड़ी को सोफे पर ही छोड़ कर अपने कमरे में चली गई थी। ले देकर एक ही तो भाभी है, जो ननद पर अपनी जान भी देने को तैयार रहती है किंतु सुशीला तरस गई कि एक दिन वह दोनों को गलबहियाँ डाले देखें।

रूपा के सुबह उठते ही निधि उसे चाय देती, क्या नाश्ता बनाए, पूछती पर रूपा सीधे मुंह जवाब तक नहीं देती। कभी-कभी गुस्से में 'लीव मी एलोन' कहकर निकल जाती। यहाँ की कोई लड़की होती तो कब का बोलना छोड़ देती। किंतु निधि न जाने किस मिट्टी की बनी थी कि रो धोकर फिर रूपा जीजी कहते नहीं थकती। पिछली राखी पर ही निधि ने कितने उत्साह से त्यौहार मनाने की सोची थी, क्योंकि शायद उसके अपना तो कोई भाई नहीं है। रूपा के लिए वह वैंबली जाकर एक बढ़िया सी राखी और ढेर सारी मिठाई खरीद कर लाई थी।

राकेश को तो रूपा ऐसे देखती कि जैसे उसे कच्चा ही चबा जाएगी। ऐसी भी क्या दुश्मनाई और कोई कारण भी तो पता लगे। देर रात तक वह थाली सजाए बैठी रही कि रूपा जीजी आएंगी तो अवश्य प्रसन्न हो जाएंगी। न खुद कुछ खाया न ही राकेश को खाने दिया। उसे पब भी नहीं जाने दिया। सुशीला को बड़ा अच्छा लगा कि बेटा बहू की सुनने लगा था। महारानी रात के एक बजे पधारीं। तब तक राकेश बुड़बुड़ करता सोने चला गया था और रूपा की हिम्मत नहीं हुई थी कि उसे और रोकती।

'रूपा जीजी, ज़रा रूकिए, मैं इन्हें अभी बुला कर लाती हूँ। राखी तो बांध दीजिए।'

'ब्लडी हैल, राखी, व्हाट राखी ?' निधि का आग्रह ठुकराती रूपा सीधी अपने कमरे में चली गई।

सुबह नाश्ते के वक्त सुशीला ने रूपा को बताया तो था कि आज राखी है और ये कि समय पर घर आ जाना किंतु शराब के नशे में उसे घर का ही पता याद रहा, वही बहुत था। सुबह नाश्ते के वक्त भाई बहन का घमासान युद्ध हुआ। लंदनी गालियों का ऐसा आदान प्रदान हुआ कि आंखे बंद कर निधि ने अपने कान ढक लिये।

जब सुशीला रूपा की शादी पीटर से भी करने को मान गई तो सुना कि वह रूपा की सहेली के साथ घूम रहा था। रूपा कौन सी कम थी। वह उस सहेली के ब्वाय फ्रैंड के साथ घूमने लगी। घूमने क्या लगी, उसके साथ पैरिस में छुट्टियां भी मना आई। सुशीला की पड़ोसन नइमा, जिसे जहाँ भर की खबर रहती है, बता रही थी कि रूपा सलीम के साथ किंग्सबरी वाले इंडियन

पब में रोज़ जाती है।

रूपा सैंट्रल मिडलसैक्स अस्पताल में फार्मेसिस्ट के पद पर काम कर रही थी। पिछले ही हफ्ते राकेश ने माँ को बताया था कि वह अपने लिए एक फ्लैट देख रही है। सुशीला का दिल मुंह में आ गया ये सोचकर कि वह क्या कर लेगी यदि रूपा ने सलीम के साथ घर बसाने का इरादा कर लिया।

सुशीला और निधि बैल्वयू सिनेमा में गुरू फिल्म देख कर निकलीं तो एक दूजे का हाथ थामें रूपा और सलीम उनसे आ टकराये।

'दिस इज़ सलीम, माइ मम एड सिस इन लॉ।' माँ को देखकर भी रूपा को कोई संकोच नहीं हुआ बल्कि उन्हें मिलवाते समय वह सलीम के ज़रा और भी निकट आ गई।

'आप हमारे घर आइए न कभी।' हाथ जोड़कर नमस्ते करते हुए निधि के मुंह से निकल गया। वह घबरा कर अपनी सास की ओर देखने लगी कि घर आने की दावत देकर उसने कहीं कुछ गलत तो नहीं कह दिया।

उनके जाते ही निधि बोल उठी, 'मम्मी जी कितना हैंडसम लड़का है न ?' यही बात तो सुशीला की समझ से बाहर थी कि इतना हैंडसम लड़का साधारण सी रूपा के साथ क्या कर रहा है। शायद रमा ठीक ही बता रही थी कि आजकल मुसलमानों को मस्जिदों में हिदायत दी जा रही है कि दूसरे धर्मों के लड़के लड़कियों को मुसलमान बनाने से सवाब मिलेगा। कुछ तो बात अवश्य है नहीं तो काली स्कर्ट और काले टोप में, माथे पर बालों की भद्दी लटें लटकाए, एक साधारण नाक नक्श वाली लड़की को भला कोई हैंडसम लड़का क्यों घुमाएगा। सलीम को शायद पता है कि रूपा के पास पैसे की कोई कमी नहीं और अब तो वह फ़्लैट भी लेने जा रही है। आजकल के लड़के तो बस मुफ़्त में रहना चाहते हैं। आज सुबह जब निधि ने सत्यनारायण की कथा की बात कही तो सुशीला शायद इसीलिए फटाफट मान गई कि शायद उनकी ये दुविधा सत्यनारायण ही हल कर पाएं।

रूपा और सलीम के रिश्ते को लेकर राकेश उबल ही पड़ा था - सुशीला ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि भाई- बहन की ऐसी तकरार होगी। ऐसी-ऐसी अंग्रेजी गालियों का आदान प्रदान हुआ कि सास बहू बाहर बगिया में जा बैठीं।

'मम्मी जी आप परेशान नहीं होइए, कहीं आपका ब्लड प्रेशर न बढ़ जाए।' परेशान निधि उन्हें सांतवना दे रही थी और वह सोच रही थी कि चलो अच्छा हुआ कि बच्चे हिंदी नहीं बोलते - कम से कम हिंदी तो बच गई अपमानित होने से। टी. वी. पर सुनती है कई भद्दी गालियाँ और सुनती है लोगों को हंसते हुए जैसे कि ये बहुत मजे की बात हो। कोई फिसल जाता है तो लोगों को बड़ा आनंद आता है। सुशीला को यहाँ की संस्कृति कभी समझ में नहीं आई। नाले में रहने वाले बच्चे कीचड़ में कैसे अछूते रह सकते हैं। धर्म-कर्म के नाम पर तो युवा काटने को दौड़ते हैं। क्या सचमुच कलयुग आ गया है, धर्म क्या धरती से उठ जाएगा। किंतु पोप की मृत्यु पर कितने युवा इकट्ठे हुए जैसे कि सीमा तोड़ कर समंदर शहर में आ घुसा हो। किंतु वह यह भी देखती हैं कि उसकी सहेलियों के बच्चे कैसे सुशील हैं आंटी जी और आपा कहकर अदब से बात करते हैं। उसके अपने बच्चे क्यों नहीं सीख पाए ये अदब, भारत की संस्कृति।

बाथरूम जाने के लिये वह अपने शयनकक्ष से निकली तो राकेश की आवाज़ सुनाई दी, 'पुत्री तेरे मन में क्या है ?'

'धीरे बोलो, माँ जी सुन लेंगी।' निधि की फुसफुसाहट ने उनके सारे क्लेष धो दिये। मुस्कराती हुई वह जल्दी से वहाँ से हट गई।

भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ और हिंदी भाषा

❐ प्रा. डॉ. सतीश यादव

आर्थिक उदारीकरण, आर्थिक सुधार, खुली अर्थ नीति, निजीकरण तथा भूमंडलीकरण कुछ ऐसे सकारात्मक शब्द हैं जो विश्व के नये विधान की पैरवी में बार-बार इस्तेमाल होते हैं। इन शब्दों से यह अहसास दिलाया जाता है कि, वैश्वीकरण एक जरूरी आर्थिक प्रक्रिया है, जिसके बगैर इक्कीसवीं सदी में मानव जाति का कल्याण संभव नहीं। जाति, धर्म और राष्ट्र के जटिल बंधनों में कैद सोचने-समझने वाले मध्यमवर्गीय इन्सान को यह बात तर्कसंगत और उचित भी लगती है। वह सोचता है कि बंधनों से मुक्त होकर वह उन सारी सुविधाओं को भोग सकेगा, जिनका मजा न्यूयार्क या फ्रेंकफर्ट में रहने वाला एक आम नागरिक ले रहा है, किंतु यह एक छलावा मात्र है। प्रतिबंधों से मुक्ति के इस विकल्प का अधिकांश फायदा एक खास वर्ग-विशेष तक ही सीमित होकर रह जाएगा। जाहिर है कि 'पूंजा के निर्माण' की प्रक्रिया में पहला और अधिकांश फायदा प्रारंभिक पूंजी लगाने वाले का होगा, फिर कुछ हद तक क्रय क्षमता रखने वाला उपभोक्ता लाभान्वित होगा। किंतु क्रय-क्षमताविहीन गरीब आदमी या तो फटी-फटी आँखों से सारी प्रक्रिया को देखता रह जाएगा, या फिर प्रचार-विज्ञापन के भ्रमजाल में फंसकर वह जिंदगी की मूल जरूरतें मुहैया करने के लिए कमाए पैसे को 'गोरेपन बढ़ानेवाली क्रीम' या फिल्मी सितारों के मनपसन्द साबुन या 'लहर नमकीन' पर खर्च कर डालने पर आमादा होगा। मित्रों, भूमंडलीकरण के भुक्तभोगियों की यह सच्चाई है। परिमाणतः भूमंडलीकरण ने जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है।

हमारे देश में भूमंडलीकरण की शुरूआत १९९१ से हुई। उस समय तक हमारे शासक वर्ग को यह पक्का यकीन हुआ था कि हम कमजोर हैं और हमारे सामने कोई विकल्प नहीं है। तय पाया गया कि अपनी कमजोरी से पार पाने का सिर्फ एक ही रास्ता है- भूमंडलीकरण, क्योंकि एक तरफ हमारी नीतियाँ नाकाम हो रहीं थीं और दूसरी ओर विश्व बैंक- अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष भारत में ग्लोबलाइजेशन का नुस्खा लागू करने के लिए तैयार बैठे थे। परिणामतः वर्तमान प्रधानमंत्री तथा विगत मंत्रीमंडल के वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के कार्यकाल में 'खुली आर्थिक नीति' का अवलंब करना भारत में शुरू हुआ, किंतु हम देख रहे हैं, पिछले पंद्रह सालों में व्यक्तिवाद बढ़ा है और इसी परिप्रेक्ष्य में प्रगतिशील शक्तियाँ कमजोर हुई हैं। यह विश्वास भी कमजोर हुआ है कि संगठित प्रतिरोध से कुछ हासिल किया जा सकता है। इसके नतीजे हमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा भाषिक क्षेत्रों में देखने को मिल रहे हैं।

भूमंडलीकरण बनाम भूमंडीकरण

भूमंडलीकरण औद्योगिक क्रांति का दूसरा अध्याय है। विश्व व्यापार संघटन द्वारा प्रस्तुत आर्थिक वैश्वीकरण को मीठा नाम दिया गया- भूमंडलीकरण। उत्पादन एवं वितरण सभी मिलकर कर सकें। विश्व नगर का सपना साकार हो। पश्चिम के विकसित देश और अन्य

❐ अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, शिवाजी महाविद्यालय रेणापुर जिला लातूर (महाराष्ट्र)

विकसनशील देश आगे बढ़ सकें। नयी तकनीकि से उत्पादन और सूचना तकनीकि से जुड़कर विश्वस्तर पर व्यापार संभव है। वैचारिक आधार है कि आज विश्व एक ओर निकट हो गया है अर्थात 'ग्लोबल विलेज' की अवधारणा अवतीर्ण हो गयी है। वास्तव में भूमंडलीकरण ने दुनिया को 'भूमंडी' बनाम बाजार का रूप दिया है।

भूमंडलीकरण से जीवन के सभी क्षेत्र प्रभावित हैं- राजनीति, अर्थनीति, संस्कृति, कला, साहित्य तथा भाषा। वस्तुतः इस अभियान ने देश की सीमाओं को जरूर तोड़ा है किंतु उसी के साथ बाजार की सारी नीतियाँ प्रवेश कर रही हैं। बाजार का एक ही मूलमंत्र होता है- लाभ कमाना। इसी दृष्टि को मद्दे नजर रखते हुए इस नीति का दूरगामी परिमाण हिंदी भाषा तथा भारतीय भाषाओं पर हुआ है, जो भविष्य में विविधोन्मुख चुनौतियों के रूप में हमारे सम्मुख खड़ा है।

इस्त्राइल के सर्वाधिक लोकप्रिय प्रगतिशील लेखक ऐमोज ओज कहते हैं कि, "हर देश और काल में तानाशाही, दमन, नैतिक दमन, अत्याचार और नरसंहार का प्रारम्भ हमेशा भाषा के प्रदूषण और विकृत, क्रूर सत्यों को शराफत और सादगी भरे विश्लेषण दिये जाने से होता है या फिर जहाँ संवेदनशील और नाजुक शब्दावली की जरूरत होती है वहाँ, 'परजीवी, समाज के कीड़े' या 'राजनीतिक कोढ़' जैसे उथले और अमानवीय शब्द इस्तेमाल में लाए जाते हैं। लेखक को यह समझ लेना चाहिए कि जहाँ भी इन्सानों को परजीवी या कीड़ा कहकर बुलाया जाने लगता है वहाँ हत्यारे दस्तों और निष्क्रमणात्मक कार्रवाइयों के दिन बहुत दूर नहीं होते। जब भी युद्ध को शान्ति का नाम दिया जाता है, दमन और अत्याचार को सुरक्षा कहकर बुलाया जाता है और नरसंहार को मुक्ति की संज्ञा दी जाती है तो भाषा के इस दूषण के साथ-साथ जीवन एवं मानवता के अपवित्रीकरण की तैयारी अनिवार्यतः शुरू हो जाती है।" ऐमोस ओज के उद्धरण से यह जाहिर होता है कि, सामाज्यवादी ताकतें मुखौटा पहनकर कैसे मानवीय जीवन को गड्डमड्ड कर रही हैं ? ये भूमंडलीकरण की ही देन है। यहाँ आकर मनुष्य संसाधन के रूप में परिवर्तित हो जाता है। मानव के अस्तित्व पर ही मानो प्रश्नचिह्न उपस्थित करता है।

भूमंडलीकरण ने कई सारी चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं- आर्थिक उदारीकरण-वैश्वीकरण का नया साम्राज्यवादी रूप है। साम्राज्यवाद की प्रकृति यही होती है कि वह वणिक वृत्ति से लाभ कमाए। पिछले पंद्रह सालों से साम्राज्यवाद के फैलने, फलने-फूलने की कथा बयान होती है। देशी उत्पादन खतम हो रहे हैं, विदेशी कंपनियों के आक्रमण से देशी उद्योग बंद हो रहे हैं, भारतीय किसान देशी बीज खो चुके हैं, अत्यंत भयावह स्थिति का सामना न कर पाने की वजह से किसान आत्महत्या कर रहे हैं। बेरोजगारी में इजाफा हुआ है। युवाओं का बहुत बड़ा वर्ग 'कार्य संस्कृति' से विलग हुआ है। पर्यावरण प्रदूषण, मीडिया द्वारा आक्रामक मुद्रा में विज्ञापन के सहारे उपभोक्ता संस्कृति का खुला नर्तन, सांस्कृतिक आक्रमण से आतंकित भारतीय समाज मन, नारी देह का उन्मुक्त प्रदर्शन या यों कहें संस्कृति का विकृतीकरण-ऐसी कई चुनौतियाँ बाहें फैलाकर खड़ी हैं। ऐसे नाजुक समय में एक समग्र विशाल भारतीय मन की जरूरत है, और उसी की तलाश में भारतीय भाषाएँ तथा साहित्य है।

मित्रों, वैश्वीकरण मुट्ठीभर लोगों के हित का मायाजाल है, क्योंकि, वैश्वीकरण का सबसे अधिक लाभ विकसित देशों को हुआ है। जहाँ पश्चिम में आर्थिक

स्वावलंबन के नाम पर मनुष्य को मुक्त होने का अहसास दिलाया है, वहीं दूसरी ओर बौद्धिक गुलामी का एक नया दौर शुरू हो चुका है। किंकर्तव्यविमूढ़ मुद्रा में खड़े भारतीय मनुष्य को उबारना आज के समय की सबसे बड़ी चुनौती है। परिणामतः बौद्धिक और सांस्कृतिक गुलामी के इस दौर में हमें और अधिक सचेत होना होगा, जागरूक होना होगा।

मित्रों, एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय की ओर मैं आपका ध्यान खींचना चाहूँगा, क्या वजह है कि १९९१ के बाद ही भारत में विश्व सुंदरियों की बाढ़ आ गयी है। सौंदर्य का उन्मुक्त प्रदर्शन शुरू हो जाता है। सुंदरता के मायने बदलने लगते हैं। मित्रों, यह अनायास नहीं हुआ है, यह साम्राज्यवादी ताकतों का बहुत बड़ा षडयंत्र है। क्या १९९१ से पहले भारत में सुन्दर स्त्रियों की संख्या कम थी ? क्या इसके पहले बुद्धिगत सौंदर्य में भी भारतीय स्त्रियाँ साधारण थीं ? वास्तव में यह भूमंडलीकरण का ही नजारा है। क्योंकि, साम्राज्यवादी देशों को भारत नाम का बहुत बड़ा 'मार्केट' मिल गया है। यहाँ की कुल जनसंख्या में ४०% मध्यवर्ग अपना अस्तित्व रखता है। सौंदर्य प्रसाधन खरीदने के लिए बहुत बड़ा ग्राहक यहाँ मिल जाता है। इसी का नतीजा है कि १९९१ के बाद भारत में धड़ल्ले से विश्व सुंदरियों का बाजार गर्म होने लगता है। मित्रों, सौंदर्य दर्शन की वस्तु है, प्रदर्शन की नहीं। किन्तु भूमंडलीकरण ने प्रदर्शनप्रियता को बढ़ावा दिया है। आनेवाले समय में निश्चित रूप से हमारे सांस्कृतिक मूल्यों को उद्ध्वस्त करने पर भूमंडलीकरण आमादा है। ऐसे समय में हमें इस चुनौती को स्वीकार करना होगा।

वैश्वीकरण के तकाजे ने निश्चित ही फासीवाद को बढ़ावा दिया है। बदलती हुई इस दुनिया में भाषा के सर्वव्यापी प्रदूषण की आड़ में फासीवादी शक्तियों का जो जमाव हो रहा है, उसमें एक संवेदनशील व्यक्ति, नागरिक या लेखक की भूमिका क्या हो सकती है ? मित्रों, व्यक्ति को सचेत होना होगा, हमारी मानव मुक्ति की आड़ में आ रहे अवांछित तत्वों को निकाल फेंकना होगा। एक सचेत नागरिक का यह दायित्त्व होता है कि वह समाज और राष्ट्र निर्माण की धुरी बन सके, किंतु भूमंडलीकरण के नाम पर फिर गुलामी का नया कांड रचा जा रहा हो, तो उसे उन इरादों को नाकाम करना होगा। पुनः अपने अस्तित्व और अस्मिता की लड़ाई के लिए भाषा के नए औजार को तलाशना होगा। विचारशील व्यक्ति या लेखक का दायित्त्व यह होता है कि, वह फूल को फूल कह सके, कीचड़ को कीचड़, झूठ को झूठ, अत्याचार को अत्याचार और यातना को यातना। लेकिन उसमें माद्दा भी होना चाहिए कि तथाकथित सभ्यता के नाम पर हो रहे शोषण का डटकर विरोध करें। किसी प्रकार के प्रलोभन से खुद को न बेचे। यह विश्वास भी होना चाहिए कि, उन्हें अपने संगरमरी मकबरें मुबारक हों, हम अपनें विवेकपूर्ण, नपे-तुले खंडीत मोजेकों पर अडिग रहेंगे।

भूमंडलीकरण के प्रभाव से भारतीय भाषाएँ अत्यधिक मात्रा में प्रभावित हुई हैं। इस नीति ने हिंदी भाषा को कितना कुछ प्रभावित किया है, इसे निम्नांकित मुद्दों के आधार पर समझा जा सकता है।

आर्थिक गुलामी बनाम भाषिक गुलामी

१९९१ के बाद से हिंदी भाषा वैश्वीकरण से प्रभावित हुई है। भूमंडलीकरण ने जहाँ हमारे सारे बाजार को अपने कब्जे में लिया है, वहाँ भाषा भी कैसे

बच पाती ? भाषा के आदान-प्रदान से जरूर उसमें नयी शब्दावली आयी हैं किंतु संचार क्रांति के इस युग में भाषा अपना मूल सरोकार से भटकाव के कगार पर खड़ी होती दिखाई दे रही है। अर्थतंत्र ने भाषा को, शब्दावली, वाक्य रचना तथा उसके रूपबंध को बुरी तरह से प्रभावित किया है। एक तरह से पश्चिमी भाषा का बोलबाला होने लगा है।

वर्चस्वशाली साम्राज्यवादी ताकतों की भाषा का उदय

वास्तव में वैश्विक आर्थिक चिंतन एक नये प्रकार का साम्राजयवाद है। यह पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का नया वैश्विक रूप है। इसमें उत्पादन, विज्ञान, व्यापार, अधिकतम अर्जन और उपभोग को ही जीवन का सर्वस्व माना है। उपभोक्ता संस्कृति का प्रवर्तक है। पश्चिम की उपभोक्ता या भोगवादी संस्कृति का पुरस्कर्ता है। इसलिए इसमें विश्व को एक बाजार मान लिया है। उसकी दृष्टि में मनुष्य मात्र उपभोक्ता है। बाजार पर अधिपत्य जमाना वैश्वीकरण का तकाजा है। इसके लिए वह नई अर्थनीति, नई अर्थदृष्टि और नई उपभोक्ता जीवन-शैली को विकसित कर रहा है। अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए उसने भाषा को औजार के रूप में इस्तेमाल किया है। एक ओर भाषाएँ वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम बन रही हैं तो दूसरी ओर शब्द संस्कृति का नया वैश्विक रूप धारण कर रही हैं। वैश्विक स्तर पर भाषाओं को लेकर अब नये सिरे से चिंतन शुरू हो गया है। यह समय मानवता के लिए संकट का समय है, जहाँ भाषा का भी बच पाना संभव नहीं।

भूमंडलीकरण के प्रभाव से बोलियाँ लुप्त

भूमंडलीकरण ने जहाँ एक ओर हमारे शहरों का नक्शा बदल दिया है, वहाँ दूसरी ओर गाँव भी उससे बुरी तरह प्रभावित हैं। प्रत्येक प्रांत की अपनी प्रांतीय भाषा हुआ करती है, ठीक उसी तरह प्रांत में बोली जानेवाली बोलियाँ भी होती हैं, किन्तु आज भूमंडलीकरण के चलते बोलियों की उपयोगिता पर प्रश्न चिह्न खड़ा हो रहा है।

भाषा का एक महत्वपूर्ण रूप बोली जाने वाली भाषा से होता है। बोली भाषा में सहजता, अकृत्रिमता तथा स्वाभाविकता की गंध होती है। हिंदी की अनेक बोलियाँ प्रचलित हैं। यह बोलियाँ स्थानीयता का रंग (Local /Touch) लिये हुए रहती हैं। जिसमें मिट्टी की गंध, अपनेपन की खुश्बू और सहजता का भाव छिपा हुआ रहता था, किंतु वर्तमान में वैश्वीकरण से बोली भाषा प्रायः लुप्त होती जा रही है, परिणामतः हिंदी की अनेक बोलियाँ वैश्वीकरण के कुप्रभाव से धीरे-धीरे खतम हो रही हैं।

ग्रामांचल, कृषि से संबंधित शब्दों का ह्रास

ग्रामीण जीवन से संबंधित ढेरों शब्द दैनिक जीवन में रूढ़ थे। ग्रामीणता का अहसास तथा गंध उसमें हुआ करती थी। ग्रामीण समाज में भूमंडलीकरण से तेजी से परिवर्तन हो रहा है। गांव की आर्थिक नीतियाँ, समाज व्यवस्था और सांस्कृतिक नीतियों में मूलभूत परिवर्तन आने लगा है। परिणामतः ग्रामांचल के अपने कुछ विशिष्ट शब्द अब अप्रचलित होने लगे हैं। गांव की मिट्टी की खुश्बू, अपनापन अब समाप्त होने लगा है।

औद्योगिकरण के चलते कृषि क्षेत्र में बुनियादी परिवर्तन आ रहा है, कृषि क्षेत्र से संबंधित हजारों शब्द अब अप्रचलित होते जा रहे हैं। उनके संदर्भ बदलने लगे हैं या शब्दकोश के बाहर होते जा रहें है। कृषि क्षेत्र

में अब नये शब्दों का प्रचलन शुरू हुआ है। स्थितियाँ बदली हैं, जीवन की ओर देखने का दृष्टिकोण भी बदलने लगा है। कृषि से संबंधित हजारों शब्द अटाले में पड़ते जा रहे हैं, इसकी ओर हमें गंभीरता से देखना होगा।

विज्ञापनीय भाषा रूप

आज का युग विज्ञापन का युग है। यहाँ हर छोटी से छोटी और और बड़ी से बड़ी वस्तुओं का विज्ञापन करना अनिवार्यता बन गयी है। परिणामतः हिंदी भाषा का एक नया रूप विज्ञापनीय भाषा के रूप में उभरकर सामने आ रहा है। अन्य भाषा के शब्दों के प्रयोग से मिश्रित रूप परिलक्षित हो रहा है। जहाँ एक ओर भाषा के इस नए रूप ने नए शब्द हमें दिए हैं, वहाँ दूसरी ओर भाषिक रूपबंध पर कुछ सवाल जरूर पैदा किए हैं।

निष्कर्ष

भाषा - संस्कृति, धर्म, इतिहास, समाज, राजनैतिक व्यवस्था आदि में एक अहम भूमिका निभाती है। इन क्षेत्रों के क्रियाकलापों तथा व्यवहारों को व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक रूपों में ध्वनित, संचालित एवं संप्रेषित करने की प्रक्रिया में भाषा का अपना बहुआयामी व्यक्तित्व भी निर्मित होता चला जाता है, जिससे भाषा स्वयं को संस्कारित तथा परिपक्व होती रहती है और गंभीर विषयों को अभिव्यक्त करने की क्षमता अर्जित करती रहती है, परंतु समय-समय पर मानवीय समाज में कई स्तरों पर बहुआयामी परिवर्तन आते हैं, तब भाषा के सामने स्वयं को अपने प्रचलित एवं एक स्तर पर स्वयं से ही सम्बन्धित अपने व्यक्तित्व को बनाए रखने तथा उसे आकर्षक बनाने की चुनौती का भी सामना करना होता है। इस प्रक्रिया में वह नए परिवेश में, स्वयं को ढालने के लिए लचीला रूख भी अपनाती है और स्वयं में कई नए आयाम जोड़ देती है। इस प्रकार वह समयानुसार व्यावहारिक बाना धारण कर अपने को समृद्ध करती चली जाती है।

वैश्वीकरण के इस युग में आज हिंदी देश की सीमाओं को लांघकर दुनिया के १३३ विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जा रही है। हिंदी ने बाजार-व्यापार के माध्यम से अपनी जगह बना ली है। हिंदी विशाल और विविध विषयों की अभिव्यक्ति में सक्षम होने की प्रवृत्ति को लक्षित कर रही है। अपने विविध रूपों को, विविध क्षेत्रों को प्रकाशित कर रही हैं- जैसे- फिल्मों की हिंदी, टी.वी. समाचारों की हिंदी, अखबारों की हिंदी, बाजार की हिंदी, विदेशों में रहने वाले अप्रवाशी भारतीयों और उनके बच्चों की हिन्दी, मॉरीशस और फिजी की हिंदी, कान्वेट और आई.टी. के क्षेत्र की हिंदी, पत्रकारों और साहित्यकारों की हिंदी, उर्दू के साथ सजी शायरों की हिंदी .... ये कुछ उदाहरण है जो हिंदी की विविधता, समृद्धि और उपयोगिता की ओर इशारा करते हैं।

मित्रों, भूमंडलीकरण के दौर में भाषा के 'रूप' और 'संरचना' में काफी कुछ बदलाव आ रहा है। उसकी बनावट मुकम्मल अर्थ की तलाश में नहीं, संरचना के स्तर पर बन रही है। वर्तमान में वह अनेक स्तरों पर परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। देखना होगा कि, आनेवाले समय में भाषा का बनता नया रूप कौन सी करवट लेगा ? वह सार्थक होगा या ... किंतु एक बात निश्चित है भाषा के इस बदलते परिप्रेक्ष्य में मनुष्य को समझना नितांत आवश्यक बन गया है, क्योंकि, भाषा का सवाल संस्कृति और सभ्यता के अस्तित्व का भी सवाल होता है।

भूमण्डलीकरण से संस्कृति का सपाटीकरण एवं भाषा का महत्व

❑ डॉ. सुरेश एफ कानडे
❑❑ ममता यादव

भूमंडलीकरण शब्द आजकल सर्व सामान्य शब्द की तरह प्रयोग किया जाने जगा है। सच तो यह है कि इस शब्द को पूरी तरह समझना आसान नहीं है। भूमंडलीकरण के लिए आज जागतिकीकरण, वैश्वीकरण व ग्लोबलाइजेशन जैसे शब्दों का प्रयोग हो रहा है। ये शब्द चाहे कठिन हों या सरल इन्हें तो आज हमें स्वीकारना पड़ रहा है। इसे टालना भी उचित नहीं होगा। इस शब्द के पीछे की प्रक्रिया आज सच बनती जा रही है, और इसी सच का हम सब सामना कर रहे है। भूमंडलीकरण शब्द का सही अर्थ सभी को पता होगा ऐसा नहीं है। भूमण्डलीकरण शब्द मुख्यतः जागतिक, आर्थिक व्यवस्था के सन्दर्भ में प्रयोग किया जाने वाला है। परन्तु इसका यह सामान्य अर्थ है। प्रत्यक्ष रूप में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया दुनिया के जीवन व्यवहार में अपने आप को शामिल करना है।

भूमंडलीकरण की आर्थिक प्रक्रिया दुनिया भर में पूँजी, व्यापार या आयात-निर्यात में बिना शर्तों के लागू करना है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना श्रेय व सेवा को खुलेपन से बेचने के लिए बढ़ावा देना है तथा बिना बाधा एक देश से दूसरे देश जाने देना है। उसके स्थलान्तरण या व्यापार के लिए सीमाएँ खोलना है। उद्योगों के सभी क्षेत्रों में प्रोत्साहन देना, साथ ही व्यक्तिगत उद्योगों को पूर्ण स्वतंत्रता देना, सरकारी नियमावली शिथिल करना आदि है। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि यह दुनिया एक बाजार है तथा इस बाजार में व्यापार व व्यवहार सभी का समावेश आवश्यक है। परन्तु भूमण्डलीकरण की यह प्रक्रिया यहीं नहीं रूकती। यह आर्थिक प्रक्रिया ऐसी है की एक बार आरंभ होने पर मानवीय जीवन के सभी क्षेत्रों को स्वयं में शामिल करती चली जाती है। इस प्रक्रिया में फिर आधुनिकीकरण, औद्यौगिकीकरण, केन्द्रीकरण, शहरीकरण, वैयक्तिकीकरण इत्यादि प्रक्रिया भी शामिल हो जाते हैं, और माननीय जीवन की रोटी से लेकर अन्य सुविधाओं की स्पर्धा आरंभ होती है। इतना ही नहीं बुद्धिप्रमाणता, वैज्ञानिकता, विवेकवाद, उपभोगवाद, इत्यादि का भी आरंभ होता है। उपरोक्त सभी बातों से किसी के भी मन में यह बात आ सकती है कि इन सबका संस्कृति से क्या संबंध है ? साहित्य एवं संस्कृति से संबंधित लेखक या पाठक को इस विचार को गहराई से समझने का प्रयत्न करना चाहिये। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया विविधांगी होने पर भी उससे एक ही बात सम्मुख आती है वह है - "दुनिया एक जैसी" होना ही भूमंडलीकरण है। यह एक जैसी होने की प्रक्रिया दो स्तरों पर ही रही है। एक भौतिकस्तर या वस्तुरूप के स्तरपर और दूसरी मानसिक स्तर पर। भौतिकस्तर की प्रक्रिया सहज समझी जा सकती है जैसे - दुनियाभर के पुरूषों की पोशाक एक जैसी होती जा रही है-शर्ट-पेंट, कोट आदि। महिलाओं की पोशाकों के बारे में भारत में काफी विविधता है। धीरे-धीरे एक जैसी होती जाएगी। ऐसे संकेत मिलने लगे हैं जैसे शर्ट-पेंट आदि। मोटरकार कंपनियाँ अनेक होने पर भी विविध मॉडल्सों का उत्पादन कर रही हैं। तब भी स्वयंचलित चौपहिए की कल्पना एक ही है। इसी प्रकार गेहूँ व मक्का, चावल आदि से बनी हुई विविध चीजों का उपयोग बढ़ रहा है। ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये

❑ प्रवक्ता हिन्दी विभाग, एस.एम.आर.के.बी.के.ए.के. महिला महाविद्यालय, नासिक ५ (महाराष्ट्र)
❑❑ शोध छात्रा (संस्कृत) बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

जा सकते हैं जैसे - बालपेन, स्टेपलर, पिन, डिटर्जेंट पाउडर, साबुन, टूथपेस्ट, फेश पाउडर, लिपिस्टिक, ब्रेड, कोल्डड्रिंक, मिनीरलवाटर की बोतलें, कम्प्यूटर, फ्रिज, टेलीविजन, मोबाइल, डिश अन्टेना, क्रेडिट आदि वस्तुएं दुनियाभर में एक जैसी हैं या होती जा रहीं है। इससे यह ज्ञान होता है कि सम्पूर्ण दुनिया की संस्कृति एक जैसी हो रही हैं। इमारतें, रास्ते, दुकानें, सुपरबाजार मनोरंजन के साधन, यातायात के साधन व उनका उपयोग करने वाले व्यक्तियों की पोशाखें, उनका जीवन व्यवहार एक जैसा होता जा रहा है। हमारी भौगोलिक सीमाएँ एवं वातावरण अलग होने पर भी हम एक जैसे बनने के लिये प्रयत्नशील हैं। दुनिया के प्रत्येक क्षेत्र का व्यक्ति अपने क्षेत्र के अनुसार विचार करता है उसकी मानसिकता उस वातावरण से जुड़ी रहती है। इसलिए वह उसी तरह विचार एवं व्यवहार करता है। जैसे अमेरिकन व्यक्ति जिस प्रकार विचार एवं व्यवहार करता है, भारतीय व्यक्ति उस प्रकार नहीं करता है। इसलिये उसकी संस्कृति अलग होती है। परंतु भूमंडलीकरण की वजह से धीरे-धीरे एक जैसी बनती जा रही है। आज लोग एक जैसा विचार करते हैं। अपने पूरे जीवन से संबन्धित समस्याओं व समाधानों के प्रति जागरूक होने की प्रक्रिया चल पड़ी है। वृद्धावस्था के प्रति लोग सजग होने लगे है। आज दुनिया भर में विवाह की उम्र बढ़ने लगी है अर्थात परंपरा को छोड़ परिस्थितियों के आधार पर निर्णय लिये जाने लगे हैं। सामाजिक रीति:रिवाजों व बंधनों में लवचिकता आ गयी है। कुछ व्यक्ति विवाह के बंधन में न पड़कर अकेला जीवन बिताना पसंद कर रहे हैं। छोटे परिवार की संकल्पना विकसित हो रही है। मनोरंजन के प्रति दृष्टिकोण बदलता जा रहा है। इसलिए वर्ल्ड कप खेलों जैसी संकल्पना को निरंतर बढ़ावा मिल रहा है। शिक्षा से संबंधित विचारधारा एक जैसी होती जा रही है। बुद्धि के अनुसार अनेक शैक्षणिक क्षेत्रों को विकसित किया जा रहा है। पूरी दुनिया की एक भाषा होनी चाहिए यह विचार धीरे-धीरे प्रसारित हो रहा है।

यह एक जैसे या समानता की प्रक्रिया के लिए अंग्रेजी शब्द सैन्डर्डनाजेशन का प्रयोग किया जा रहा है। हिन्दी में इसके लिए 'सपाटीकरण' शब्द प्रयोग करना उचित होगा। इसका अर्थ ऐसा लिया जा सकता है कि - "सबका जीवन एक जैसा करना या मानवीय जीवन जीने की एक समान प्रक्रिया का विकास करना है।" अर्थात मानवीय जीवन की प्रक्रिया इस प्रकार तैयार की जाये कि उसके भौतिक जीवन में समस्या न रहें। ऐसी वस्तुओं का निर्माण करना चाहिए कि उसका प्रयोग सभी के लिए सभी जगह उपलब्ध हो।

आर्थिक व व्यावहारिक दृष्टि से देखने से यह ज्ञात होता है कि भूमंडलीकरण में अनेक छोटी-बड़ी प्रक्रियाएँ घटित होती रहती हैं। ये प्रक्रियाएँ विविध स्तरोंपर, विविध क्षेत्रों में, विभिन्न प्रकार से घटित होती हैं। कुछ लोग भूमंडलीकरण को समझते समय अच्छा या बुरा निर्णय देते हैं, एवं अपनी राष्ट्रीय निष्ठा के अनुसार विवाद को भी जन्म देते हैं। परंतु यहाँ भूमंडलीकरण विवाद का विषय नहीं है लेकिन एक बात जरूर स्पष्ट हो जाती है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया सांस्कृतिक सपाटीकरण की ओर ले जाने वाला एक प्रवाह है, जो धीरे-धीरे सबको अपने आप में शामिल कर लेगा। जो लोग आर्थिक क्षेत्र से जुड़े हैं, वे इसका समर्थन करते हैं। क्योंकि उन्हें अपने व्यवसाय का विस्तार दुनिया में कहीं भी करना आसान हो सके। विभिन्न देशों की राजकीय सीमाएँ व उनकी प्रशासनिक नियमावलियाँ शिथिल हों। एक देश से दूसरे देश में सहजता व बिना रूकावट के जाया जा सके। व्यवसाय या उद्योग धंधों के लिए राजकीय सीमाओं का अस्तित्व न हो एवं सम्पूर्ण दुनिया में एक जैसी अर्थव्यवस्था हो। शायद इसीलिए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की कल्पना साकार हो रही है, बहुद्देशीय कम्पनियों के लिए तो यह कल्पना सोने पर सुहागा है।

सांस्कृतिक सपाटीकरण

भूमंडलीकरण ने साहित्य व सांस्कृतिक क्षेत्र में

कुछ चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं। इनमें सबसे बड़ी चुनौती संस्कृति का सपाटीकरण है। भौतिक क्षेत्र में हो या मानसिक क्षेत्र में सपाटीकरण की यह प्रक्रिया संस्कृति की विविधता के विरोध में खड़ी हैं। इतना ही नहीं यह जीवन की विविधता को समाप्त करती चली जा रही है। यह प्रत्येक क्षेत्र में हो रहा है। जैसे प्रमुख अनाज, गेहूँ, चावल, सोयाबीन, मक्का व कुछ महत्वपूर्ण सब्जियाँ जैसे टमाटर इत्यादि का ही उत्पादन अधिक होना चाहिए, निम्नस्तर का अनाज, ज्वार-बाजरा आदि के लिये अधिक स्थान नहीं है। सभी लोगों को एक सा परिधान पहनना चाहिये जैसे पेन्ट, शर्ट, बूट आदि धोती कुर्ता, पैजामा, लुंगी, पकड़ी आदि को स्थान नहीं। ३१ दिसम्बर की रात को सम्पूर्ण दुनिया को नये वर्ष के लिए जल्लोष करना चाहिए परंतु नागपंचमी, पोंगल, बैसाखी इत्यादि त्यौहार पिछड़े हुए एवं अन्धश्रद्धा से युक्त लोगों के त्यौहार बन गए हैं। ऐसे पिछड़े लोगों के त्यौहारों को आधुनिक काल में कोई स्थान नहीं रह गया है।

भूमंडलीकरण का अर्थ पश्चिमीकरण कदापि नहीं है; परन्तु इस प्रक्रिया का नेतृत्व विकसित पाश्चात्य देशों के पास होने के कारण उनकी संस्कृति के जो मानदंड है वही दुनियाभर में फैल रहें है। कुछ पाश्चात्य देशों में प्राकृतिक विविधता नहीं है। उत्तरी गोलार्द्ध के कुछ ठंडे प्रदेशों में जीवन सृष्टि की बृद्धि तो प्रचुर मात्रा में होती है परन्तु उनमें जैविक विविधता नहीं है जैसे विशेष पेड़-पौधे, विशेष-फसलें, विशेष फल-फूल, विशेष प्राणी आदि। इसलिए उन्हें एक सपाट जीवन जीने की आदत बन गयी है व उस सपाट जीवन जीने का अर्थ ही वे जीवन समझ बैठे हैं। जैसे-अमेरिका में कहीं भी जाइये-सब शहर लगभग एक जैसे, एक ही प्रकार के रास्ते, एक ही प्रकार के यातायात के साधन, होटल्स, वही मॅकडोनाल्ड की दुकानें आदि। इसके विपरीत जैसे हम विषुववृतीय प्रदेश की ओर जातें हैं तो जैविक विविधता, तरह-तरह के पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, फल-फूल विविध प्रकार की जलवायु दृष्टिगोचर होती है। इसीलिए मनुष्य की विविध संस्कृतियाँ दिखाई देती हैं। उदाहरण के लिये केवल भारत को ही लिया जाए तो ये सारी बातें सत्य प्रतीत होती हैं। भारत में सैकड़ों जन-जातियाँ हैं उनके विविध आचार-विचार है, रहन-सहन, संस्कृति आदि भिन्न-भिन्न हैं। अन्न के विविध पकवान, विविध प्रकार की वेश-भूषा, विविध त्यौहार, विविध देवी-देवता इन सबके अलावा सम्पूर्ण देश में दो हजार से अधिक भाषाएँ प्रचलित हैं। यह विविधता आश्चर्यकारक है। यही विविधता टिकी रही व वृद्धि होती रही, यही यहाँ की संस्कृति है और यह प्रेरणा यहाँ की प्राकृतिक संपदा से मिलती हैं।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया की वजह से भारत जैसे अन्य देशों के सामने भी एक बहुत बड़ी चुनौती खड़ी है। यह प्रश्न केवल कोका-कोला, पेप्सी, ऑस्ट्रेलिया का सेब आदि को यहाँ बेचने दिया जाय या नहीं या अमेरिकन बीमा कंपनियों को मौका दिया जाय या नहीं, यहीं तक सीमित नहीं है। इसके अलावा भी अन्य चुनौतियाँ भरे प्रश्न हैं। उदाहरणार्थ-यह प्रक्रिया भारत जैसे गरीब देश के लिए उपयोगी है या नहीं। इसके लिए हम तैयार है या नहीं। इसका फायदा सर्वमान्य व्यक्ति का होगा या केवल पूँजीवादी धनिक वर्ग को होगा। ये प्रश्न एवं चुनौतियाँ बनी हुई हैं। परंतु इस प्रक्रिया से जो सांस्कृतिक सपाटीकरण हो रहा है उसके प्रति समर्थन किस प्रकार दर्शाया जाए यह मुख्य प्रश्न है। यहाँ समर्थन शब्द इस लिए जानबूझ कर प्रयोग किया जा रहा है क्योंकि भूमंडलीकरण का समर्थन या विरोध दोनों हमारी दृष्टि से लाभदायी नहीं हैं। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में पश्चिमी देशों का विशेषता' उनकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का हित समाया हुआ है। परंतु भूमंडलीकरण की प्रक्रिया सोची समझी साजिश है। ऐसा सोचना अनुचित होगा। कुछ लोग इस प्रकार से सोचते व बोलते हैं परंतु यह अनुचित है, क्योंकि मानवी संस्कृति के इस दौर में स्वीकार की जा रही, यह एक जीवन पद्धति है। राष्ट्; राष्ट्रों में बड़ी

मात्रा में विषमता है। इसलिए इस प्रक्रिया का कुछ लोगों को फायदा होगा तो कुछ लोगों को नुकसान। ऐसा निश्चित घटित होगा। परंतु कुछ देशों के प्रति साजिश है ऐसा नहीं, हमें यह सोचना होगा कि हमारा नुकसान नहीं होना चाहिए। हमें इस सन्दर्भ में सर्तकता बरतनी चाहिये। इस सर्तकता हेतु हमारे सामने कौन से प्रश्न व चुनौतियाँ होंगी यह भी अवश्य सोचना होगा। इस संदर्भ में इतिहास हमारा मार्गदर्शक बन सकता है। क्योंकि वह विविध प्रवाहों व प्रभावों से परिचित कराता है व भविष्य की दृष्टि देता है। हमें जब अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा उनमें केवल आक्रमण नहीं था। नए लोग, नया तंत्रज्ञान, नई उत्पादन पद्धति, नए धर्म ऐसे अनेक स्वरूप के प्रवाह व प्रभाव हमारे सामने आए, तब हमने क्या किया ? अनेक बार संघर्ष हुए तब हमने क्या किया ? हमारी प्रतिकार की मुख्य पद्धति कैसी थी ? उस पद्धति प्रभाव को स्वीकारने की, आत्मसात करने की या समाप्त करने की। इस संदर्भ में सैकड़ों उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं इतिहासपूर्ण काल से आधुनिक इतिहास में आक्रमणकारियों की टोलियाँ आयीं, आक्रमण किया परंतु बाद में उनका कोई नामोनिशान नहीं रहा। वे इस देश का एक भाग बन गए। नए धर्मों का उद्भव हुआ, कुछ बाहर से व कुछ देश के अन्दर से उन्हें अनुयायी मिल गए परंतु वे भी इसी परंपरा के भाग बनकर यहीं समा गए। नयी क्रांतिकारी विचारशैली का निर्माण होने लगा, परंतु कालांतर से वे भी इसी प्रवाह का भाग बन गए। नए मनुष्यों द्वारा नई रीति-रिवाज का आगमन हुआ, कुछ दिनों तक उन्होंने भी शोर मचाया परंतु वे भी लुप्त हो गए। किसी भी परिवर्तन का सामना करने के लिए हमारी पारम्परिक पद्धति उन परिवर्तनों के परिवर्तित रूप को स्वीकारती है, इसका अर्थ, शरणागति बिल्कुल नहीं है। इसलिए यहाँ अनेक साम्राज्य आए व गए, लेकिन हमारी सामाजिक संस्कृति का सातत्य आज भी टिका हुआ है। परिवर्तनों का प्रतिसाद देने की हमारी जो पारम्परिक पद्धति है, वही हमारी असली शक्ति है और इसी पद्धति का उपयोग हमें करना चाहिए। भूमंडलीकरण से जिन क्षेत्रों में भौतिक परिवर्तन हो रहे हैं उन क्षेत्रों के जिम्मेदार लोगों को उसके बारे में सोचना चाहिए क्योंकि इन लोगों को इससे सामना करना है। अर्थात् विदेशों से आने वाला खेती से संबंधित उत्पादित माल आयेगा तो इसका सामना किया जाये। भारतीय किसान व उनकी संघटनाओं को निश्चित करना चाहिए। मैंकडॉनाल्ड जैसे होटल आने पर भारतीय होटल वालों को सोचना चाहिए। चीनी माल का सामना किस प्रकार करना चाहिए इस बारे में भारतीय छोटे-उद्योगपतियों को निश्चित करना है। सुपर मार्केटस, मॉल्स का सामना कैसे करना चाहिये इस बारे में गुजराती, मारवाड़ी दुकानदारों को सोचना चाहिये।

भाषा एक महत्वपूर्ण साधन

सांस्कृतिक सपाटीकरण की चुनौतियों को साहित्य-सांस्कृतिक क्षेत्रों के लोगों को प्रतिसाद देना चाहिये। इस कार्य को करने के लिए हमारे पास सबसे प्रभावी साधन 'भाषा' है। किसी की साहित्य व संस्कृति का मुख्य अंश भाषा ही होती है। क्योंकि साहित्य व संस्कृति भाषा के माध्यम से ही व्यक्त होती है या यों कह सकते हैं कि किसी भी समाज की संस्कृति का अर्थ उसकी अपनी भाषा है। भाषा ही उसका अंग है, चेहरा है और भाषा ही उस समाज की सांस्कृतिक आत्मा।

भारत में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण दुनिया की जो सांस्कृतिक विविधता है वह भाषा से ही संबंधित है। इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली एक ही खंड के होने के बावजूद अलग-अलग हैं। इसका प्रमुख कारण उनकी अलग-अलग भाषाएँ है। अगर भाषाएँ अलग-अलग नहीं होते तो उनमें ज्यादा अंतर नहीं रहता। भारत में तो यह बात शत-प्रतिशत सत्य है कि भारतीय संस्कृतिक विविधता ही मूलतः भाषाओं की विविधता है और हम जो कुछ भी हैं उसके मूल में भाषा ही है।

भूमंडलीकरण की सबसे बड़ी चुनौती भाषा के सौन्दर्य में है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से दुनियाभर में

एक ही भाषा बोली जाए व प्रयोग की जाए, इस प्रकार की आकांक्षा की जा रही है। क्योंकि ऐसा करने से भूमंडलीकरण की प्रक्रिया आसान हो जाएगी। आज सम्पूर्ण दुनिया को एक ही सम्पर्क भाषा चाहिए। सब व्यवहार एक ही भाषा में हों, सभी को समझे ऐसा एक ही माध्यम हो ऐसी भूमंडलीकरण की प्रमुख माँग है। आजकल सम्पर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग किया जा रहा है। साथ ही यह भी समझाया जा रहा है कि अंग्रेज़ी सबको आनी चाहिए। उसे स्कूल से ही अनिवार्य विषय बना दिया गया है। जब कि भारत में सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग किया जाता है, वह आज तक अनिवार्य नहीं बन पायी है। लेकिन सब तरफ अंग्रेजी का वातावरण बनता जा रहा है। यह अनिवार्यता हमने खुशी से स्वीकार कर ली है। मूलतः भारत बहुभाषिक देश होने के कारण सम्पर्क भाषा की आवश्यकता बढ़ जाती है। परंतु मुख्य प्रश्न संस्कृति के सपाटीकरण का है क्योंकि सारी दुनिया की एक भाषा हो जाने पर सांस्कृतिक विविधता समाप्त हो जाएगी। क्या हम सांस्कृतिक दृष्टि से सपाट होकर उसके अधीन होने वाले हैं ? अगर ऐसा होने वाला नहीं है तो भूमंडलीकरण की इस प्रक्रिया में अपनी भाषा को टिकाए रखने, बचाए रखने के अलावा हमारे पास दूसरा पर्याय नहीं है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को साथ देने के लिए प्रमुख माध्यम भाषा ही है। भाषा केवल संस्कृति टिकाए रखने के लिए मर्यादित नहीं है बल्कि आवश्यक सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए भी है। क्योंकि हम भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में विरोध या शरणागति पर्याय नहीं बन सकते हैं। अगर ऐसा हुआ होता तो भाषा का महत्व नहीं रहता। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया गहराई से समझना आवश्यक है। उसमें अच्छा क्या है ? बुरा क्या हैं ? इन निष्कर्षों पर पहुँचना आवश्यक है तथा अच्छे को स्वीकार कर बुरे छोड़ देना है और जो परिवर्तन होंगे उनके अर्थ को गहराई से समझना आवश्यक होगा। उनकी समीक्षा कर नई दुनिया के एक समृद्ध संस्कृति सम्पन्न समाज रूप में जीना, ये सर्व कार्य हम केवल भाषा के माध्यम से ही कर सकते हैं। इसलिए भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से होने वाले सांस्कृतिक सपाटीकरण को अगर हमें साथ देना है तो हमें एक महत्वपूर्ण बात याद रखनी चाहिए कि - "हमें अपनी भाषा को संभालना चाहिए। प्राचीन काल से ही एक बात कही जाती है कि आप धर्म की रक्षा कीजिए, धर्म आपकी रक्षा करेगा। इसी प्रकार अब भाषा के बारे में कहना चाहिए। आप अपनी भाषा की रक्षा कीजिए व अपनी भाषा भूमंडलीकरण की प्रक्रिया की धुमश्चक्री में आपका रक्षण करेगी।"

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, जापान, अमेरिका, चीन जैसे विकसित देश अग्रसर हैं। इन सब देशों में एक समान विशेषता है कि इन देशों ने अपनी भाषा को संभाले रखा है उसका प्रचार-प्रसार किया है क्योंकि उन्हें पता है कि भाषा का अस्तित्व उनका अस्तित्व है। जापान के चलनी नोटों पर उनके लेखको की तस्वीर होती, क्योंकि समाज का भाषा को देखने का दृष्टिकोण कैसा है, यह बात समझती है। भारत में बंगाली लोग अपनी भाषा के प्रति काफी जागरूक हैं। उनका भाषा के प्रति अपार प्रेम है। उनकी भौतिक परिस्थिति कैसी भी हो, उन्होंने अपनी भाषा को संभाले रखा है। इसीलिए उनके पास रवीन्द्रनाथ टैगोर, सत्यजीत रे, स्वामी विवेकानन्द, अमर्त्य सेन जैसे जगप्रसिद्ध व्यक्ति तैयार हुए हैं।

भूमंडलीकरण के युग में अंग्रेजी भाषा ही पढ़नी चाहिए व पढ़ाई का माध्यम भी अंग्रेजी हो, यह भावना आज हमारे समाज में फैल रही है। बच्चों की प्राथमिक शिक्षा उसकी मातृभाषायें होनी चाहिए। यह विचार शत प्रतिशत सही है लेकिन अंग्रेजी को प्राथमिक स्तर से अनिवार्य करना अनुचित होगा। शिक्षा का माध्यम कोई भी भाषा हो हमें अपनी भाषा को प्रयत्नपूर्वक संभालनी चाहिये। हाँ ! जो लोग अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देना चाहते हैं उन लोगों पर यह जिम्मेदारी

और भी बढ़ जाती है।

सांस्कृतिक विविधता का होना आवश्यक है क्योंकि हमें स्वतंत्र अस्तित्व न होता तो शायद इतिहास न होता। विशिष्टपूर्ण जीवनशैली न होती तो संस्कृति न होती। हमारे पास एक भाषिक समाज का अस्तित्व हजारों वर्षों से है। यही अस्तित्व हमें संभालना चाहिये। उसका जतन करना चाहिए, हम पर परकीय देशों के आक्रमण हुए, जुल्म ढाए गए, प्राकृतिक आपदाओं की मार पड़ी तब भी हम अपनी भाषा का जतन करते रहे। इन सब आघातों को इसलिए सह सके कि हमारे पास अपनी भाषा साबूत थी। भाषा की सहायता से ही सभी परिवर्तनों का सामना किया। स्वयं का एक वैशिष्टयपूर्ण अस्तित्व बनाया, स्वयं तथा दूसरों को परिवर्तित किया सारे परिवर्तन आत्मसात कर पुनः स्वयं का अस्तित्व बनाये रखा। यह सब करने के लिए हमें भाषा ही मददगार होती है। हमें उच्च शिक्षा लेने के लिए अंग्रेजी का प्रयोग करने में एतराज नहीं है। परन्तु हमें यह भी याद रखना चाहिए कि हमारी मातृभाषा कौन सी है ? राष्ट्रभाषा कौन सी हैं ? यह कार्य कठिन नहीं है। क्योंकि भारत जैसे बड़े देश में अनेक भाषाओं के बोलने वालों की संख्या काफी है। इन भाषा-भाषिकों द्वारा भाषाओं को बोलते रहना चाहिए, जिससे उन भाषाओं का अस्तित्व बना रहेगा। आज इन भाषाओं को राजभाषा का अस्तित्व प्राप्त हो चुका है। उनमें विपुल मात्रा में साहित्य रचना हो रही है।

हम अपनी भाषा को संभालतें हैं अर्थात क्या करते हैं ? हम केवल अपनी भाषा में बोलते नहीं व केवल कहानियाँ नहीं लिखते हैं बल्कि हम सारी दुनिया को सारी मानवजाति को एक स्वतंत्र एवं वैशिष्टयपूर्ण दृष्टिकोण देते हैं। अंग्रेजी में जिसे 'वर्ल्डव्ह्यू' कहते हैं। प्रत्येक भाषा का वर्ल्डव्ह्यू अलग होता है। वह उनके शतकों के अस्तित्त्व से, भौगोलिक पर्यावरण से उनकी संस्कृति से एवं उनके रोजमर्रा के जीवन जीने के अनुभव से तैयार होता है। आदिवासी जन-जाति के एक छोटे से समूह का भी वर्ल्डव्ह्यू होता है, जो उनकी भाषा में समाया होता है। यह छोटा समूह नष्ट होने पर या इनकी भाषा नष्ट होने पर भी मानवीय समाज की अपार हानि होती है। अगर ऐसा पृथ्वी के बड़े भूभाग में हुआ तो करोड़ों लोगों की भाषा व मानवी संस्कृति की कितनी बड़ी हानि होगी, इस तथ्य पर सोचना जरूरी है।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया की यह सबसे बड़ी चुनौती है कि जिस प्रकार आज सांस्कृतिक सपाटीकरण हो रहा है, इससे वैशिष्टयपूर्ण भाषा व संस्कृति के नष्ट होने की संभावना बढ़ गयी है। अंडमान की आदिवासी जनजातियाँ कदाचित भूमंडलीकरण का सामना न कर सकें परन्तु भारत में हिन्दी भाषा एवं अन्य प्रान्तीय भाषाओं का विशाल समाज बिखरा हुआ है। इसलिए हमें अपने दृष्टिकोण को बदलना चाहिए। इतिहास के बारे में निश्चित ध्येय रखना चाहिए। अपनी भाषा का प्रयोग करने के लिए सकुचाना नहीं चाहिए, चाहे वह कोई भी स्थान व वातावरण हो। जैसे होटल, बैंक, हवाई अडडा, दुकानों, स्कूल, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, खेल के मैदानों में अपनी भाषा सुनाई देनी चाहिए। हमारी भाषा संसार की प्रमुख भाषाओं में से एक है। उसका सर्वत्र व्यवहार होता है। इसी आत्मविश्वास से उसका प्रयोग करना चाहिए। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सर्व बोलियों को संभालना व उनको बढ़ाना यहीं तक सीमित नहीं है, हिन्दी भाषा में अनेक भाषाओं का समूह है। उनका जतन करना भी आवश्यक है। क्योंकि भूमंडलीकरण का पहला शिकार स्थानिक बोलियाँ बनेंगी। तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भाषा की नित्य व निरन्तर समरसता बनाए रखनी चाहिए। चौथी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन बोली भाषाओं में विविध प्रकार के सक्रिय साहित्य का निर्माण करने की प्रेरणा देनी चाहिए। कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, समाजशास्त्र, इतिहास, विज्ञान के साथ सर्वसामान्य व्यक्ति एवं जनता को आकर्षित करने वाले साहित्य को अपनी भाषा में निर्माण करना चाहिए। हमें यह बात अवश्य ध्यान रखनी चाहिए कि हमारी भाषा ही साहित्य संस्कृति एवं वैभवशाली परम्परा की वाहक है।

❖❖❖❖

आधुनिकता, उत्तरोत्तर आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता की उत्तरोत्तरता

❒ डॉ. सत्येन्द्र कुमार दुबे

समय और अवस्था में एक यह भी फर्क है कि समय सतत् गतिशील है और अवस्थाएँ अपने आदि अंत के दायरे में स्थिर हैं। समय कभी मध्यकालीन अवस्था को पार कर, आधुनिक अवस्था के दायरे में यात्रा करता हुआ, उत्तर आधुनिक अवस्था से होकर भी गुजर रहा है, और फिर इसी निरन्तरता में इसकी गति की उत्तरोत्तरता भी जारी रहेगी। समाज की विभिन्न अवस्थाओं अथवा अवस्था के समय को मानव समाज की नित विकसित-परिवर्तित सभ्यता के पैमाने से मापा या देखा परखा जा सकता है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था के बीच की विभाजक रेखा बहुत बारीक जरूर होती है, किन्तु प्रमुख बिन्दुओं पर दोनों में व्यापक और स्पष्ट भेद दिखाई देते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी होने वाले बदलाव जो अपनी तात्कालिकताओं में अत्यंत सूक्ष्म और आसानी से देखे जाने लायक नहीं होते हैं, बदलावों के लम्बे अंतराल के बाद अचानक ध्यान जाता है कि, 'अरे ! समय कितना बदल गया है। वास्तव में पूर्व की तुलना में वह अवस्था ही बदली हुई होती है, जिसमें उस समय के मूल्य, मानदण्ड, सौन्दर्यबोध, अभिरूचियाँ और तर्क प्रणाली पहले की तुलना में भिन्न होती हैं।

मध्यकालीनता, आधुनिकता या उत्तर आधुनिकता समय की विभिन्न अवस्थाएँ होने के साथ ही गम्भीर दार्शनिक अभिप्रायों से युक्त हैं। मध्यकालीनता समय की एक अवस्था होने के साथ-साथ मनुष्य के मन और स्वभाव की दशा भी रही है, और कमोवेश यह आज भी कहीं - किसी मानव मन और स्वभाव में देखी जा सकती है। मध्यकालीनता के तत्व के रूप में अंधविश्वास, अंधानुकरण, यथास्थितिवाद, पलायनवाद, भाग्यवाद, परलोकोन्मुखता सत्ता के प्रति पूज्य-बुद्धि, नायक पूजा, स्वचेतनता के प्रति अनास्था, यथास्थितिवादिता आदि को रेखांकित कर सकते हैं। इन सबके मूल में अंधविश्वास की ही स्थिति है। जीवन का अंतिम ध्येय मोक्ष, आखिरी अदालत से बरी होने की चिन्ता मध्यकालीन मनोदशा और दृष्टि से ही प्रसूत है। राजा और नायक ईश्वर के रूप हैं, इस मान्यता के साथ-साथ यह स्वीकार कर लेना कि बनी -बनाई व्यवस्था के विकल्प के बारे में सोचना भी पाप है, मध्यकालीन दशा ही तो है। यह एक प्रकार का पलायनवाद और यथा स्थितिवादिता भी है। इन सबके विरूद्ध आधुनिकता के मूल में है - स्वचेतनता और तर्क-विवेक।

इतिहास की पड़ताल करें, तो पाते हैं कि मध्यकालीन सत्ता और जड़ समाज व्यवस्था से ज्यों ही मनुष्य टकराया है, उसके भीतर वहीं मध्यकालीनता से मुक्त होने की छटपटाहट देखी जा सकती है। संतो-भक्तों का समूचा साहित्य अपने समय के समाज और सत्ता से टकराने वाला साहित्य है। यही कारण है कि डॉ. राम विलास शर्मा भक्तिकाल को आधुनिक काल का प्रथम चरण मानते हैं। मध्यकाल में सिकन्दर लोदी के द्वारा सताए जाने वाले कबीर ने भी अपना 'राजा राम' को ही स्वीकार किया। इसी तरह तुलसीदास ने भी 'हम चाकर रघुवीर के पटह लिख्यो दरबार। तुलसी अब का होहिंगे नर के मनसबदार' कहते हुए अकबरी हुकूमत में मनसबदारी को लात मार दिया और सूरदास ने तो कृष्ण के चरित्र को चुनकर ही बता दिया कि हमारा

❒ प्रवक्ता हिन्दी, वाई. डी. (पी. जी.) कालेज, लखीमपुर-खीरी (उ. प्र.)

नायक महाभारत जैसे महायुद्ध का संचालक योद्धा और साथ ही प्रेमी और योगी श्री कृष्ण की तरह होगा, जो आम जनता के बीच से निकल कर आएगा और सरेआम अखाड़े में शोषणकारी और गैरजिम्मेदार शासक की हड्डी-पसली तोड़कर रख देगा। मीरा ने मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई कहते हुए सारा किस्सा ही खलास कर दिया, कृष्ण भक्त कवि कुम्भनदास ने भी 'संतन को कहाँ सीकरी सो काम।' कहते हुए सत्ता को ठेंगा दिखा दिया और अपना रास्ता लिया। यही वह चेतना है जो मध्यकालीनता की जड़ता से मुक्ति की कामना से लबरेज़ है - स्वचेतनता की चेतना, इहलौकिकता की चेतना, तर्क-बुद्धि की चेतना, लोक जागरण की चेतना अर्थात् आधुनिकता की चेतना।

प्राचीन काल में मानव प्राकृतिक शक्तियों के प्रति भय, रहस्य और विस्मय से भरा हुआ था। प्रकृति शक्ति के प्रमुख श्रोत के रूप में सहज स्वीकार्य थी। इन प्राकृतिक शक्तियों को देवता मानकर और पुनः देवताओं का मानवीकरण करते हुए मनुष्य उन अलौकिक शक्ति श्रोतों से अपने लिए भी शक्ति, सुरक्षा और शांति की कामना और उपाय करता था। मध्यकाल तक आते-आते शक्ति के श्रोतों का मानवीकरण इतना प्रबल हो उठा कि प्रकृति पृष्ठभूमि में चली गयी और अवतारवाद की प्रतिष्ठा हुई। आधुनिक काल में आकर विज्ञान की उन्नति के फलस्वरूप प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन शुरू हुआ। परिणामतः नवीन इहलौकिक जीवन दृष्टि के विकास का आरम्भ हुआ तथा साथ ही औद्योगिक क्रांति ने इस विज्ञान के साथ मिलजुल कर भारी उलटफेर को अंजाम दिया। जीवन तथा जगत के बारे में लोगों ने नए सिरे से सोचना शुरू किया। भौतिकवादी सोच और दृष्टि के विकास के परिणामस्वरूप सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर व्यापक परिवर्तन के संकेत मिलने लगे। दर्शन के क्षेत्र में रेने देकार्त को चिन्तन में आधुनिकता के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं।

विश्व परिदृश्य पर आधुनिकता की पड़ताल करें, तो पाएंगे कि एक व्यापक जीवन दृष्टि के रूप में आधुनिकता को फ्रायड, डार्विन तथा मार्क्स ने ही व्याख्यायित किया। डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त, फ्रायड के मनोलैंगिक सिद्धान्त और चेतन-अवचेतन की अवधारणा के साथ अवचेतन में दमित काम वासनाओं की स्थिति की अवधारणा तथा मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त तथा समाज की आर्थिक व्याख्या के क्रम में आधार और अधिरचना की संकल्पना; ये सब आधुनिकता के प्रबल प्रस्थान बिन्दु हैं। या यों कहें कि डार्विन, फ्रायड तथा मार्क्स आधुनिकता की सैद्धान्तिकी की प्रस्थान त्रयी बनाते हैं। भारतीय आधुनिकता पश्चिमी आधुनिकता का संस्करण नहीं है। पश्चिमी आधुनिकता के परंपरा का विस्मरण है, जबकि भारतीय आधुनिकता परम्परा का स्मृतिवाहक है। इस आधारभूत अंतर के बावजूद भारतीय आधुनिकता पर यूरोपीय आधुनिकता की छाप भी पड़ी है। भारतीय आधुनिकता का सबसे खास पहलू यह है कि इसने ज्ञात को सूचनात्मक न बनाकर विकासोन्मुख और संघर्षधर्मी बनाया, साम्राज्यवादी ताकतों से लड़ने के लिए हमें जागृत किया, नवजागरण पैदा किया। भारतीय संदर्भ में आधुनिकता सम्पन्न होने की ओर अग्रसरता के साथ-साथ एक संघर्षधर्मी चेतना भी है। भारतीय नवजागरण की उत्तरोत्तर यात्रा में यह आधुनिकता का द्वितीय चरण भी है। भारतीय संदर्भ में आधुनिकता पेड़ पर रचे गये उस घोसले की तरह से है जिसका अस्तित्व पेंड़ की जड़ों से शुरू होता है।

हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि आधुनिक होने में हमने क्या-क्या खोया है, और वैज्ञानिक उन्नतियों की क्या कीमतें चुकानी पड़ी हैं। इस सम्बन्ध में वेद रमण के हवाले से कहना अधिक उचित होगा - "दो विश्व युद्ध नागासाकी और हिरोशिमा पर अणुबम, नाजीवाद का उदय, यातना शिविर (आश्तविज कैंप) के बाद लोगों की समझ में आया की विज्ञान का प्रयोग मनुष्य को नष्ट करने के लिए भी किया जा सकता है। आधुनिकता का अमानवीय चेहरा सारी दुनिया के सामने

खुल गया। इलियट ने व्यथापूर्ण प्रश्न किया 'वह जीवन कहाँ है, जो जिन्दा रहने में हमने खो दिया। वह ज्ञान कहाँ है जो सूचना एकत्रित करने में खो दिया ? वह प्रज्ञा कहाँ है जो हमने ज्ञान में खो दी ?''[१]

आधुनिकता की इस उत्तरोत्तरता में चरम के संकेत भी दिखाई देते हैं। हमारी उपलब्धियाँ बृहत्तर होते-होते अंत की ओर अग्रसर होने लगती हैं। बीसवीं सदी में अंतवाद की धारणा कई लेखकों में दिखाई देने लगती है। १९६८ में पेरिस के छात्रों ने विद्रोह कर दिया तथा इसी समय रोला वार्थ के द्वारा लेखक के अवसान का ऐलान कर दिया गया। बीसबीं सदी के अंत तक विचारधारा कला, साहित्य, इतिहास, आधुनिकतावाद तथा अनेक चिन्तन का अंत मान लिया गया। अप्रत्याशित रूप से यह देखने को मिला कि फ्रेडरिक नीत्शे ने १८८३ में यह लिखा कि ईश्वर मर चुका है, हम लोगों ने इसकी हत्या कर दी है।

कम्युनिष्ट घोषणा पत्र की ड़ेढ सौवीं वर्षगाँठ मनाते हुए सन् १९९८ ई. में यह भविष्य कथन किया गया कि यूरोप में साम्यवाद का भूत मड़रा रहा है। विखण्डन के माध्यम से जाक देरिदा ने मार्क्सवादी चिन्तन में सुपर स्ट्रक्चर की पुर्नव्याख्या करते हुए बुद्धिजीवियों के महत्व को रेखांकित किया। ज्याँ पाल-सार्त्र ने इसे अस्तित्ववाद से जोड़ने का प्रयास किया। इस तरह से मार्क्सवाद को विज्ञान के रूप में महत्वपूर्ण सिद्ध किया जाता रहा। किन्तु बीसवीं सदी में ही मार्क्सवाद के विघटन की एक घटना भी घटित हुई ।

मार्क्सवाद की तरह से ही फ्रायडीय अवधारणाओं को भी बदलते समय की मांग के अनुरूप पुनर्व्याख्याएँ होती रहीं। और बीसवीं सदी में यह धारणा जोर पकड़ने लगी कि फ्रायडीय चिन्तन के हस्तक्षेप से ही आने वाले समय का ठीक-ठीक साक्षात्कार किया जा सकता है। ''वहाँ मिशेल फुको ने मार्क्स को 'बेदखल' करने की कोशिश की वहीं उत्तर आधुनिकता के एक और चिन्तक 'फ्रांसीसी फ्रायड' जॉक लाकाँ ने फ्रायड को 'अपदस्थ' करने का प्रयत्न किया। लाकाँ ने संरचनावाद और मनोविज्ञान के समावेश से संरचनावादी मनेविश्लेषणात्मक पद्धति की नींव रखी। लाकाँ ने भाषा और अवचेतन, सस्यूर के संरचनावाद-भाषाविज्ञान और फ्रायड के मनोविश्लेषण को एक सम्मिश्रित पैटर्न प्रदान करने का प्रयास किया। फ्रायड की 'डिमेडिकेशन' की प्रक्रिया तो पहले ही शुरू हो चुकी थी। उसे क्लिनिक की चार दीवारी से भी मुक्त करके समाज के विस्तृत दायरे में लाने के प्रयास शुरू हो गये। अब फ्रायड को उत्तर आधुनिकता वाद के युग में बहाल करते हुए कहा गया कि यदि फ्रायड ने अवचेतन की भाषा का अन्वेषण किया है, तो सस्यूर ने भाषा के अवचेतन से परदा उठाया है।''[२]

आधुनिकता की अनवरत यात्रा में दुनिया धीरे-धीरे एक बाजार में तब्दील होती देखी गयी। यह अचानक नहीं हुआ बल्कि इसको ऐसा होने पर बनाने में सुनियोजित प्रयास किये गये। यह सब बीसवीं सदी में साम्राज्यवाद, साम्यवाद एवं फासीवाद के पतन के बाद दुनियाँ भर में सांस्कृतिक वर्चस्व के नये अभियान के तहत हुआ। और अपने आन्तरिक विकास को अवरूद्ध पाने वाली इन शक्तियों ने बाह्य प्रगति का रास्ता तलाशा परिणामतः पूँजीवाद को फासीवाद में शरण मिल गयी। बीसवीं सदी के अवसान पर आधुनिकता अपनी यात्रा को उत्तरोत्तर पूरी करती हुई अभूतपूर्व परिवर्तन, 'इतिहास के अंत,' 'सभ्यताओं के टकराव' एवं 'नयी सभ्यता के अस्तित्व के चौराहे पर खड़ी दिखाई देती है। जहाँ पर यह स्पष्ट सा हो गया है कि कभी बाजार हम पर निर्भर था लेकिन अब हम बाजार पर निर्भर हो गये; बिकाऊ वस्तुओं का मूल्य होना जरूरी नहीं था, किन्तु अब जो बिकाऊ नहीं है वह मूल्यवान भी नहीं है। आज के उत्तर आधुनिक या उपभोक्तावादी समय में दृश्य माध्यमों के जरिये स्त्री अर्द्ध नग्न होकर मूल्य की रक्षा में लगी हुई हैं। यह मूल्य रक्षा प्राइज से वैल्यू तक के अन्तराल को समझना नहीं चाहती। ऐसे में हमारे समय

के सामने यह बड़ा सवाल है कि 'वैल्यू' से 'प्राइज' क्यों नहीं नियन्त्रित हो पा रहा है या 'प्राइज' से 'वैल्यू' की रक्षा क्यों नहीं हो पा रही है या कि 'प्राइज' ही 'वैल्यू' क्यों बनता जा रहा है? क्या यही आधुनिकता का वह चरम है जिसे छूने-पाने के लिए हम आधुनिक और उत्तरोतर-आधुनिक होने के लिए आकुल-व्याकुल थे ?

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ और आद्यौगिक उन्नति की परिणतियाँ हमें एक विडम्बनापूर्ण चरम पर ले आयी हैं। कभी हमने प्रकृति के रहस्यों को खोलने के लिए विज्ञान की मदद ली थी, और आज हम वैज्ञानिक खोजों में लगे होने के साथ-साथ वैज्ञानिक उपलब्धियों के साइड-इफेक्ट से निजात पाने का रास्ता प्रकृति के भीतर ही तलाश रहे हैं। आधुनिकता की तुलना में इस उत्तर आधुनिक समय में स्थितियाँ काफी उलट-पुलट हो गयीं हैं। जिस प्रकार मार्क्स ने कहा कि उसने हीगेल के दर्शन को उलट दिया है। उसी प्रकार मार्क्स के आधार और अधिरचना सम्बन्धी अवधारणा को उलट दें तो उत्तर आधुनिकता का एक दृश्य उपस्थित हो जाता है। मार्क्सवादी के अनुसार समाज का आधार आर्थिक ढाँचा है अर्थात् अर्थ आधार है जिस पर समाज की अधिरचना निर्मित है। उत्तर-समय में अर्थ ही महत्वपूर्ण है, यही अधिरचना है जिसका आधार है उत्तर-औपनिवेशिक उपभोक्तावादी समाज। इस प्रकार उत्तर आधुनिकता को एक फैशन कह देने मात्र से वह सच्चाई झुठलाई नहीं जा सकती जहाँ अर्थवाद के सामने समाजवाद अपने व्यावहारिक धरातल पर विफल होता हुआ दिखाई देता है। "उत्तर-आधुनिकतावाद को फैशन कहने का मतलब इसे खारिज करना नहीं है, क्योंकि कम से कम दर्शनशास्त्र या समाजशास्त्र में फैशन कभी एक तुच्छ या आकस्मिक वस्तु नहीं होती। वह हमेशा एक सच्ची और भेद खोलने वाली वस्तु होती है। उत्तर-आधुनिकतावाद तो वस्तुतः उस मोह भंग को उजागर करता है, जो कि हमारे समय में समाजवाद की अवधारणा की विफलता से पैदा हुआ है, साथ ही ज्ञानोदय से जगी उम्मीदों पर पानी फिरने से और नतीजतन व्यवस्था के सामने बुद्धिजीवी के घुटने टेकने से।[3] ड्राइंग रूम में रखा हुआ टी.वी. हमारा ज्ञान गुरू हो गया है, बोधि वृक्ष बन गया है वह। एक चैनल पर कारूणिक दृश्य हमारे हृदय को दहला रहा है, तो रिमोट का बटन दबाते ही बगल वाले चैनल पर ब्रा और पैन्टी का विज्ञापन है, तो अगले चैनल पर महात्मा जी का प्रवचन चल रहा है, तो किसी पर घर-घर की कहानियाँ जिनकी टी. आर. पी. बताती है कि दूसरों के घरों की राम कहानी में लोगों की रूचियाँ बढ़ी हैं। मजे की बात है कि आज कहानी के बुनावट और विकास को सुनिश्चित करने के लिए दर्शकों या जनता की रूचियों की परख जैसा मेहनत वाला काम नहीं किया जाता बल्कि कथा की विकास यात्रा और क्लाइमेक्स जैसी चीजें दर्शकों द्वारा ही तय की जा रहीं हैं। एक टी.वी. सेट पर बहुरंगी ब्रह्माण्ड कुल मिलाकर घर बैठे सारा संसार और संसार का सारा रूप-स्वरूप ऐसे उपलब्ध है कि ज्ञान प्राप्त हो ही जाता है। फलस्वरूप आज आदमी बुद्धत्व को प्राप्त होकर समरस हो गया है, भावुकता और संवेदना की उद्दीपन स्थितियाँ सामान्य परिस्थितियाँ बन गयी हैं। "आज का दौर उत्तर आधुनिकता का है। उत्तर आधुनिकता विचारों की पूर्णता में नहीं विखण्डन में विश्वास करती है। इसी कारण एक शब्द के अनेक अर्थ, अनेक चैनल, अनेक एकता केन्द्र और अनेक पार्टियाँ हो रही हैं। प्रायोजित या प्रस्तुत यथार्थ मिथ्या होता है और उसके परे का यथार्थ ही सत्य। व्यक्ति का कहना कुछ और होता है और आशय कुछ और ही। अर्थात जमाना संशय का है। उत्तर आधुनिकता का मूल्य तत्व संशयवाद या निषेधवाद ही है। कोई वस्तुगत सत्य नहीं, कोई मूल्य नहीं, आदर्श नहीं, जिसके आधार पर जीवन को सुलझाया जाए। आज की तारीख में पूरा विश्व अविश्वास में जी रहा है। उसके सामने एक बड़ा संकट विश्वास का भी है।"[4]

उत्तर-आधुनिकता की सैद्धान्तिकी का मूल स्वभाव

है विखण्डन यहाँ कुछ भी वीत राग नहीं है, कुछ भी नित्य नहीं है। आधुनिकता ने जो कुछ अपदस्य किया था, उत्तर आधुनिकता ने वह सब बहाल कर दिया है। आधुनिकता ने अंधविश्वास को अपदस्थ कर तर्क बुद्धि को पदस्थ किया था, परम्परा के साथ प्रयोग के लिये भी जगह बनायी थी। यहीं उत्तर आधुनिकता ने, धर्मांधता परम्परा भेड़ियाधसान आदि को फिर से लांच किया, क्योंकि उत्तर-आधुनिक समय जो कि एक बाजार है। बाजार को आकर्षक और जरूरी साबित करने के लिए विश्वग्राम की अवधारणा भी कर ली गयी है। यह उत्तर आधुनिकता एक प्रकार की उदार आधुनिकता भी है। यहाँ विज्ञान की इतनी ऊँचाई मिल जाने के बावजूद गणेश जी दूध पीने से बाज नहीं आते। वास्तव में गणेश जी के दुग्धोत्सव की उस घटना को इस बात के मतदान के रूप में लिया जाना चाहिए कि उत्तर आधुनिक समाज कितना आधुनिक और कितनी मात्रा में मध्यकालीनता बोध से ग्रसित है। या कि कितना उदार-आधुनिक है।

आज के उत्तर आधुनिक समाज में कुछ अवसरवादी या फर्जी ढंग की सांगठनिक अवधारणाएँ पनपी हैं, जैसे ब्राह्मण महासभा, क्षत्रिय महासभा, वैश्य, नाई और आदि-आदि ये संगठन वास्तव में उत्तर आधुनिक सामाजिक परिस्थितियों में असरता बोध और व्यक्तिगत तथ छोटे-बड़े स्वार्थों के लिए ही पनपे हैं और सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि जनता से लेकर सरकारों तक किसी को इन जातिगत संगठनों के बनने-बिगड़ने से कोई फर्क नहीं पड़ता। जब कि सच्चाई यह है कि भारत की अखण्डता को सबसे अधिक नुकसान इसी तरह के संगठनों के बनने-बिगड़ने से ही है। ये साम्प्रदायिक विद्वेष से अधिक जहरीले तत्व हैं। इन खण्ड-खण्ड सभाओं के सदस्य विश्वग्राम के वासिन्दे भी हैं। दुनियाँ को एक बाजार में तब्दील करके कुछ लोग बहुतों को बेच-खरीद रहे हैं "यूज और 'थ्रो' कर रहे हैं। "भूमण्डलीकृत समाज का एक अन्तर्विरोध यह है कि वह एक ही समय में विश्व नागरिक है और स्थानीय भी। इसीलिए धार्मिक विद्वेष, जातीय विद्वेष से वह ऊपर उठ नहीं पाता।"५

उत्तर आधुनिकता ने 'मल्टी लेवल मार्केटिंग' के जरिए बाजार (समाज) को ग्लैमराइज किया। समाजशास्त्रीय चिंतन और सिद्धांत भी बीच-बाजार धकेल दिये गये अर्थात् बाजार के बाहर कुछ नहीं है। बाजार जो विविध-केन्द्री है, वही सब कुछ तय करता है। वस्तु का ब्राण्डेड होना जरूरी है, ब्राण्डेड वही है जिसका अधिक से अधिक विज्ञापन है।'पण्डित सोइ जो गाल बजावा'-जो जितनी ऊँची आवाज में बोल ले रहा है वही सत्यवादी है। और उससे अधिक तेज चिल्लाने वाला ज्यों ही प्रकट होता है, वह सत्यवादी और अधिक प्रामाणिक हो जाता है। "केन्द्रीयकरण आधुनिक काल की विशेषता थी। तब राजनीतिक विचारधारा व ऐसे ही अन्य केन्द्र थे, परन्तु उत्तर आधुनिकता विकेन्द्रण की स्थिति है। केन्द्र इसमें भी है परन्तु कोई एक केन्द्र सम्भव नहीं है। स्त्रीवादी केन्द्र एवं पर्यावरण चेतना नये केन्द्र हैं, जो विश्वव्यापी हैं। इसके अलावा धर्म जाति एवं वर्गों के नए उपकेन्द्र उभर रहे हैं। हमारे यहाँ दलित आन्दोलन, हिन्दू मुस्लिम एवं सिख धार्मिक पहचानों के नए सिरे से उठते आग्रह के अलावा झारखण्ड, बोडोलैण्ड, उत्तराखण्ड आदि राज्यों की मांग भी नए केन्द्र हैं। आधुनिकता ने मनुष्य को एक इतिहास दिया था पर अब उसका अन्त हो गया। उत्तर-आधुनिकता अतीत में जाने की छूट तो देती है, परन्तु वह उसे भी उपयोग्य बनाती है। वह इतिहास का पुर्नउत्पादन सम्भव करती है, परन्तु उसकी भव्यता और महावृतान्तता को नष्ट करते हुए।"६

कम से कम साहित्य और विचारधारा के क्षेत्र में उत्तर आधुनिकता की युक्तियों को व्यवहार में लाने पर 'एक केन्द्रवाद' से मुक्ति और पाठ की अनन्नता हासिल होती है। किसी भी कृति का मूल्यांकन रचना के भीतर और बाहर के केन्द्र-उपकेन्द्रों के इर्द-गिर्द सम्भव-होता जा रहा है। कृति का हर पाठ कुपाठ भी है यही कारण

है कि 'डिफरेन्स' या भेद के जरिये कृति के केन्द्र की बहुवचनीयता भी स्पष्ट हो जाती है। और यह 'भेद' पाठ के भीतर ही होता है जो विखण्डन के माध्यम से ही उजागर होता है। टैरी इगलटन का पाठ उपयोगी है। विखण्डन के संदेहवाद के आगे वे मार्क्सवाद के निश्चयात्मक बुद्धि विवेक को लगातार सक्रिय करते हैं। वे कहते हैं कि विखण्डन का स्वतंत्र 'अर्थ खेल' और 'उग्र राजनीति' में विचित्र सम्बन्ध बनता है। अर्थ का 'स्वच्छन्द खेल' कोई परिवर्तनकारी राजनीति नहीं कर सकता वे कहते हैं। अर्थ की अनंतता वस्तुतः बुर्जुआ वर्ग के सामाजिक सम्बन्धों का प्रतिबिम्ब है। प्रामाणिक अर्थ से हटकर सभी अर्थो को सर्वतंत्र-स्वतंत्र कर देना, एक तरफ का नपुंसक आक्रोश भर है। (लगभग ऐसी ही बातें एजाज अहमद ''इनथियरी' में करते हैं।) मार्क्सवाद की नजर से विखण्डन का-विखण्डन करें, तो पाते हैं कि विखण्डन रहस्यभेदन की अनन्तता में विश्वास करता है।''[७] टेक्नॉलॉजी के क्षेत्र में आधुनिकता की वृहत्तर फलश्रुतियाँ-कम्प्यूटर और संचार-क्रांति-इस उत्तर आधुनिक समय को नियंत्रित-परिचालित कर रही हैं। जिस प्रकार पूर्व मध्यकाल में राम और कृष्ण सगुण भक्ति के आलम्बन हुए तथा जिनमें कृष्ण के चरित्र को भक्तों ने इस प्रकार लांच किया कि हताश जनता में ''जीवन के प्रति अनुराग' जग या कम से कम जीने की चाह बनी रही।' किन्तु कृष्ण के इस अति लोकरंजक ओर श्रंगार प्रधान चरित्र का यह साइड इफेक्ट पड़ा कि आने वाले समय अर्थात् उत्तर मध्यकाल की रचना-वस्तु के केन्द्र में कृष्ण का लोकरंजक-श्रृंगारी रूप अश्लीलता की हदों को छूने लगा। ठीक ऐसे ही देखें तो आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी दो बड़ी, जनप्रिय एवं उपयोगी ऐसी उपलब्धियों के रूप में कम्यूटर तथा मोबाइल रहे हैं। जिसमें की मोबाइल की लोकग्राह्यता और उपयोगिता ने एक रूप भी धारण किया है कि यह नयी पीढ़ी का सदेह-माध्यम बन गयी। या ऐसे कहें कि मोबाइल ने इस उत्तर आधुनिक समय में प्रेम प्रपंची नायक-नायिकाओं के संयोग के मध्य आने वाली हर दीवारों या बाधाओं को खत्म कर दिया। मध्यवर्गीय समाज इस प्रेम-प्रपंच को आज भी वर्जनीय मानता है। किन्तु मोबाइल के इस रीतिकालीन-कृष्णमय-चरित्र बाजार ने ठीक से परखा है। बाजार को यह अच्छी तरह से मालूम है कि मोबाइल-सुविधा की नयी-नयी स्कीमों की लांचिंग और विज्ञापन नव-युवा पीढ़ी और प्रेम-प्रपंची जन को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। जैसे फ्री बातचीत या सस्ती काल-दरों का रात के गयारह बजे से सुबह सात बजे तक के लिए उपलब्ध होना, एक-दूजे के लिए आफर आदि। मिस्ड कालें तो नायक-नायिकाओं के मध्य दूत या दूती का कर्तव्य-निर्वाह भली प्रकार से कर रही हैं। इन तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी-साहित्य के मध्यकाल (भक्तिकाल-रीतिकाल) की तरह ही यहाँ भी आधुनिकता या आधुनिक समय तथा उत्तर आधुनिकता या उत्तर आधुनिक समय (क्रमशः पूर्व आधुनिक और उत्तर आधुनिक) एक ही ऐतिहासिक परिस्थिति के दो आरम्भिक और उत्तरकालिक-अवस्थाएं हैं।''[८]

''लियोतार्द के मतानुसार उत्तर आधुतिकतावाद आधुनिकता के भीतर की ही एक प्रवृति है, जो किसी चीज पर विलाप नहीं करती है। वह यथार्थ क्रमबद्धता और समग्रता (टोटैलिटी) की अन्विति को इन्कार करती है। आधुनिकतावाद में जो पदार्थीकरण, अर्थहीनता और अलगाव दिखाई पड़ता है, वह उन्नीसवीं सदी के बुद्धिवाद के विरोध में आया। मार्क्स, बेवर, दुर्खीम इसी की देन हैं। वे तर्क सम्मत विवेक के आधार पर नए ऐतिहासिक परिवेश में समाज को बदल देना चाहते थे,। प्रगति और परिवर्तन में उनका अगाध विश्वास था''.. हेवर मास उत्तर आधुनिकतावाद में भी आधुनिकता की कुछ विशिष्टताओं को बनाए रखना चाहता है।''[९]

आधुनिकता अपनी उत्तरोतर यात्रा के क्रम में कम्प्यूटर तकनीक को 'पी' 'दुवेल कोर' तथा' 'वीस्टा' तक पहुँचाकर इन्टरनेटवर्किंग के ताने-वाने से

उत्तर-आधुनिकता को जोरदार गति दे चुकी है, जहाँ दुनियाँ की कोई सूचना कभी भी, किसी को भी, और कहीं भी उपलब्ध हो सकती है। ऐसे उत्तर-आधुनिकता अपनी उत्तरोतर यात्रा के क्रम में धरती से छलांग लगाकर चाँद और मंगल को धरती के समानान्तर ला खड़ा करने की सोच रही है। कभी मोटर-गाड़ी तो कभी मोबाइल की सहज उपलब्धता आम आदमी तक को हासिल हो जाना और सबसे बड़ी बात कि अपने-अपने समय में इन चीजों की ऐसी उपलब्धता कि इनका 'स्टेट्स- सिम्बल न बन पाना, उत्तर आधुनिकता की उस उत्तरोत्तरता की ओर संकेत है कि हो सकता है, भविष्य में कभी वैज्ञानिक उपलब्धियों और वैज्ञानिक गति पर आम आदमी का भी वैसे ही अधिकार हो जाए जितना कि आज हवा, पानी, आक्सीजन आदि पर है। यह बात हवाई भी लग सकती है; लेकिन यह ध्यान रखने की बात है कि जब मारकोनी ने बेतार दूरभाष (मोबाइल) के अनुसंधान के संकल्प की घोषणा की थी, तो लोगों को एक बारगी यह लगा था कि वह कुछ ज्यादे ही हवाई-सोच में लगा हुआ है किन्तु परिणाम आज सामने हैं। फिलहाल उत्तर आधुनिकता की उत्तरोतरता अनन्त सम्भावनाओं का प्रशस्त पथ है। यह उत्तर आधुनिकता समाज, विज्ञान, राजनीति, विचारधारा, सेक्स आदि अनेक मोर्चों पर बहुप्रतीक्षित और कौतूहलपूर्ण परिणामों के साथ हाजिर होती हुयी, अनवरत गतिशील रहने वाली अनिवार्य प्रक्रिया है। कभी अद्‌भुत कल्पनाएँ साकार होकर हमें चौंका देती थीं, तो अब ऐसा भी समय है कि कुछ-एक चीजें ऐसी सम्भव या घटित हो जा रही हैं जिनकी हम पूर्व कल्पना ही नहीं कर सकते थे। क्या सचमुच हम यथार्थ, अति यथार्थ से गुजरते हुए कल्पनातीत यथार्थ के समय में खड़े हैं! गुब्बारे से हवाई जहाज तक की कल्पना तो साकार हो ही चुकी है, अब देखना है कि सुपर मैन और स्पाइडर की कल्पना कौन सा गुल खिलाती है।

संदर्भ :-

१. समकालीन सृजन (अंक-२१), पृष्ठ १११
२. वागर्थ, (अंक-५३) सन्-१९९९, पृष्ठ १७
३. कसौटी (अंक-०२) सन् १९९९, पृष्ठ ५५
४. आजकल (अक्टूबर-सन् २०००), पृष्ठ ०५
५. वही-पृष्ठ ०५
६. वागर्थ (अंक-४२-सितम्बर-१९९८), पृष्ठ ६१
७. देरिदा का विखण्डन और साहित्य-सुधीश पचौरी, पृष्ठ-५५
८. उत्तर आधुनिकता वास्तव में आधुनिकता ही की एक उत्तर कालिक अवस्था है। आधुनिक काल में भौतिक उपलब्धियों के रूप में जो चीजें अस्तित्व में आईं, उत्तर आधुनिक काल में उनका भयंकर विकास हुआ। जैसे आधुनिक काल में उद्योग और औद्योगिक उत्पाद अस्तित्व में आकर बाजार को समृद्ध करते हैं, तब बाजार एक स्थल विशेष था, उसकी एक सामाजिक पहचान भी थी। किन्तु पूँजी ने केवल अपने अतिरंजित विकास की कामना के फलस्वरूप उत्पादक और उपभोक्ता के मध्य के समस्त विचौलियों को निगलना शुरू कर दिया है, (यह उसी आधुनिकता की उत्तर अवस्था है।) फलस्वरूप बाजार अब एक स्थल विशेष नहीं रह-गया, बल्कि सारी दुनियाँ ही बाजार बन गयी। अपने ही घर में बैठा हुआ आदमी ऐसे ही है जैसे कि बाजार के एक-एक कोने में सीना तान कर, कोई दुबका हुआ, कोई फन फैलाए, तो कोई कान-पूँछ लटकाए भी बैठा है।- (सत्येन्द्र कुमार दुबे)
९. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीच शब्द, डॉ. बच्चन सिंह, पृष्ठ-२८

❖❖❖❖

स्त्री विमर्श

नारी और उसका अस्तित्व

❒ डॉ. कश्मीरी देवी

यह तो आप भी जानते हैं और मैं भी कि भारतीय नारी का घर और समाज से कितना गहरा सम्बन्ध होता है; परन्तु इन दोनों ही स्थानों में उसकी स्थिति कितनी दयनीय है, यह समझने में पुरूष वर्ग कभी भूल नहीं करता। वह समझता रहता है कि विधि के विधान ने ही उसके भाग्य में ऐसा लिखा है कि वह घर और समाज को ही उत्तर देती रहे, उससे कोई प्रश्न न करे ? प्रश्न करना उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं आता है। ऐसा होता भी रहा है कि नारी ने जब भी अपने अधिकारों के सम्बन्ध में कुछ जानने का प्रयास किया है, तो उसे अपने अधिकारों की तुलना में अपने तन-मन से उसकी बहुत भारी कीमत चुकानी पड़ी है। आज भी कौन सा वह घर और समाज के ऋण से उऋण हुई जान पड़ी है ? निरन्तर वह अपने लहू से इन्हें सींचती ही रहती है। अपने सम्बन्ध में जानने समझने का उसे अवकाश ही नहीं ?

पुरूष समाज इसे व्यर्थ समझता होगा; क्योंकि यह उनका हवन कुण्ड नहीं है। इसलिए उसे इसकी तपिश भी मालूम नहीं। तपिश मालूम होती, तो पीढ़ी दर पीढ़ी घर बाहर नारी समाज को ही क्यों होम यज्ञ में हाथ जलाने पड़ते। पुरूष भी इसमें समान आहुति डालता होगा ?

इस विषय में भी वह उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं है। इस प्रश्न के उत्तर भी नारी हृदय में ही दफ़न हैं। सर्वप्रथम तो उसे पैदा ही नहीं होने दिया जाता। सुयोग से वह पैदा हो भी जाती है, तो अपने पितृ गृह में उसे वैसा ही स्थान मिलता है, जैसा किसी घर में पराई वस्तु को बिना किसी लाभ-हानि विचार धरोहर रूप में रखा जाता है। जिस घर में उसके जीवन को तपकर रूप आकार में ढलना पड़ता है, तो सर्वप्रथम जीवन भट्टी में उसके चरित्र को ही तपना पड़ता है। इसके अतिरिक्त उसके और किसी सुख इच्छा की कामना नहीं की जा सकती। कष्ट के समय वह आँसू भी नहीं बहा सकती और थकित शरीर को वह विश्राम देना चाहती है, तो ढेरों तानाकशी के बीच ही उसे दो पल आराम मिलता है। तनिक सी भूल भी उसके लिये प्रताड़ना का कारण बनती है और बड़े अपराध भी उसे ज़हर पीने पर बाध्य करते हैं, तो फिर ऐसे में नारी कहाँ सुरक्षित रहे ? जब अभागी की जन्म भूमि में ही इतने कलह कारक हैं, तो पतिगृह में उसके लिए कौन से स्वर्ग सुख की कल्पना की जा सकती है। यह हर विचारक अच्छी तरह जानता है और वह यह भी जानता है कि पतिगृह, जहाँ इस उपेक्षित प्राणी को अपना शेष जीवन व्यतीत करना पड़ता है तो वहाँ सहानुभूति की अपेक्षा कम, अत्याचारों की श्रृंखला में ही वृद्धि की अधिक सम्भावना रहती है। तब, यदि वह अपने पति की इच्छानुकूल उसकी सेवा भाव नहीं करती, तो उस पर अनाचारों की होड़ सी लग जाती है। यदि वह अपने काम पियासु पति की कामनाओं को शान्त नहीं करती, तो पति पर स्त्री गमन हो जाता है। निःसन्तान हो या पुत्रों की सेना न खड़ी करे, तो भी दूसरी को उसका स्थान दे दिया जाता है। यदि दुर्योग से उसके भाग्य का सिंदूर धुल जाये, तब तो उसके लिए जीवन काल कोठरी के तुल्य हो जाता है। इससे भी बुरा जीवन तब होता है, जब सरेआम उसकी नीलामी के लिए बोली लगाई जाती है और उसे भेड़ बकरियों की तरह खरीदा और बेचा जाता है। फिर भी नारी जाति समाज को अपनी शक्ति से अधिक देकर त्यागमयी मूर्ति ही बने रहना अपना स्वभाव बना लेती है। वह नहीं चाहती कि घर समाज की शान्ति भंग हो। युग-युगों से ऐसा सोचते-सोचते आज वह संज्ञाहीन एवं निर्जीव सी हो गयी है।

इस विषय में भी समाज उसका उत्तर देने के

❒ १५६१/२१, हैफेड चौक, रोहतक (हरियाणा)

लिए बाध्य नहीं। तब ऐसे में स्त्री दासत्व स्वीकार न करे, तो क्या करे ? कुछ अधिक तर्कशील पुरूषों का कहना है कि वे अपने को क्यों नहीं पहचानतीं ? क्यों अपने अधिकारों के लिए आगे नहीं आतीं ? उन्हें कौन रोकता है ? इस सरल से कथन से कौन नारी सहमत नहीं होगी; पर उन पाषाण हृदयों से यदि पूछा जाये कि युग-युगों से नारी के मन मस्तिष्क में जब कभी न समाप्त होने वाली कर्त्तव्यों की लम्बी श्रृंखला और उनके बदले में दी जाने वाली क्रूर यातनाओं का भय भर दिया जाये, तो उन्हें अपने अस्तित्व के विषय में विचारने की गुंज़ाइश ही कहाँ रह जाती है ?

इतना आप भी अच्छी तरह जानते हैं। इस विषय से भी आप अनभिज्ञ नहीं है कि विवश पशु के समान जब उसका अपहरण कर लिया जाता है और दुराचार-अनाचार की सीमाएँ लाँघते हुए भी पुरूष समाज का मन नहीं भरता, तो फिर उसे देह व्यापार की भट्टी में झौंक दिया जाता है, तब नारी जीवन की उस करूण कहानी को सुनने के लिए कौन पुरूष कान लगाता है ? यह जानने के लिए हर नारी उत्सुक है। वह तो समाज से यह भी जानना चाहती है कि नित नये पापाचारों से उसे कब मुक्ति मिलेगी ? कब स्वतंत्र होकर वह स्वच्छ साँस ले पायेगी ? कब घर और समाज की अमानुषिक यातनाओं से उसे छुटकारा मिलेगा ? कब तक ज्ञान शून्य मूक पशु के समान वह अपने करूण नेत्रों से निरन्तर आँसू बहाती रहेगी ?

कहना न होगा, इसे भी नारी-समाज भाग्य की विडंम्बना ही समझ कर अधिक जीवित रहता है। वह यह समझना ही नहीं चाहता कि भाग्यवाद एक कमजोरी है और इसी कमजोरी का पुरूष समाज दुरूपयोग करता रहता है।

इतना ही सत्य है कि आधुनिक भारतीय नारी अपने स्वत्व के लिए सजग तो हुई है; परन्तु सचेत नहीं। वह यह अनुभव करने का प्रयास ही नहीं करती कि उसके नारीत्व में कितनी शक्ति है। तभी तो वह हर कष्ट-क्लेश को अपना भाग्यमान अपने कर्तव्य की परिधि में रख लेती है। इसलिए आज भी उसकी करूणाजनक स्थिति पर पर दृष्टि डालने की आवश्यकता है। तभी उसे मानव श्रेणी में बैठाने जैसा साहसिक कार्य किया जा सकता है और यह पुनीत एवं कल्याणकारी कार्य हमारी अनुभवी बहिनें तथा सहृदयी पुरूष समाज ही कर सकता है। वह प्रयासरत भी है; पर मानवता की श्रेणी में बैठने वाली नारी समाज व्यर्थ में यह भ्रम बिल्कुल न पाले कि उसकी स्वत्व साधना पूर्ण हो गई। इसके लिए उसे निरन्तर अपने हृदय को संवेदनशील एवं संघर्षशील बनाये रखना पड़ेगा। तभी वह अपने नारीत्व की रक्षा कर पायेगी।

और वैसे भी पुरूष के प्रभुत्व से बाहर निकलने के लिए ऐसा संघर्ष लेकर तो भारतीय नारी उत्पन्न ही हुई है। फिर इससे भय कैसा ! यह भी नारी को जान लेना चाहिए कि सामाजिक प्रगति में ऐसा कोई विकास नहीं, जिसका उद्गम नारी न रही हो। हर क्षेत्र में वह पुरूष के कंधे से कंधा मिला कर अग्रसर हुई है। फिर उसे अपने सम्बन्ध में जानने की उपेक्षा, क्यों ? क्या वह नहीं समझती कि स्वयं के जाने बिना घर और समाज उसे कदापि नहीं समझेगा।

स्पष्ट कहा जाये तो आधुनिक नारी ने इतने संघर्ष से अपने जीवन को जो नया आकार दिया है, वह सही अर्थों में पूर्ण नहीं है और न ही उसका भविष्य उज्जवल है; क्योंकि वह अपने जीवन का सही लक्ष्य संधान न करके, पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगती जा रही है, जो अपेक्षाकृत उसके संस्कारजन्य व्यक्तित्व के अनुकूल नहीं है। उन स्त्रियों को यह मत अवश्य अखरेगा, जो केवल पुरूष के मनोविनोद की वस्तु बने रहना पसन्द करती हैं, परन्तु विचारशील तथा संघर्षशील नारियाँ कभी नहीं चाहेंगी कि उनके रमणीत्व पर कोई आँच आये वे मुँह लटकायें आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बनी रहें। यह निर्विवाद सत्य है कि स्त्री ने जितना पुरूष जाति को दिया है, उतना उससे पाया नहीं, पर यह भी सत्य है कि इस आदान-प्रदान की विषमता की जड़ में दोनों की ही प्रकृति कार्य करती है। अतः उक्त तथ्यात्मक विचार को अन्यथा न लें, तभी हम मनोविनोद के सुन्दर साधनों की श्रेणी से उठकर गरिमामयी निर्मात्री के ऊँचे आसन पर प्रतिष्ठित होंगी। यह मेरा दावा है।

स्त्री विमर्श

नये सन्दर्भ तलाशती स्त्री

❒ डॉ. प्रतिमा यादव

आजादी के पहले और आजादी के बाद भी सदैव ही स्त्री के अधिकारों की लड़ाई को हेय दृष्टि से देखा गया। स्त्री संगठन एवं चेतना वृद्धि के उपायों को विदेश से आयातित घोषित किया गया जबकि वा१स्तविक्ता यह है कि भारत में स्त्री के अधिकारों का उदय स्वाभाविक सामाजिक व राजनैतिक संघर्षों के दौरान हुआ जो पूर्णतः देशी है। स्त्री की स्थिति सदैव से ऐसी नहीं थी। आदिकाल में स्त्रियों का स्थान समाज में उत्थान-पतन का रहा है। लोपामुद्रा, घोषा, आत्रेयी, श्रद्धा, अवंति सुंदरी आदि अपने युग में नारी जाति के गौरव का प्रतीक थी।[1] लेकिन मैत्रायणी संहिता तैतीरेमसंहिता, शतपथ ब्राह्मण में महिला की गिरती स्थिति का वर्णन किया है।[२] "राजाराम मोहन राय आधुनिक भारत में स्त्रियों के अधिकारों का समर्थन करने वाले पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने स्त्रियों के पराधीनता के विरूद्ध विद्रोह किया।"[३]

भारत में स्त्री आंदोलन की परम्परा औपनिवेशिक शासन के खिलाफ राष्ट्रीय संघर्ष से शुरू होती है और स्त्रियाँ इस संघर्ष में अनेक रूपों में संघर्ष करती नजर आती हैं। स्त्रियों ने सामाजिक प्रतिबंधों के बावजूद कभी जीजाबाई, लक्ष्मीबाई के रूप में गाँधी जी के आन्दोलन में सहभागी बनकर देश की आजादी के लिए कार्य किया। माँ शारदा देवी, पंडित रमा बाई, फ्रांसीना सोराव जी, लेडी हरनाम, अवंतिका बाई, गोदावरी बाई, यशोदा बाई अगरक, श्रीमती चन्द्रशेखर अय्यर,एनीबेसेंट आदि ने सामाजिक राजनैतिक चेतना में अग्रणीय भूमिका निभाई।

स्वतन्त्र भारत में स्त्रियों को जो भी अधिकार मिले वे खैरात या कृपा से नहीं मिले बल्कि कुर्बानियों से मिले। जिन लोगों ने आजादी की लड़ाई नहीं लड़ी और कुर्बानियाँ नहीं दीं वे स्त्रियों के संघर्ष एवं कुर्बानी को एकदम से नहीं समझ सकते। स्त्रियों के अधिकारों की लड़ाई साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष व पूंजीवाद विरोधी संघर्ष की देन है। पश्चिम के स्त्री आन्दोलन को साम्राज्यवाद से संघर्ष नहीं करना पड़ा। इस संघर्ष की प्रक्रिया में जो महिला संगठन उभरकर सामने आये उनके पास आजाद हिन्दुस्तान का अपना सपना भी था। स्त्रियों की मांगों एवं अधिकारों को लेकर संघर्ष करने एवं उनकी प्राप्ति के लिए कुर्बानियों का जज्बा भी था। ये वे महिला संगठन थे जिनकी नजर सर्वहारा स्त्री, किसान स्त्री और शहरी स्त्री पर थी। इनका यह आन्दोलन न तो फैशन था न ही विदेशी यात्रा का प्रलोभन, न ही फैलोशिप प्राप्ति या विदेशी सहायता प्राप्ति का स्रोत ही था।

स्त्री संगठन, स्त्री आन्दोलन और स्त्री साहित्य पैदा इसलिए हुआ क्योंकि इस समाज में स्त्रियाँ थीं व हैं। जब वे होंगी तो उनका साहित्य भी होगा, संगठन भी होगा अधिकार भी होंगे और उस पर विमर्श भी होगा। जब समाज में सभी जगह स्त्रियाँ हैं। उनका शोषण है, उत्पीड़न है और उन पर लिंग भेदीय रवैया है तब यह कैसे संभव नहीं होगा कि उनकी आवाज ही सुनाई न दे। वे संघर्ष करती नजर न आएं। अतः स्त्रियों के संघर्ष, संगठन एवं साहित्य के प्रति संशकित भाव से देखने की जरूरत नहीं है। स्त्री के प्रति संशय भाव का अर्थ

❒ प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई (स्वशासी) कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म. प्र.)

है-उसके वजूद को ही अस्वीकार करना।

अगर जीव वैज्ञानिक तथ्य माने तो "महिलाओं में इम्यूनोग्लोकुलीन-एम पुरूषों की अपेक्षा ज्यादा होता है। इस कारण उनमें प्रतिरोधक क्षमता पुरूषों की अपेक्षा ज्यादा होती है।[४] केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक शोध में बताया गया कि "पुरूष व महिलाओं के घरेलू और प्रोफेशनली काम का आकलन किया जाय जो महिलाएँ पुरूषों से ज्यादा समय तक काम करती हैं"।[५]

स्वातन्त्रयोत्तर काल में सम्पूर्ण वैश्विक परिदृश्य स्त्रियों के साथ न्याय नहीं करता । भारत का महिला प्रतिनिधित्व विश्व में ६५वें स्थान पर है।[६] स्त्रियों के गिरते लैंगिक अनुपात के लिए उत्तरदायी कारणों में बालिका भ्रूण हत्या, मातृ मृत्यु दर का अधिक होना, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परम्पराएं व निम्न शैक्षणिक स्तर मुख्य है। स्त्रियों का शैक्षणिक स्तर राष्ट्रीय स्तर से राज्य स्तर तक पुरूषों की अपेक्षा बहुत कम है। "मातृ शक्ति की छाँव में पलते भविष्य की प्रथम गुरू माता ही यदि निरक्षर होगी तो उस देश के भविष्य की कल्पना सहज ही की जा सकती है"।[७] भारतीय परिदृश्य देखें तो संसद में ३३ प्रतिशत आरक्षण हेतु विधेयक इसलिए पास नहीं हो पाया क्योंकि "महिला आरक्षण बिल या विधेयक यदि पास होता है तो संसद में महिलाओं का प्रतिशत बढ़ जायेगा और महिलाएँ उलटे-सीधे बिल संसद में पुरुषों के विरूद्ध पास करवाने में सफल हो जाऐंगी और न जाने कितने पुरूषों को इन विधेयकों के माध्यम से जेल में चक्की पीसनी पड़ेगी।[८] साथ ही यह अंदेशा भी रहता है कि ऐसे सुधारवादी (स्त्री या दलित पक्षधर) पितृसत्तात्मक को गोली मार दी जाएगी।[९] आज एक तरफ स्त्रियों को अपनी देह का स्वामी, मालिक बताकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विज्ञापनों में नग्न, अर्द्धनग्न मॉडल और कामना व आनन्द की वस्तु में बदला जा रहा है मगर दूसरी तरफ घर में पत्नी, माँ, बहू, बेटी, बहन के लिए वही सदियों पुरानी नैतिक मर्यादा, शुचिता, पतिव्रता के कड़े नियम लागू हैं। इन दोनों अन्तर्विरोधों और जटिल स्थितियों में नारी अस्मिता और मुक्ति के प्रश्न अधिक पेचीदा और घातक सिद्ध हो रहे हैं स्त्री की समस्या पहले से अधिक गम्भीर और जटिल हो गई है। शोषण दोहरा, जिम्मेवारी दोगुनी, अधिकार शून्य।

स्त्री और पुरूष जीव सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ प्राणी हैं। इन दोनों का समागम सृष्टि के रहस्य को उद्घाटित करता है। इन दोनों का संतुलन ही जीवन का ध्येय है।[१०] पर यथार्थ में वर्चस्व पुरूष का ही रहा इसलिये स्त्री सदैव पुरूष प्रधान समाज के न्याय और अन्याय दोनों को सहने के लिए विवश थी । वर्तमान महिलावाद पुरूष प्रधान समाज में नारी की भिन्न स्थिति की चर्चा तो करता ही है साथ ही महिलाओं के आपसी सम्बन्धों की भी विवेचना करता है।[११]

मौजूदा समय में औरत पुरानी केंचुल उतार चुकी है। इस समय समाज की जड़ता का टूटना बहुत जरूरी है।[१२] आज स्त्री के व्यक्तित्व को एक नई दिशा मिल गई है। समाज में भी रूपान्तरण का दौर शुरू हुआ व सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन हुआ। स्त्री की जब दोहरी जिम्मेदारी शुरू हुई वह सजग हुई, आत्मनिर्भर हुई फलस्वरूप शारीरिक श्रम के साथ-साथ उसका मानसिक श्रम भी बढ़ा। उसे अपने अधिकारों की जानकारी हुई और वह अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हुई। अब स्त्री पुरातन से चली आती हुई व्यवस्था से असन्तुष्ट है वह जब बाहर निकल पुरूषों को चुनौती देती है तो वह अधिकारों की भी मांग करती है। उसकी जिंदगी दूसरे (पुरूष) पक्ष के साथ बंधी हुई है। वहीं से वह शुरू होती है व खत्म भी । पुरूष के साथ न रहने पर या तो उसे तलाक लेना पड़ता है अथवा जीते जी चिंताओं में सुलगने जैसा विधवा जीवन जीना पड़ता है। स्त्री के विरूद्ध बहुत से मामले सामाजिक

मर्यादाओं, परिवारों की प्रतिष्ठा के कारण दबा दिए जाते हैं। अब यह जुबान कुछ भी न कहने के लिए अभिशप्त है। हमारा समाज उसकी आवाज को सुनने को तैयार नहीं है।[13] जबकि एकाकी तौर पर समाज नहीं बदलता "सामाजिक बदलाव के लिए सब्र और सबकी सहमति अनिवार्य है।"[14]

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्री का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। पारिवारिक व्यवस्था तो उसके नाम है ही घर के बाहर भी उसके कामों की कमी नहीं है। अतः वह विद्रोह कर रही है। अतः व्यवस्था का चरमराना स्वाभाविक है। उसकी सहनशक्ति जवाब देने लगी है। आज वह अजीब त्रासदी झेल रही है। अगर वह अधिकारों की मांग करती है तो उसके रिश्ते टूटते हैं और रिश्तें रखती है तो उसके अधिकार छूटते हैं। जब वह गृहस्थी की गाड़ी में आर्थिक रूप से सहायक है बाहर के कामों में बराबरी की भगीदार है तब वह चाहती है कि उसकी भागीदारी सुनिश्चित हो। उसके मस्तिष्क का सम्मान हो। उसके सुझाव का महत्व हो। स्त्री स्वयं भी जीने की राह निकाल रही है। बदलते हुए सामाजिक सम्बन्धों व बिखरते, टूटते हुए रिश्तों के मध्य स्त्री नये सन्दर्भ तलाश रही है। वह समझ गयी है किसी आन्दोलन, क्रान्ति या विद्रोह से इसकी शुरूआत नहीं होगी बल्कि स्वयं उसे ही अपनी दयनीय स्थिति को सुधारने की कोशिश करनी होगी। आस-पास के लोग जो अपने बचाव और लापरवाह प्रवृत्ति के चलते स्त्री के विरोध में हल्की बातें कहने के आदी हो चुके हैं वे अपनी जुबान पर लगाम देना सीख लेंगे और वे लोग जो स्त्री के पक्ष में बोलना चाहेंगे। वे भी अपना मुखर समर्थन स्त्री को देंगे। यही कारण है कि वह अपने अधिकारों के लिए स्वयं लड़ना सीख गई है व इस लड़ाई में अनेक पुरूष (सभी नहीं) जो इस तरह के अमानवीय व्यवहार के विरोध में अपने ही वर्ग के विरूद्ध खड़े होते हैं। उनका समर्थन करने लगेंगे।

स्त्री के इस नये सन्दर्भ को अभिव्यक्त करती अशोक लव की कविता की यह पंक्तियाँ दृष्टव्य हैः-

बाजों के पंजों में
चिड़ियों का मांस देख
नहीं छोड़ देती चिड़िया
खुले आकाश की सीमाएं नापना
उड़ती है चिड़िया
गुंजा देती है
चहचहाहटों से आकाश का कोना -कोना
बाज चाहे जिस गलतफहमी में रहे
चिड़िया नहीं छोड़ती
आकाश पर अपना अधिकार

अगर स्त्री प्रयासरत रही तो आगामी समय में उसे निश्चित रूप से खुले आकाश की सीमाएँ नापने का व खुले आकाश पर अधिकार का अवसर मिलेगा। अर्थात वर्तमान सदी स्त्रियों की होगी।

संदर्भ सूची

१. ए जर्नल ऑफ एशिया मुरैना अंक - १, जुलाई-सितम्बर, २००५, पृ. २४३
२. ओम प्रकाश सिंह, प्राचीन भारतीय राज्य एवं समाज, रामप्रसाद एण्ड संस, आगरा, पृ. ५६-७१
३. डॉ. वी.पी. वर्मा- आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, पृ.१
४. संगीता उनियालः नारी ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति, १९९९, पृ.७२६-२७
५. वूमन भास्कर, १० दिसम्बर २००७, पृ.१६
६. बृजमोहन अग्रवाल, राजनीति में महिला आरक्षण : एक विश्लेषण, पृ.७
७. नवभारत टाईम्स, दिल्ली, २८.०६.२०००
८. दैनिक हिन्दुस्तान, १७ जून, १९९७
९. हंस,फरवरी १९९७ में स्त्री-विमर्श : सत्ता और सम्प्रेषण लेख, अरविन्द जैन, पृ.७१
१०. नया ज्ञानोदय, जुलाई २००५, पृ.४२
११. प्रतियोगिता दर्पण : आगरा, जुलाई २००१, पृ. ६६५
१२. नासिरा शर्मा : औरत के लिए औरत, पृ.१५३
१३. राष्ट्रीय सहारा, २४ जून, २००१
१४. अरविन्द्र जैन : औरत होने की सजा, पृ.२७१

स्त्री विमर्श

हिन्दी कथा साहित्य में दलित स्त्री–विमर्श

❒ डॉ. श्रीमती हेमा देवरानी

भारतीय समाज में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक मानदण्डों के मध्य स्त्री की स्थिति निचले पायदान पर रही है। 'हिन्दू समाज उस बहुमंजिला इमारत की तरह है जिसमें प्रवेश के दरवाजे बंद हैं तथा जो व्यक्ति जिस मंजिल पर जन्म लेता है उसे उसी में मरना होता है।' अंबेडकर के इस कथन को दलित स्त्री के संदर्भ में देखा जा सकता है। दलित स्त्री का संघर्ष वर्णवादी व्यवस्था भी है, लिंग भेद और जाति भेद के कारण उस पर अत्याचार की मार पड़ी है। सम्भवतया इसीलिए बाबा साहब की मान्यता थी कि सामाजिक क्रान्ति में नारी को भी पुरूष वर्ग का सहयोगी बनना चाहिये। इस प्रकार "दलित अस्मिता विमर्श ने अपना शुरूआती घोषणा पत्र पेश किया तो उसमें तमाम छोटे बड़े मुक्ति संग्राम अन्तर्भुक्त होते दिखे, यह उम्मीद भी बंधी कि ब्राह्मणवाद को जो पितृसत्तात्मक रूप है और उसमें स्त्री दमन की जो तमाम तरकीबें हैं उनका अन्त होगा और नई समाज व्यवस्था, शोषण रहित, समतामूलक और अधिक मानवीय होगी"[1] मगर यह घोषणा पत्र भी दलित स्त्री को शोषण के चक्र में मुक्ति न दिला सका। दलित साहित्यकार श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि जो दलित वर्ग के हिमायती हैं लिखते हैं "दलितों में भी दलित है स्त्री" "ये अम्बेडकरवादी एक तरफ नारेबाजी के बीच मनुस्मृति का दहन करने के साथ हिन्दू देवी देवताओं को गालियाँ देते हैं, दूसरी तरफ अपने ही घर में अपनी पत्नियों के साथ और अपने ही श्रद्धापुरूष अंबेडकर के चित्र की छाया में मनु की आचार संहिता का पूरा-पूरा पालन करते हैं।"[2] स्त्रियों के संदर्भ में दलित समाज का पुरूष भी अपनी पुरूषवादी मानसिकता को नहीं छोड़ पा रहा है। दलित स्त्री को जहाँ अपने समाज के बीच ही शोषण का शिकार होना पड़ता है वहाँ दूसरी ओर सवर्ण समाज के अत्याचारों का भी सामना करना पड़ता है "वैसे तो पूरे भारतीय समाज की स्त्रियाँ पितृसत्ता के बोझ के नीचे कराह रही हैं लेकिन दलित स्त्रियों को न केवल अपने समाज की पितृसत्ता को झेलना पड़ता है बल्कि सवर्ण समाज की पितृसत्ता भी उनका शोषण और दमन करती है।"[3] दलित और स्त्री दोनों पर अत्याचार होने का ग्राफ बनता है "संसद में पेश किए गए आंकड़े बताते हैं कि आतताईयों की नजर में औरत और दलित एक समान हैं। जिन राज्यों में औरतों के साथ अत्याचार नहीं होता वहाँ दलित अधिक सुरक्षित हैं, जिन राज्यों में औरत का सम्मान नहीं है वहाँ दलितों की दुर्दशा हो रही है।"[4] दलित स्त्री विमर्श के संदर्भ में कथाकार प्रेमचन्द सबसे पहले हमारे जेहन में आते हैं। उनकी 'मंदिर' कहानी में पुजारी द्वारा विधवा सुखिया को लज्जित किया जाता है। छुआछूत की सड़ी गली परम्परा और तथाकथित धर्म के ठेकेदारों के प्रति सुखिया के मन में इतना क्षोभ तथा घृणा है कि वह अपने बच्चे की मृत्यु पर क्रंदन करने के बजाय जातिवादी शक्तियों से सामना करती है - 'मेरे छूने से ठाकुर जी अपवित्र हो जायेंगे मुझे बनाया तो छूत नहीं लगी ?" 'घासवाली' की खूबसूरत मुलिया का हाथ जब जमींदार का लड़का चैन सिंह पकड़ लेता है तो वह पूरी ताकत के साथ उसे चुनौती देते हुए कहती है - "मुझे छोड़ दो नहीं मैं चिल्लाती हूँ' उसका चिल्लाना शोषणवादी प्रवृत्ति के विरूद्ध आक्रोश और

❒ ५८३, स्कीम १० अलवर (राजस्थान)

गुस्सा व्यक्त करता है। 'ठाकुर का कुआँ में गंगी का मानना है शोषण को अपना अधिकार मानकर चलने वाली इस व्यवस्था से मुक्ति का उपाय केवल एक है – इस समूची व्यवस्था का विनाश और वैकल्पिक व्यवस्था का निर्माण'। 'दूध का दाम' की मूंगी में चेतना जागी तो उसने महेशनाथ को 'कठघरे' में खड़ा कर दिया। 'विध्वंश' की भुनगी बराबर डरती नहीं और अंत तक संघर्ष करती है। प्रेमचंद के कथा साहित्य में बुधिया को कफ़न नहीं मिलता, भूंगी को 'दूध का दाम' नहीं और भुनगी को भाड़ चलाने की अनुमति नहीं। जातिगत विषमताओं को प्रेमचन्द ने इन नारी पात्रों के माध्यम से तोड़ने की कोशिश की है। प्रेमचन्द ने अपने कथा साहित्य में पीड़ित नारी के दर्द को सबसे अधिक उभारा है। जो पीड़ित वर्ग है वे तो पीड़ित हैं ही, उन पीड़ित वर्गों की नारी स्वयं उनसे भी पीड़ित है, इस प्रकार वह दुहरे रूप में पीड़ित है।

समाज में ब्राह्मणों का उच्च स्थान निम्न जातीय वर्ग के प्रति समाज की घृणा भावना भेदक दृष्टि को भी जन्म देती है। सिलिया ब्राह्मण मातादीन की ब्याहता न होकर ब्याहता की तरह रहती है। सिलिया का यह कथन ''उनके साथ क्यों जाऊँ ? जिसने बाँह पकड़ी है, उसके साथ रहूँगी।,[५] सिलिया का यह कथन दलित स्त्री के लिए मार्गदर्शक है, क्योंकि जिस सवर्ण व्यक्ति से प्रेम हुआ है, उसके ही साथ रहने से समाज में दलित नारी की इज्जत बढ़ेगी और जाति भेद की तीव्रता में कमी आयेगी। 'मोरी की ईट' की दलित स्त्री का संघर्ष मंगिया के माध्यम से जगह तलाशती और अपने लिये जगह बनाती दलित स्त्री के भविष्य को रेखांकित करता है। स्त्री की स्थिति दोयम दर्जे की बनाने में नैतिक मानदण्ड महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। मंगिया स्वास्थ्य अधिकारी डॉ. सुरेन्द्र नारायण पाण्डे से अपने संबंधों की मजबूरी को ताकत में बदल देती है। अपने शराबी पति की मृत्यु के उपरांत चूड़ियों को तोड़कर विधवा स्त्री के रूप में नहीं दिखाई देती है वह नयी चूड़ियाँ पहनती है।

अमृतलाल नागर ने 'नाच्यो बहुत गुपाल' में निर्गुनियाँ के बहाने अपने अन्दर की स्त्री और उसके दलित की कहानी ही कही है। डॉ. रामदरश मिश्र के 'आकाश की छत' में शोषण विरोधी चेतना उस स्त्री में भी तीव्र है जिन्हें शताब्दियों से सताया जा रहा है। अभी भी गाँव में मध्यकालीन मूल्य मर्यादाओं का अन्त नहीं हुआ है। रूपवती ने इस विसंगति को इन शब्दों में व्यक्त किया है : ''गुनाह तुम्हारा बामन होना नहीं है, गुनाह है अछूत जाति की औरत से पानी माँगना, वह पानी तो पिला देगी लेकिन सोचो, तुम्हारी जाति वाले तुम्हें कहाँ रखेंगे और फिर तुम्हें तो दोष कम देंगे, मुझे ज्यादा गाली देंगे।[६] बिंदिया, लवंगी, इमरतिया या रूपमती इस वर्ग की हर स्त्री जीवन संघर्ष के स्तर पर अधिक ऊँची नीतिमत्ता उदारता और मानवीय संवेदनशीलता का परिचय देती हैं। रूपमती कहती है – '' मैं बकरी बनकर रहने वाली बड़ी जातियों की औरत नहीं हूँ। मैं अपने हाथों के बल पर जी सकती हूँ।'' रूपमती में चेतना जागने लगी है। यातनाओं के मूल में वर्ग विभक्त समाज की सच्चाईयां हैं। 'बिन दरवाजे के मकान' की दलित दीपा एक इन्सपेक्टर, एक सेठानी और एक चौधरानी की बखिया उघाड़ते हुए कहती है ''हमारी जाति की औरतें अगर बिकेंगी तो गरीबी की मार से बिकेंगी और आपके यहाँ की औरतें बिकती हैं तो खाली शौक करने के लिये। गरीबी से बिकना बेभिचार नहीं है बीबी जी। सौकिया मरद की गोद बदलते रहना बेभिचार है।''[८] दीपा अभिजात वर्ग की नारियों के चरित्र का स्पष्ट स्वरों में पर्दाफाश करती है। हमारे समाज का यह शापग्रस्त दलित वर्ग आज भी असुरक्षा की जिन्दगी जी रहा है। 'सवाल के सामने' की दलित स्त्री विवश होकर अपने पति के हत्यारों की शर्त स्वीकार कर लेती है।

ताकि उनके बच्चे की जान बच सके। आज भी दलितों की बहू-बेटियों के साथ सामूहिक बलात्कार किया जाता है। मिश्र जी ने दलित स्त्री की असुरक्षा के सवाल को प्रभावशाली ढंग से उठाया है, यद्यपि आजादी मिलने के बाद दलित वर्ग में परिवर्तन तो हो रहा है समाज के इस परिवर्तन में समय लगेगा। बिन्दिया भारतीय समाज के दोगलेपन को स्पष्ट करते हुए कहती है 'इन छोकड़ों और बूढ़े बैलों की आसक्ति केवल मेरी देह के लिए है। अंधेरे में उसे चूस कर ये बामन लोग उजाले में पंडित बने घूमेंगे और उसकी छाया से भी बचने का ढोंग रचेंगे। इनमें देने की कसम बिल्कुल नहीं है, बस सब कुछ लेकर हज़म कर जाने का हौंसला है। कैसे हैं ये बामन कुत्ते रात में विष्टा तक खा लेंगे और दिन को होठों पर पान की पीक पीकर महकने की कोशिश करेंगे।"[९] मिश्र जी की 'जल टूटता हुआ' की लवंगी छोटी जाति का प्रतिनिधित्व करते हुए अपने स्त्री जाति की इज्जत और आबरू के प्रति सजग है उसका भाई ब्राह्मण जाति की किशोरी से प्रेम करता है और जब समूचे गाँव में यह राज खुलता है तो निम्न जाति के प्रति उच्च जाति के मन में क्रोध भभकने लगता है लवंगी अपने भाई का पक्ष लेते हुए ब्राह्मण पंडितों की कलई खोलते हुए कहती है - 'क्या हुआ मेरे भाई ने एक ब्राह्मण लड़की से भला बुरा किया। क्यों नेताजी, आप चुप क्यों हो ? कल तक झण्डा लिये घूमते रहे और वोट दिलाने के लिए लेक्चर झाड़ते रहे कि अब देश आजाद हो गया है, सभी बराबर हैं, सबको खेत मिलेंगे, सबकी इज्जत बराबर होगी जब चमरोटी की तमाम लड़कियों पर ये बाबा लोग हाथ साफ करते हैं, हरिजनों के नेता, मैं तुमसे फरियाद करती हूँ कि वोट लेने वाले नेताओं से जाकर कहो कि हमारा खून, खून नहीं, हमारी इज्जत, इज्जत नहीं है तो हमारा वोट ही क्यों हैं।"[१०] लवंगी निम्नवर्गीय समाज में उभरती जनचेतना को जुबान देने में सफल हुई है। लवंगी के आँसुओं में विद्रोह की ज्वाला है, वह आँधी की तरह अपने को ऊँचा मानने वाले बामनों के चेहरे पर पड़ी नकाब उलटती हुई कहती है - "सरपंच बाबा ! मैं अब चुप नहीं रहूँगी। आपके इजलास में एक दिन हाजिर होऊँगी फरियाद लेकर।" मंजुल भगत के 'अनारो' की नायिका निम्न वर्ग की है लेकिन उसके पास अपनी नैतिकता है, पुरूषों के द्वारा वह अपना शोषण नहीं होने देती और इस भीषण भौतिकवादी युग की यथार्थ विभीषिकाओं से निकलकर अपना मार्ग प्रशस्त करती है जो कि एक समाज के और निम्न वर्ग के लिए स्वस्थ दृष्टिकोण है, आधुनिकता और परम्परा के बीच जूझती अनारो अपने वर्ग की समस्त विद्रूपताओं एवं महत्वकांक्षाओं के साथ जीवन के तीखे यथार्थ को रेखांकित करती है। स्त्री होने के दर्द को अनारो बराबर अनुभव करती है -"जो दुःख अनारो के, वही क्लेश इत्ती बड़ी सेठानी के। बस, औरत जात वहीं पर मार खा जाती है। पैसा भी किस काम का। इससे तो अनारो भली आदमी भागा भी तो .... सौत के पास जाके रह तो नहीं गया। भोरी (सेठानी) बेचारी तो रोयेगी-पीटेगी भी तो दरवाजा बन्द करके। इज्जत के मारे मरी जायेगी। सेठ का हौंसला बढ़ेगा नहीं तो क्या हो।"[११] अनारो दबंग स्वाभिमानी स्त्री है कभी-कभी उसे देर से बर्तन साफ करने के कारण झिड़कियाँ भी सहनी पड़ती हैं किन्तु सदैव वह सहनशील ही बनी नहीं रह पाती है और विद्रोह कर देती है, "हो गई देर तो हो गई। तुमने कह दिया, हमने सुन लिया, अब क्या फाँसी चढ़ाओगी हमें ?[१२] अनारो को संघर्ष और यातनाओं ने ही उसे सिखाया जिन्दगी क्या है ? घरेलू काम-काज करने वाली नारियों की चेतना अनारो में है ही, अधिकार चेतना भी उत्पन्न हो रही है। अनारो की मालकिन डांटती है तो वह कह उठती है - "बस, बीवी जी बस, कलायी पर घड़ी बंधी है हमारे ? हो गयी

... और जी हमारे काम को नजर लगाओ मत, तुम मुफ्त में काम नहीं कराते तो हम भी हराम की नहीं लेते, हाथ मोड़-तोड़ के कमाते हैं।"

गोपाल उपाध्याय के 'एक टुकड़ा इतिहास' की चुनली नये तरह के मानसिक व शारीरिक अत्याचारों को संघर्षपूर्ण सहन करती हुई चुनली से चन्दी देवी बनकर हरिजन स्त्री नेता के रूप में उभरती है। कृष्णा अग्निहोत्री के 'टपरेवाली' की मुन्नी, पचिया, कालिया, लीला भयानक यत्रंणा के मध्य गुजरती है, अपने जीवन को त्रासदी में ही घसीटती हैं और पशु से भी बदतर जिन्दगी जीते हुए सांस लेती हैं। इन्हें अपने परिवार का पालन पोषण करने के कारण कई लोगों की वासना का शिकार भी होना पड़ता है। पन्ना तथा बसोड़ कन्या लीला, जाति बंधन से मुक्त एक सुखी समाज में स्थान पाने वाले स्वप्नलोक में विचरते हैं, ये स्त्रियाँ क्रूर यौन शोषण का शिकार भी होती हैं। लीला उच्च जाति के पन्ना बाबू से प्रेम करती है और अविवाहित माँ भी बन जाती है। वह गन्दे टपरों में रहने वाले जाति के असभ्य गंवार आदमी को अपना जीवन समर्पित न कर पन्ना बाबू के सहारे जीना अधिक पसन्द करती है। वह रूढ़ियों, मूल्यों, संस्कारों, मान्यताओं, व्यवस्थाओं के प्रति विद्रोह करती है। स्वयं को सक्षम बनाने की दिशा में कदम बढ़ाया है यह उसकी दलित नारी चेतना का ही परिणाम है, आज स्त्री स्वतंत्र है। अतः यदि पुरूष से बिना वैवाहिक सूत्र में बंधे ही मातृत्व प्राप्त कर लेती है तो आज समाज में विवाह के समान्तर प्रथा क्यों नहीं निकाली जाती है ? यह एक गम्भीर विमर्श का प्रश्न है। चित्रा मुद्‌गल के 'आवाँ' में एक दलित मजदूर की बेटी के मोहभंग पलायन और वापसी के माध्यम से उपभोक्तावादी वर्तमान समाज को कई स्तरों पर मजदूरी करने वाली स्त्रियों के कटु यथार्थ की परतें खोलता है।

ओम प्रकाश बाल्मीकि की 'चिड़ीमार' की सुनीति को जातिगत भेदभाव का गरल पीना पड़ता है। "सुनीति जहाँ भी जाती निराशा ही हाथ लगती, कहीं शिक्षा अधूरी है कहकर टाल दिया जाता तो कहीं भाषा बाधक बन जाती कहीं 'क्षेत्रीयता' तो कहीं 'जाति' के कारण निराश होना पड़ता। कहीं लड़की होना अभिशाप बनता तो कही एस. सी. होने के दंश अपराध बोध से भर देते थे।"[१३] स्त्री या कुंवारी किशोरी के साथ वारदातें हमेशा घटती रहती हैं, क्योंकि मनुष्य के भीतर पिशाच कभी मरता नहीं, किसी न किसी रूप में जिन्दा रहता हैं। आज भी समाज के दलित हिस्सों में कितने बलात्कार दबे छिपे होते हैं, या जारी रहते हैं लेकिन चीखें कम सुनाई पड़ती हैं, क्योंकि हर चीख स्त्री की सम्पूर्ण तबाही का कारण बन सकती है। कुसुम मेघवाल की 'अंगारा' कहानी में दलित जमना देह शोषण को चुपचाप सहन नहीं करती है स्पष्ट है कि बलात्कारी को निजी सजा तो दी जा सकती है। दलित जमना देह शोषण का प्रतिरोध लेने के लिए ठाकुर जाति के सुमेर सिंह पर अंगारा बनकर टूट पड़ी - "अंगारा बनी जमना दौड़ी-दौड़ी घर में गई और कोने में पड़ी दराती उठा लाई, सरकार और पुलिस जिसे सजा नहीं दे पाई उसे जमना ने दे दी। अपना प्रतिशोध पूरा किया। उसने सुमेर सिंह के पुरूषत्व के प्रतीक अंग को ही काटकर उसके शरीर से अलग कर दिया। वह तड़प रहा था, अब उसका बचना सम्भव नहीं था। यदि बच भी जाता तो उसकी जिन्दगी मौत से भी बदतर होती। एक हिजड़े की जिन्दगी, अब वह किसी अछूत गरीब लड़की की इज्जत से नहीं खेल पाएगा।"[१४] इस समय सम्पूर्ण देशभर में दलित आन्दोलन की गूँज ही सुनाई दे रही है। दलित समाज में भी कोई दलित हो सकता है। स्त्री किसी दलित से कम नहीं है समाज की मुख्यधारा में स्त्री विमर्श दलित विमर्श से पहले आ चुका था, दलित समाज में स्त्री की स्थित दोयम दर्जे की ही रही है। मैत्रेयी पुष्पा के चर्चित उपन्यास 'अल्मा

कबूतरी' में मध्य प्रदेश के बुन्देलखण्ड में पायी जाने वाली जरायम पेशा कबूतरा जनजाति की उपेक्षित, तिरस्कृत एवं अपमानित स्त्री का ही चित्रण किया गया है। भूरी बाई, कदमबाई और अल्मा के माध्यम से मैत्रेयी इस दलित जाति की स्त्रियों के संघर्षमय जीवन की कहानी प्रस्तुत करती हैं। जहाँ इन्हें जातिगत प्रताड़ना को सहन करना पड़ता है वहाँ दूसरी ओर लिंगभेद का भी शिकार होना पड़ा है। इधर समकालीन लेखक विजय जोशी की कहानी 'हूँ कारयो' स्त्री चेतना का उद्घोष करती है। अशिक्षित दलित स्त्रियाँ अपने परिवार एवं सामाजिक सुरक्षा के प्रति बेहद संवेदनशील भी हैं। जोशी जी के 'चीखते चौबारे' उपन्यास में दलित नारी के यौवन-शोषण पर प्रश्न उठाये गये हैं। जब दलित स्त्री विमर्श की चर्चा होती है तो मेरा ध्यान अनायास ही सवर्ण स्त्री की मनोस्थिति और दलित स्त्री की मनोस्थिति की ओर जाता है। दलित मनुवादी सोच को नकारतें हैं, मगर स्त्री प्रश्न पर वे मौन हैं। अधिकांश कथाकारों ने माना है कि छुआछूत मानने वाला सवर्ण पुरूष जो दिन के उजाले में दलितों का छुआ पानी भी नहीं पीता, दलित स्त्री के शरीर को हथियानें में कोई गुरेज नहीं करता, मोहनदास नौमिशराय के "आज बाज़ार बन्द है" की पार्वती सुनील से दलित स्त्री की यथार्थ कहानी को कहती है - "देखो तो मेरे जीवन की विडम्बना, घर से मंदिर, मंदिर से वैश्यालय और वैश्यालय से मरघट नहीं अभी नहीं ? शायद एक दलित महिला को और भी पीड़ा भोगनी होती है।"[१५] हिन्दू वर्ण व्यवस्था के कारण दलित स्त्री पर अत्याचार हुए हैं, इनके कारण दलित स्त्री ने जो कुछ सहा है उसकी सृजनात्मक अभिव्यक्ति बाकी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. दलित साहित्य विमर्श में स्त्री, बजरंग बिहारी तिवारी, पृ. ३६, ४०
२. दोनों गालों पर थप्पड़, मोहनदास नैमशिराय, आधुनिकता के आइने में दलित, पृ. २४१
३. वही, पृ. ३३२
४. वही, पृ.
५. गोदान, पृ. २५५
६. आकाश की छत, पृ. ६६
७. वही, पृ. ६६
८. बिना दरवाजे के घर, पृ. १०६
९. पानी के प्राचीर, डॉ. रामदरश मिश्र
१०. जल टूटता हुआ, डॉ. रामदरश मिश्र
११. अनारो, मंजुल भगत, पृ. २८
१२. अनारो, मंजुल भगत, पृ. ४०, ४१
१३. चिड़ीमार कहानी, ओम प्रकाश बाल्मीकि, पृ. १०८
१४. दलित कहानी संचयन, सम्पादक - रमणिका गुप्ता, पृ. ८७
१५. आज बाजार बंद है, मोहनदास नैमिशराय, पृ. ६२

स्त्री विमर्श

आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी चिंतन के विविध आयाम

❐ डॉ. सुनीता शर्मा

"अतुलं त तत्तेजः सर्वदेव शरीरजम्।
एकस्थ तद्भून्नारी व्याप्त लोक यत्त्विषा।।"

वेद रचयिता ब्रह्मा ने अथर्ववेद में इस बात को स्वीकार किया है कि इस ब्रह्माण्ड में नारी का महत्व अक्षुण्ण है। वह मानव समाज की आधार-शिला और सामाजिक विकास का मूल स्रोत है। प्रत्येक क्षेत्र की पूरक शक्ति नारी नर की एकात्मकता का बोध करवाती है क्योंकि अर्द्धनारीश्वर के स्वरूप की कल्पना एवं अनुभूति भी नर-नारी के ऐक्य को ही प्रकट करती है। नारी के बिना समाज और संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती और वही समाज एवं संस्कृति उच्चता के शिखरों को छूते हैं जिसमें नारी को गौरवपूर्ण स्थान मिला हो। समाज में नारी के महत्व के विषय में टॉमस मूर लिखते हैं,"स्त्री रात का तारा और प्रभात का हीरा है। वह तो ओंस का कण है जिससे कांटों का मुख भी हीरों से भर जाता है।" पर समाज तथा संस्कृति की उच्चता का बोध केवल साहित्य के माध्यम से हो सकता है और साहित्य द्वारा ही नारी सामाजिक उच्चता का मापदण्ड बनती है। परिवेश का सत्य ही साहित्य में प्रतिफलित होता है और परिवेश ही नारी की स्थिति पर प्रकाश डालता है जो साहित्य के माध्यम से दृष्टिगोचर होता है।

हिन्दी साहित्येतिहास में आधुनिक युग का परिवेश अन्य युगों की अपेक्षा राजनीतिक उथल-पुथल से परिवर्तित होता रहा है तथा आधुनिक युग का काव्य कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है जैसे वर्ण्य-विषय, सामाजिक निरूपण, राष्ट्रप्रेम, सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन एवं नारी चित्रण आदि। चाहे आधुनिक हिन्दी काव्य वीर, भक्ति एवं रीतिकाल की वीणा के स्वरों के साथ ही आगे बढ़ा पर उसके राग बदल गये जिसके कारण नया प्रारूप बन गया। विगत तीनों कालों में जहां नारी को एक पात्र के रूप में चित्रित किया तो आधुनिक युग में नारी एक कवयित्री के रूप में भी आगे आई जिसने अपनी कल्पना एवं यथार्थ वर्णन के माध्यम से भारतीय नारी को एक नवीन चेहरा दिया। नारी के इस नवीन रूप में आगे आने के लिए आधुनिक युगीन परिस्थितियां पूर्णतया उत्तरदायी हैं :-

मुसलमानों के निरन्तर आक्रमणों के कारण भारतीय नारी सती-प्रथा, बाल विवाह, पर्दा-प्रथा, विधवा-विवाह आदि कुरीतियों से जकड़ी थी। अतः नारी को इन कुप्रथाओं से बाहर निकालने के लिए काव्य एक सशक्त माध्यम था।

स्वतंत्रता पूर्व अठारहवीं शताब्दी में धार्मिक आडम्बर, रूढ़िगत विचार, परम्परागत सामाजिक संस्कारों ने मिलकर अंधकार का ऐसा परिवेश भारतीय जीवन के चारों ओर निर्मित कर दिया था कि उसे तोड़ सकना सहज एवं संभव नहीं था तो इस बर्बर युग में नारी उद्धार के लिए प्रार्थना-समाज, ब्रह्म समाज, आर्य समाज तथा थियासॉफिकल सोसायटी का निर्माण हुआ और राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द तथा दयानन्द सरस्वती के प्रयासों से यह ताना-बाना विश्रृंखल हुआ। इन सबने निरन्तर नारी की वकालत की तथा अनेक अत्याचारों को समाप्त कर स्त्री शिक्षा का प्रबंध किया तथा शिक्षा में शुद्ध भारतीय प्रणाली पर बल दिया। इन समाजों के प्रयासों के

❐ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, गुरूनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर (पंजाब)

परिणामस्वरूप कवि ने भी काव्य में नारी का सजग रूप दिखाया है।

लंबे समय से भारत में विदेशी राज्य होने के कारण असहयोग आंदोलन तथा भारत छोड़ो आन्दोलन चले पर यह आंदोलन नारी सहयोग बिना सफल नहीं हो सकते थे। नारी को आगे लाने के लिए नेताओं के प्रयासों के साथ-साथ कवियों ने काव्य के माध्यम से नारी का आह्वान किया।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् साधारण मानसिकता बदल गई। ऐसे में साहित्यकार की सोच बदली तथा प्रथम युद्ध एवं द्वितीय युद्ध के बीच की अवधि में अधिकतर नारी प्रधान काव्य रचा गया।

आधुनिक हिन्दी काव्य भारतेन्दु, द्विवेदी, छायावाद, प्रगति, प्रयोग, नई कविता, समकालीन कविता, साठोत्तरी कविता के विभिन्न प्रारूपों, गठबन्धन एवं विकास का समग्र बोध है। इन सब कालों में पात्र एवं सृष्टा के रूप में नारी की अलग-अलग स्थिति रही है।

भारतेन्दु युग में नारी को रीति और श्रृंगार के संकुचित घेरे से मुक्त कर उसे प्राचीन गौरव फिर से प्रदान करने का सफल प्रयास कवियों ने किया है। इस काल के साहित्यकारों की दृष्टि नारी के सत् रूप की ओर उन्मुख हुई। नारी की हीनावस्था एवं विषादयुक्त परिस्थिति को इस प्रहर में उसके उत्थान का प्रयास साहित्य के माध्यम से हुआ और स्त्री समाज की अधिष्ठात्री देवी के रूप में पूज्य हुई।[३] इस युग में नर का नारी पर कठोर शासन था। शिक्षा के अभाव में नारी असहाय बंदिनी थी। भारतेन्दु जी ने स्त्री के प्रति देखने का पुरूष का दृष्टिकोण बदलने का प्रयास किया। भारतेन्दु जी ने स्त्री शिक्षा के प्रचार हेतु 'बालबोधिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया तथा नर-नारी समानता एवं नारी मुक्ति का नारा दिया। यथा -

"जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरूष, या में कछु न विभक्ति।"[४]

तथा

"नारी नर अरधंग की सांचे ही स्वामिनी होय।"[५]

नर-नारी समानता के साथ कवियों ने नारी शिक्षा का भी समर्थन किया, यथा -

स्त्री गण को विधा देवै, करि पतिव्रता यश लेवै।"[६]

कवि प्रताप नारायण मिश्र, प्रेमघन तथा ठाकुर जगमोहन सिंह व राय देवी प्रसाद पूर्ण ने नारी की सामाजिक स्थिति का चित्रण किया है। अनमेल विवाह, बाल-वृद्ध विवाह आदि के प्रति रोष इनकी रचनाओं में मिलता है यथा : -

"बाल विवाह ने बल हनि रक्खा चलते काया डोली है
नहिं आने की मुख पर लाली, वृथा बिगाड़ी रोली है।"[७]

भारतेन्दु युग में कवियों ने नारी को देश प्रेमिका तथा वीर नारी के रूप में भी चित्रित किया है। वह पुरूष को राष्ट्र प्रेम की प्रेरणा देती है। वह कायर की पत्नी अथवा कायर की मां बनने की अपेक्षा मृत्यु का वरण करना गौरवपूर्ण समझती है यथा -

सहणी सवरी हूँ सखी, दो उर उलटी दाह।
दूध लजाणै पूत सम, बलम सजाणै नाह।"[८]

इस युग के कवियों ने इस बात पर भी बल दिया है कि नारी ही मानव एवं समाज का सुधार कर सकती है। इस विषय में रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

"नारी के सुधारे जग में प्रसिद्ध होत,
नारी के संवारे होत सिद्ध धन बलहै।।[९]

इस प्रकार भारतेन्दु युग में नारी पात्र की परिकल्पना सहानुभूति के लिए की गई पर साथ ही कवियों ने नारी को राष्ट्र की कर्णधार एवं सामाजिक विकास का मूल बताया है।

द्विवेदी युग नारी चित्रण के लिए नवोत्थान का संदेश लेकर आया। नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण

अपनाने का श्रेय द्विवेदी जी को तो जाता ही है पर इस युग के कवियों पर कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ, आर्य समाज तथा अन्य समाजों, स्त्री सुधारवादी आन्दोलनों, नेशनल कांग्रेस के परिष्कृत विचारों का भी पूर्ण प्रभाव पड़ा। इस युग में नारी उच्च भावना का प्रतीक बन गई। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, अनूप शर्मा, द्वारिका प्रसाद मिश्र हरिऔध, गोपालशरण सिंह, सोहनलाल द्विवेदी, मैथिली शरण गुप्त इस युग के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। इस युग के कवियों ने जहां एक ओर नारी के सुरम्य रूप, मधुरवाणी एवं शालीन व्यवहार का चित्रण किया है तो दूसरी ओर राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण भारतीय नारी में महान् शक्ति के दर्शन भी किए हैं। श्रीधर पाठक की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

"अहो पूज्य भारत महिला गण, अहो आर्यकुल नारी।
अहो आर्य गृहलक्ष्मी सरस्वती, आर्य लोक उजियारी।।
- - - - - - - -
तुम हो शक्ति अजेय विश्व की, आर्य अमोघ बलधरिणी।।"[१०]

लाला भगवानदीन ने भी वीर कन्या, वीर वधु एवं वीर प्रसविनी का स्वरूप सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। वह स्वयं तो शक्तिमान है ही साथ ही वह पुरूष को भी शक्ति एवं प्रेरणा देने वाली है। इस युग के कवियों ने नारी अशिक्षा, दोषपूर्ण विवाह प्रथा, पर्दा-प्रथा, दहेज प्रथा आदि का भी डटकर सशक्त शब्दों में विरोध किया है जैसे -

"महामलिन से मलिन काम हम करती हैं दिन-रात।
दुखी देख पति, पिता पुत्र को, व्याकुल हो कृश करती गात।
है भगवान! हाय तिस पर भी उपमा कैसी पाती है।
ढोल तुल्य ताड़न अधिकारी हमीं बनाई जाती हैं।"[११]

इस युग में नारी की जीवन परिधि परिवार न होकर राष्ट्र हो गई है। रामनरेश त्रिपाठी रचित 'मिलन' काव्य की नववधू विजया अपने स्वामी के प्रयाण पर अत्यन्त दुखी है पर फिर भी अपने कर्त्तव्य पथ का निश्चय कर साक्षात् दुर्गा बनकर लोक सेवा में लीन हो जाती है। 'स्वप्न' खंडकाव्य में नायिका सुमन अपने पति को कर्ममार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। वह स्वयं पुरूष वेश धारण कर राष्ट्र रक्षा के लिए युद्ध के लिए तैयार होती है तथा अपने कायर पति से कहती है -

"तुम्हें ज्ञात है कैसा संकट, है स्वदेश पर हे प्राणेश्वर।
शोभा नहीं तुम्हें देता है, घर पर रहना इस अवसर पर।।"[१२]

हरिऔध रचित 'प्रियप्रवास' में राधा 'स्वदुख कातरता' का 'पर-दुख कातरता' में पर्यवसान कर, संकीर्ण व्यक्तिगत प्रणय विनिमय का स्वस्थ भावभूमि पर विस्तार कर लेती है तथा कृष्ण को परामर्श भेजती है :-

"प्यारे जावें जगहित करें। गेह चाहे न आवें।।"[१३]

वह लोक सेविका, लोक निर्देशिका तथा विश्व प्रेमिका बन जाती है :-

'कंगालों की परमनिधि थी, औषधि पीड़ितों की।
दीनों की थी बहिन, जननी थी आश्रितों की।।
आराध्या थी ब्रज-अवनि की, प्रेमिका विश्व की थी।।"[१४]

'वैदेही वनवास' में कवि ने सीता को आधुनिक नारी के रूप में वर्णित करते हुए उसके समाजसेवी, विश्व कल्याणकारी रूप के साथ-साथ आर्य संस्कृति के आदर्शों को अपनाते हुए दर्शाया है। तभी तो वह कहती है :-

"है मुख्य धर्म पत्नी का, पद पंकज की अर्चा।
जो स्वयं पतिव्रता होवे, क्या उससे इसकी चर्चा।।"[१५]

सोहन लाल द्विवेदी ने भी अपने काव्य में वीर नारी का चित्रण कर नारी शिक्षा का समर्थन किया है।

नारी स्वातंत्र्य के समर्थक मैथिलीशरण गुप्त ने स्त्री पात्रों में श्रेष्ठ मानवीय गुणों का समावेश किया। नारी को पुरूष की समकक्षता पर प्रतिष्ठित करने के इच्छुक गुप्त जी ने उसे पुरूष से भी ऊँचा स्थान देते हुए कहा है :-

"एक नहीं दो-दो मात्राएं, नर से नारी है भारी।।"[१६]

गुप्त जी की नारी भावना में 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' की त्रिवेणी प्रवाहित है। नारी के मां, बहन और प्रेमिका ये तीन रूप मिलकर एक होते हैं जो बनती है पत्नी, इसी से पत्नी रूप उन्हें उच्चतम प्रतीत हुआ।[१७] उन्होंने 'साकेत' के द्वारा उर्मिला, कैकेयी, मांडवी आदि 'यशोधरा' द्वापर लिखकर विधृता, 'विष्णुप्रिया' लिखकर विष्णुप्रिया, 'रत्नावली' लिखकर रत्नावली आदि स्त्री पात्रों का उद्धार किया। उर्मिला के रूप में उन्होंने समर्पिता, पतिपरायण, वीर पत्नी एवं राष्ट्र सेविका का रूप उभारा है तो बाल्मीकि और तुलसीदास द्वारा कलंकित एवं तिरस्कृत कैकेयी को भी धन्य किया है। वह चित्रकूट की सभा में अपना अपराध स्वीकार करती है तो सारी सभा एक स्वर में कहती है :-

"पागल सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई।
सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।।
जिस जननी ने है जना भरत सा भाई।।"[१८]

कवि ने उर्मिला, यशोधरा तथा विष्णुप्रिया को भी ऐसी पतिव्रता नारियों के रूप में चित्रित किया है जिनके पति उन्हें त्याग कर स्वसाधना हेतु चले गये हैं। ये नारियां पतिव्रत धर्म का पालन करते हुए कभी अपने पति के मार्ग में बाधा नहीं बनती हैं। साकेत में उर्मिला कहती है :-

"कहा उर्मिला ने हे मन, तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।
आज स्वार्थ है त्याग भरा, हो अनुराग विराग भरा।।"[१९]

दूसरी तरफ यशोधरा भी कहती है -

"जाओ नाथ अमृत लाओ तुम, मुझमें मेरा पानी।।"[२०]

गुप्त जी के काव्य में नारी के सुधारवादी स्वरूप की व्यंजना भी है तभी तो साकेत की सीता नारी को अपने पैरों पर खड़ी होकर कातने बुनने एवं खुरपा-कुदाली चलाने की प्रेरणा देती है तो दूसरी तरफ चैतन्य के चले जाने पर विष्णुप्रिया को भी अपने श्रम पर पूर्ण भरोसा है। उसके साथ उसकी सास भी है वह पूर्ण आत्मविश्वास से कहती है -

"कर लेंगी हम किसी प्रकार,
इतना श्रम, जिससे हम दोनों न हों किसी पर भार।
दो दो कौर अन्न पा लेंगी और धोतियां चार।।"[२१]

यदि गुप्त के नारी पात्र एक ओर श्रम पर विश्वास करते हैं तो दूसरी ओर अपने अधिकार के प्रति सजग भी दिखाई देते हैं 'द्वापर' में पति द्वारा विधृता को रोकने पर वह पति से प्रश्न करती है :-

"अधिकारों के दुरूपयोग का कौन कहां अधिकारी ?
कुछ भी स्वत्व नहीं रखती क्या अर्धांगिनी तुम्हारी ?"[२२]

इस प्रकार गुप्त जी के काव्य में नारी पात्रों में अपने 'स्व' के प्रति पूर्ण सम्मान की भावना है। वे स्वभाव से कोमल हैं किन्तु उनकी कोमलता परिस्थिति के अनुरूप कठोर होना भी जानती है। भारतीयता के प्रति अनुराग, त्याग भावना का चर्मोत्कर्ष, जीवन की प्रत्येक स्थिति में पुरूष का साथ देने के लिए सन्नद्ध, उत्साह, स्वावलम्बन तथा गौरवभावना से परिपुष्ट गुप्त जी की नारी की विशेषता है।[२३]

इस प्रकार नारीत्व के प्रति आदर, सहानुभूति, उदारता एवं उच्च भावना का दृष्टिकोण द्विवेदी युग की कविता में व्यक्त हुआ है।

छायावादी साहित्य में एक सर्वथा नवीन भूमि पर नारी की प्रतिष्ठा हुई जो दिव्य, ज्योतिर्मय एवं प्रेरणा का स्रोत बनी। इस युग के आते-आते यह भावना जागृत हो गई कि नारी नर से श्रेष्ठ है। वह पुरूष में प्रेरणा भरने वाली शक्ति है। वह विश्व की रमणीयता में वृद्धि करने वाली किरण है। छायावादी कविता में कवियों ने नारी को सांस्कृतिक सुषमा से सजाकर मानवी रूप में प्रतिष्ठित किया है। उसमें ही स्वर्ग खोजा है यथा -

"यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर

तो वह नारी उर के भीतर।।"[२४]

छायावादी कविता में जिस नारी का चित्रण किया गया है वह काम-पुत्तलिका मात्र नहीं बल्कि जीवन में श्रेय में प्रेय बनाने वाली एक शक्ति है। प्रसाद के शब्दों में -

"नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास-रजत-नग-पग तल में।
पीयूष-स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।।"[२५]

प्रसाद जी की नारी प्रायः आदर्श पुंज, वंदनीय, श्रद्धेय और जनमन को प्रभावित करने वाली है। 'आंसू' की 'अज्ञात नायिका' तथा 'कामायनी' की 'श्रद्धा' इसी का प्रमाण है। प्रसाद की नारी निःस्वार्थ भाव से आत्मसर्मपण करती है वह पुरूष के लिए अपनी प्रिय आकांक्षाओं को उत्सर्ग कर देती है जैसे -

"इस अर्पण में कुछ और नहीं, केवल उत्सर्ग झलकता है,
मैं दे दूं और न फिर कुछ लूं इतना ही सरल झलकता है।।"[२६]

पर एक ओर यदि वह नारी समर्पण जानती है तो दूसरी ओर वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी है -

"तुम भूल चुके पुरूषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की।।"[२७]

पंत के काव्य में नारी के चार रूपों के दर्शन होते हैं - देवि, मां, सहचरी तथा प्राण। जहाँ पंत ने प्रकृति में सर्वत्र नारी को देखा है वहां वह नारी को सामाजिक रूढ़ियों रूपी बंधनों से मुक्त करा उसमें चेतना के स्वर को फूंक देना चाहते हैं। यथा-

"मुक्त करो नारी को मानव, चिर बंदिनी नारी को।
युग युग की बर्बर कारा से, जननि सखि प्यारी को।[२८]

निराला साहित्य में नारी का चित्रण उच्च एवं उदात्त स्तर पर हुआ है। उन्होंने अपनी कविताओं में एक ओर नारी समर्पण के अनूठे चित्र अंकित किए हैं तो दूसरी ओर भारत की विधवा के अत्यन्त कारूणिक चित्र भी खींचे हैं और उसे मंदिर की दीपशिखा के समान पवित्र बताया है :-

"वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी
दलित भारत की विधवा है"[२९]

नारी वर्णन की दृष्टि में महादेवी का काव्य अपना महत्व रखता है। उनके काव्य में चित्रित नारी अशक्त एवं सहिष्णु है। भारतीय नारी की असहायता, उपेक्षिता स्थिति का संकेत उनकी कविताओं में मिलता है यथा -

"मैं नीर भरी दुःख की बदली।
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली।।"[३०]

इस प्रकार छायावादी कवियों ने नारी के आत्मिक सौन्दर्य का मूल्यांकन करने के साथ-साथ मनुष्य को अंतर्दृष्टि देने वाली मानिनी के रूप में आसीन किया है।

छायावाद के समान ही छायावादोत्तर काव्य में भी नारी चित्रण हुआ। नारी का राष्ट्रीय स्वरूप भी इसी काल में विकसित हुआ। गाँधीवादी राष्ट्रीय आंदोलनों में अब वह व्यावहारिक रूप में भाग लेने लगी थी। इस काल में नवीन जागृति के चिन्ह उसके व्यक्तित्व में दृष्टिगोचर होने लगे थे। अब वह अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गयी थी। उसकी निर्माणात्मक प्रकृति और उदात्त रूप जाग्रत होने लगा था और वह आत्मनिर्भर बनने लगी थी। इस युग के कवियों ने अपनी कविताओं में नारी के इसी रूप का वर्णन किया है जिससे वह अपनी रक्षा आप कर सके :-

"जी करता है, अपना पौरूष, इज्जत उसे उढ़ा दूँ
या कि जगा दूं उसके भीतर की उस लाल शिखा को
आंखों में जिसके बल से दिशा कांप जाएगी।"[३१]

नारी में राष्ट्रप्रेम के भाव भरने वाले कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी ने नारी को

राष्ट्रसेविका, सिपाहिनी तथा वीरबाला के रूप में चित्रित किया है। एक भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में नारी राष्ट्र के लिए सर्वस्व मिटाती हुई दिखाई देती है। वह पुरूषों को प्रेरित करती रहती है :-

"चूड़ियां बहुत हुईं कलाई पर, प्यारे, भुज दंड सजा दो।
तीर कमानों से सिंगार दो, जरा जिरह बख्तर पहना दो।।"(३२)

इस राष्ट्र प्रेमिका नारी को नवीन जी दैवी गुणों से सम्पन्न मानते हैं। इसलिए वे कहते हैं -

"ऐ बौने नारी को देखो, वह पत्नी है, वह माता है
वह हिय की कणिका बेटी है, वह जग की भाग्य विधाता है।
वह महाशक्ति का मूर्तरूप, वह परम भक्ति कल्याणमयी।
वह सृजन-ब्रह्म क्षण की पावन सुंदर उषा मुस्कानमयी।।"(३३)

दूसरी तरफ महाकाव्य उर्मिला में नर-नारी को एक दूसरे का पूरक बताते हुए कहते हैं :-

"देवि नरोत्तम है वह, जिसमें हो नर-नारी का मिश्रण।
ऐसे ही नर-वर करते हैं, जग का स्रवित वेदना-व्रण।।"(३४)

इस राष्ट्रीय काव्यधारा के साथ-साथ एक हालावाद की धारा भी चल रही थी जिसमें कवि हरिवंशराय बच्चन ने नारी को मनोरम, मधुबाला, पत्नी, माता और प्रेरणादायिनी, जीवन संगिनी के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि ने सौन्दर्य के स्थूल चित्रण की अपेक्षा उसके आंतरिक सौंदर्य का उद्घाटन किया है :-

"प्रेरणाओं की सरस अधिकारिणी तुम।
आज मेरे प्राण को कर दो ऋणी तुम।।"(३५)

इस प्रकार छायावादोत्तर काल में एक ओर नारी का सामाजिक परिपार्श्व तेजस्वी रूप प्रकट किया है तो दूसरी ओर मादकता की जीती-जागती प्रतिमा के साथ में भी देखा है।

प्रगतिवादी काव्य में युगों से शोषित और दमित नारी को अंधकार के गर्त से निकालकर उसे कर्मक्षेत्र में अपनी शक्ति प्रदर्शन के लिए प्रेरित किया गया है। इस काल की नारी कहीं आर्थिक वैषम्य में उलझी है तो कहीं जीवन की प्रेरणा बनी है, कहीं दिशा निर्देशन कर रही है तो कहीं प्रणयदान। नारी को इन कवियों ने नर की शक्ति के रूप में स्वीकार किया है -

"नारी नर की शक्ति, शक्ति है जिसकी दुख सहने में।
पौरूष है उद्दीप्त निहित है नारी के दहने में।।"(३६)

दूसरी ओर प्रगतिवादी कवि की दृष्टि में नारी भी मजदूर और किसान के समान शोषित-वर्ग में अंतर्भूत है। युग-युग से सामन्तवाद की कारा में बंदिनी नारी के प्रति एक उदार, स्वस्थ, उदात्त दृष्टिकोण कवियों ने अपनाया है। कवि नारी के सक्रिय परिवर्तन में विश्वास कर उसे रणचंडी बनाकर विद्रोही और हिंसात्मक रूप धारण करने का उपदेश देता है :-

"प्रतिमा की तुम प्रतिरूप बनो, रणचंडी की अनुरूप बनो।
ओ खडगहस्त खप्परवाली, फिर प्रलयगीत गाओ काली।।"३७

इन कवियों की नारी के प्रति अपार सहानुभूति होने के कारण इन्होंने शरीर बेचने वाली वेश्या के प्रति भी अपार कोमल भाव दर्शाये हैं। इसी प्रकार धनी लोगों के घर काम करते करते कहारिन यदि बदचलन हो गई है तो उसका दोष कवि ने धनी मालिक को ही दिया है :-

"जा रही किसी घर के जूठे बर्तन मलकर,
बदचलन कहारी थकी हुई,
चौका बर्तन, सैना-बैनी में बिता चुका यौवन के दिन
काटनी उसे पर उम्र अभी तो पकी हुई।।"३८

कवि ने मजदूरिन के प्रति भी सहानुभूति भरा दृष्टिकोण अपनाया है। 'मजदूरिन के प्रति' कविता की ये पंक्तियां इसी अंतर्विरोध का उदाहरण :-

"सर से आंचल खिसका है - धूल भरा जूड़ा,
अधखुला वक्ष-ढोती तुम सिर पर धर कूड़ा।"४०

प्रगतिवादी कवियों ने स्त्री को गृहस्थी में सहयोगी और पत्नी के रूप में भी चित्रित किया है। नागार्जुन की कविता 'यह दन्तुरित मुस्कान' से एक उदाहरण प्रस्तुत

है :-

"तुम्हारी यह दन्तुरित मुस्कान, मृतक में भी डाल देगी जान।
धूलि धूसर तुम्हारे यह गात ....
छोड़कर तालाब मेरी झोपड़ी में खिल रहे जलजात।।"

दूसरी ओर इस युग की नारी ने नर-नारी में समान अधिकारों की कल्पना भी की है :-

"नर नारी में मर्यादा के बोध
सम-सम होंगे सम-सम होगा न्याय
सम-सम होंगे विद्या-बुद्धि-विवेक
टिक सकता है क्योंकर वहां प्रवाद।।"[४१]

इस प्रकार प्रगतिवादी कविता में नारी के प्रति सर्वथा नयी और मानवीय दृष्टि का परिचय दिया गया है। नारी का घर और बाहर दोनों जगह जो शोषण हो रहा है इन कवियों ने उसे बेनकाब करने का प्रयास किया है। इन कवियों ने नारी का सिर्फ पुरूष की काम वासना की पूर्ति का साधन मात्र नहीं माना, अपितु पुरूष के कंधे से कंधा मिलाकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करने वाली सहयोगिनी के रूप में स्वीकार किया है।

प्रयोगवाद एवं नयी कविता का समय भारतीय स्वतंत्रता से जुड़ा है अतः इस युग के कवियों का दृष्टिकोण राष्ट्र एवं समाज से हटकर स्व पर केन्द्रित हो गया। ऐसे में नारी प्रति दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया। प्रयोगवादी कविता में पुरूष के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करने वाली नारी पुरूष द्वारा मर्माहत होने पर भी प्रतिशोध की भावना से पीड़ित नहीं होती। वह सरल हृदयता के कारण ही पुरूष द्वारा छली जाती है। इस युग के प्रमुख कवियों में अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भारत भूषण अग्रवाल आते हैं जिन्होंने अपनी कविताओं में नारी पात्र को लेकर काव्य रचना की है। अज्ञेय की कविता में नारी जीवन के निर्माण की स्वस्थ कामना नहीं मिलती उसमें श्रृंगार के चित्र ही अधिक मिलते हैं। वैयक्तिक प्रधान होने के कारण उनकी कविता में नारी की भौतिक समस्याओं का कोई समाधान नहीं है। माथुर जी की कविता में भी नारी देह का आकर्षण है पर साथ ही कवि ने पुरूष जीवन में नारी के रमणीय अस्तित्व का वर्णन किया है जैसे :-

"स्त्री,
लेकिन तुम सिर्फ सुगंध नहीं
तुम एक पूरी दुनिया हो -
मैं तुम्हारे हाथों की समर्थ तनिमा में
सौंप देना चाहता हूँ, वे सभी नियामतें
जो सब तुम्हारी हैं, तुमसे हैं।"[४२]

नयी कविता के अंतर्गत ही भवानी प्रसाद मिश्र ने नारी के प्रति पुरूष के शंकालु भाव का वर्णन किया है जबकि अपनी प्रेमपरक कविताओं में अपनी प्रिया के नखशिख का वर्णन कुछ नये ढंग से मदन वात्स्यायन ने किया है -

"वे गहने के तेरे गोरे अंग हैं,
और वे बेला-बूटों की तेरी श्वेत साड़ी,
चारों ओर उजले बादल हैं,
कोई ज्वाला चमक रही है।"[४३]

तीसरे सप्तक की ही कीर्ति चौधरी ने कविता में नारी को हर ओर से सक्षम मानते हुए बताया है कि नारी तो जन्म से ही सृजन का अधिकार लेकर आयी है तब वह अक्षम कैसे हो सकती है :-

"पुष्पमयी फलदायिनी, अक्षम किस अर्थ में
सुषमा को आश्रय में पाले क्यों व्यर्थ में ।।"[४४]

इस प्रकार नयी कविता की नारी में संकल्प का भाव है तो वह पुरूष नियंत्रण को स्वीकार नहीं करती तो भी धर्मवीर भारती जैसे कवियों ने नारी सौंदर्य के साथ-साथ इस गांधारी के रूप में संवेदना की संवाहिका के रूप में चित्रित किया है।

साठोत्तरी कविता के अंतर्गत पश्चिम की नकल पर 'बीट कविता' चली जिसमें कवियों ने नारी की

गरिमा को मार्ग पर ला खड़ा कर दिया और प्रत्येक गुजरती हुई नारी के साथ संभोगेच्छा व्यक्त की। श्रीकांत वर्मा, श्री राम शुक्ल ने इसी प्रकार की कविताएं लिखी हैं। वैज्ञानिक युग की सम्पन्नता ने कविता पर भी प्रभाव डाला। जिसमें नारी को लेकर फ्री सेक्स, नाईट क्लब तथा चलचित्रों के दृश्य अपनाकर उसके प्रति अस्वस्थ दृष्टिकोण दिखाई देता है जैसे -

"मेरे और उसके बीच औरत है,
जिसके जिस्म की तहों में
मैं रात भर सोता हूँ।।"४५

आठवें दशक तक आते आते यौन पिपासा बढ़ जाने के कारण आकर्षण और रिश्तों के टूटने का वर्णन किया गया है। कवियों ने नारी को किशोरी, युवती, वेश्या, कुलटा के रूप में चित्रित किया है। स्त्री शरीर का प्रयोग विज्ञापन के रूप में किया है यथा :-

"स्त्री पूंजी है, बीड़ी से लेकर,
बिस्तर तक, विज्ञापन में फैली है।"४६

पर इस दशक में कामकाजी नारी का चित्रण भी हुआ है और उसके प्रति सहानुभूति प्रकट भी है। आर्थिक अभावों से जूझती नारी असमय ही बुढ़ापे की चपेट में आ जाती है। इसका वर्णन भी धूमिल के शब्दों में इस प्रकार है -

"वह कौन सा प्रजातांत्रिक नुस्खा है
कि जिस उम्र में मेरी मां का चेहरा
झुर्रियों की झोली बन गया है
उसी उम्र की मेरे पड़ोस की महिला के चेहरे पर
मेरी प्रेमिका के चेहरे सा लोच है।"४७

इस दशक के कवियों ने लड़की को समाज में असुरक्षित तो चित्रित किया ही है और इसके साथ ही 'एक नवजात बच्ची को प्यार' कविता में कवि अरूण कमल ने समाज में नारी की यातना भरी जिन्दगी की तस्वीर खींची है तथा इस बात को स्पष्ट किया है कि हमारे समाज में बेटी के जन्म पर कोई खुशियां नहीं मनाता क्योंकि उसके पैदा होते ही दहेज की चिंता लग जाती है यथा :-

"जिस दादी ने जूठन खाकर ही गुजार दी जिन्दगी
जिस मां ने अपने पति की मार चुपचाप सही
और जिस पिता ने देखा है तिलक दहेज का
क्रूर व्यापार वे कैसे खुश होंगे ?"४८

आठवें दशक की मिथक रचनाओं में भी विभिन्न नारी पात्रों के माध्यम से आधुनिक नारी का ही चित्रण किया है जैसे सूर्यपुत्र की 'कुंती' के माध्यम से आधुनिक नारी के काम और रति के उदात्त रूप को दिखाया है जबकि "एक पुरूष और" मिथक काव्य के द्वारा कवि ने मेनका के संघर्ष को केवल उसके अस्तित्व के संकट के लिए नहीं अपितु नारी को सार्थक और सही जीवन जीने के लिए प्रेरित किया है। मेनका कहती है :-

"मुझे मिलनी चाहिए अर्थवत्ता
मेरे शरीर की मेरे अस्तित्व की।"४९

अतः 'पाषणी' तथा 'विश्वकर्मा' प्रबंध काव्यों के माध्यम से भी नारी को परंपरागत बंधनों से विद्रोह करते दिखाया गया है।

नवे दशक के काव्य में भी कवियों ने नारी के पक्ष में उसके प्रेम, वात्सल्य, पत्नीत्व तथा घर-गृहस्थी की सामान्य समस्याओं के साथ चित्रित किया है। इसके साथ ही नारी पर पड़े पाश्चात्य प्रभाव के कारण उसे तितली एवं जापानी गुड़िया के रूप में बताया है।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी को न देवी ही माना है और न ही बुराइयों की जड़ के रूप में दानवी ही, बल्कि उसे जीवनसंगिनी के रूप में स्वीकारा है। आधुनिक कवि ने उसे पुरूष के कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली, जीवन के हर क्षेत्र में उसका साथ निभाने वाली, इतिहास निर्माण को पूर्णता प्रदान करने वाली सहयोगिनी के रूप में देखा है। जबकि छठे सातवें

दशक से नारी का वासनात्मक रूप भी सामने आता है पर फिर भी नारी के गौरव और समान अधिकारों की चर्चा की है।

कवयित्री के रूप में कई लेखिकाएं आधुनिक युग की देन हैं जिन्होंने अपने काव्य के द्वारा भारतीय अवस्था के साथ-साथ नारी पर भी चिंतन किया है। उत्तर मध्यकाल तक नारी लेखिकाएं बहुत कम थीं जबकि आधुनिक काल में लेखन क्षेत्र में नारी का प्रवेश प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् होता है। विश्वयुद्ध के पश्चात् कई क्षेत्रों में जैसे राजनीति कला तथा साहित्य में प्रवेश किया तो काव्य क्षेत्र से वह पीछे कैसे रह सकती थीं। अमृता शेरगिल जैसी चित्रकार ने जर्मनी से लौटने पर भारतीय नारी को चित्रों में उकेरा तो कविता के क्षेत्र से नारी पीछे कैसे रह सकती थी ? फलतः प्रताप कुंवरिबाई, जुगलप्रिया, चन्द्रकला बाई, सरस्वती देवी, निधि रानी, ज्वाला देवी, रत्नकंवरि बीबी, रामकुमारी देवी चौहान तथा श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान आदि कवयित्रियों ने काव्य निर्माण किया। इन लेखिकाओं ने अपनी कविताओं के माध्यम से नारी शिक्षा के महत्व को स्पष्ट किया। यथा :-

"विद्याहीन पशु सम नारी। हमरा नामहि हुआ गंवारी।।
जब से होई हमरी खुआरी। तब से भारत हुआ भिखारी।।"[५०]

इसके साथ ही मातृभूमि को नारी सम् व्यक्त करना तथा नारी समर्पण का चित्रण भी इनकी कविताओं में हुआ है। इसके साथ ही नारी मन का विषाद तथा पीड़ा का चित्रण भी किया है। सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपने काव्य के द्वारा प्रणय भावना, वात्सल्य भावना तथा राष्ट्रप्रेम के गीत गाए हैं। स्वतंत्रता की वेदी पर केवल पुरूषों को ही नहीं नारी को भी आत्मदान करना होगा। नारी को प्रेरित करती हुई वे लिखती हैं :-

"अबलाएं उठ पड़ें देश में, करें युद्ध घमसान सखी।
पन्द्रह कोटि असहयगिनीयां, दहला दें ब्रह्मांड सखी।।"[५१]

कवयित्री ने झांसी की रानी लक्ष्मीबाई को साहसी नारियों में उत्तम चित्रित किया है। उन्होंने नारी जीवन की सबसे बड़ी साध प्रिय को सुखी देखना बताया है। -

"तुमको सुखी देखना ही था जीवन का सुख मेरा
तुमको दुःखी देखकर पाती थी मैं कष्ट घनेरा।।"[५२]

छायावाद में महादेवी वर्मा एक समर्थ हस्ताक्षर हैं इनके अतिक्ति तारा पांडे को भी छायावाद की गौण कवयित्री के रूप में देखा जाता है। महादेवी के काव्य में नारी की मर्मवेदना का चित्रण हुआ है तो तारा पांडे ने नारी त्याग का चित्रण किया है। सुमित्रा कुमारी सिन्हा, विद्यावती कोकिल तथा शांति मेहरोत्रा ने हिन्दू समाज में नारी की स्थिति का चित्रण करते हुए उसे जागरण का संदेश दिया है :-

"लक्ष्य मेरा दूर भी है, पास भी है।
मुक्ति भी है प्राप्त बंधन भी मिले हैं।।"[५३]

प्रयोगवाद एवं नयी कविता में कीर्ति चौधरी एवं शकुन्तला माथुर ने नर-नारी के मुक्त साहचर्य का समर्थन किया है तथा पारिवारिक जीवन के दैनिक सत्य को कविताओं में उभारा है जबकि शान्ति मेहरोत्रा ने नारी जागरण, लोक-कल्याण तथा नारी सम्मान एवं नारी जागरूकता का स्वर अलापा है :-

"मैं सोच रही जग में कैसे
नारी पद को उत्थान मिले
युग तो पाशविक मनुष्यों को
फिर मानवता का दान मिले।"[५४]

आठवें एवं नवें दशक में कवयित्रियों में इन्दिरा मित्र, इन्दु कुमारी, अनामिका, मीरा जैन, शशि तिवारी, सुनीता जैन, कमल कुमार, सुमन राजे, प्रभा खेतान, कुसुम कुमारी, मालती शर्मा आदि कुशल लेखिकाएं है जिन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से स्थूल शारीरिक चित्रण तथा विवाहेतर यौन सम्बन्धों का चित्रण किया है। प्रेम तथा वात्सल्य का वर्णन इनकी कविताओं में जैसा

मिलता है वैसा पुरूष स्त्रियों के काव्य में नहीं मिलता यथा :-

"चंदन की सहज झुकी, मेहराबी डाल-सी ये आहें -
तुम्हारी बांहें - मेरे पातंजलि -
जो कभी सिर्फ बौराया-सा नाग होती हैं
और कभी सिर्फ-सिर्फ खुशबू-इनसे प्रार्थना है"[५५]

इस प्रकार आधुनिक युग का काव्य नारी के हर पक्ष पर विचार करता है। कवियों एवं कवयित्रियों ने नारी चित्रण करते समय उसके सौंदर्य का वर्णन किया है साथ ही पाश्चात्य संपर्क से उनके नारी विषयक दृष्टिकोण को नई दिशाएं भी मिली हैं तथा आधुनिक युग में नारी के सहयोग से विश्व की सृजनात्मक आस्थामूलक पुनर्रचना करने की संभावना ने नारी को पुरूष के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया है। इसे नारी के स्वस्थ भविष्य की सूचना भी कहा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. अथर्ववेद, ११/५/१८
२. शीला रजवार, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में नारी, पृ. २६ से उद्धृत।
३. उमा शुक्ल, भारतीय नारी अस्मिता की पहचान, पृ. २७
४. वल्लभदास तिवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ. ५०३
५. वही " वही " वही, पृ. ५०३
६. प्रताप नारायण मिश्र, प्रताप लहरी, संपा. नारायण प्रसाद अरोड़ा, पृ. १६०
७. वही, वही वही, पृ. १८०
८. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. १८३
९. डॉ. शैल कुमारी, आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना, पृ. ३८
१०. श्रीधर पाठक, भारत गीत, पृ. १६०
११. शैव्या झा, महावीर प्रसाद द्विवेदी, व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. २२२
१२. रामनरेश त्रिपाठी, स्वप्न, सर्ग-३
१३. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृ. २५३
१४. वही वही वही पृ. २६८
१५. अयोध्या सिंह उपाध्याय, वैदेही वनवास, षष्ठ सर्ग, ७६
१६. मैथिलीशरण गुप्त, द्वापर, पृ. २३
१७. सौ. जे. एम. देसाई, आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ. ६६
१८. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, सर्ग ८, पृ. २४६
१९. वही, वही, पृ. ११०
२०. वही, यशोधरा, पृ. ५४
२१. वही, विष्णुप्रिया, पृ. ६८
२२. वही, द्वापर, पृ. २४
२३. मंजुलता तिवारी, गुप्त के काव्य में नारी, पृ. २६२
२४. सुमित्रानंदन पंत, ग्राम्या, पृ. ८२
२५. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, लज्जा सर्ग, पृ. ४५
२६. वही, वही, वही पृ. ४५
२७. वही, वही, इड़ा सर्ग पृ. ६७
२८. सुमित्रानंदन पंत, युगवाणी, पृ. ४६
२९. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, परिमल, पृ. ११६
३०. महादेवी वर्मा, यामा, पृ. २३३
३१. रामधारी सिंह दिनकर, रसवंती, पृ. ४६
३२. माखनलाल चतुर्वेदी, हिमकिरीटनी, सिपाहिनी, पृ. १४२

३३. बालकृष्ण शर्मा नवीन, हम विषपायी जन्म के, पृ. २६
३४. वही, वही, उर्मिला पृ. १६१
३५. हरिवंशराय बच्चन, मिलनयामिनी, पृ. २६
३६. नरेन्द्र शर्मा, द्रौपदी, पृ. ५२
३७. सुमित्रानन्दन पंत, युगवाणी, पृ. ५७
३८. नरेन्द्र शर्मा, मिट्टी और फूल, पृ. ४६
३९. सुमित्रानन्दन पंत, ग्राम्या, पृ. ८४
४०. नागार्जुन, भूमिका, पृ. ६६
४१. गिरीजाकुमार माथुर, मैं वक्त के हूँ सामने, स्त्री कविता-पृ. १०६
४२. वही, वही, पृ. १०७
४३. मदन वात्स्यायन, तीसरा तार सप्तक, संपा. अज्ञेय, पृ. ८५
४४. श्री अरविन्द पांडे, हिन्दी के प्रमुख कवि : रचना और शिल्प, पृ. २२८
४५. चंद्रकांत देवताले, मेरे और उसके बीच, पृ. ५१
४६. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ. ६१
४७. वही, सुदामा पांडे का प्रजातंत्र, पृ. ३७
४८. अरूण कमल, केवल अपनी धार संग्रह से, आठवें दशक की कविता, संपा. तिवारी, पृ. १७२
४९. डॉ. विनय, एक पुरूष और, पृ. १२१
५०. ज्वाला देवी, नारी विनय, पृ. १२
५१. सुभद्रा कुमारी चौहान, मुकुल, पृ. ६३
५२. वही, वही, पृ. ४६
५३. विश्वम्भर मानव, नयी कविता नये कवि, पृ. ११७
५४. शांति मेहरोत्रा, पंच प्रदीप, पृ. ७०
५५. अनामिका, समय के शहर में, देहवंशी कविता, पृ. ७०

स्त्री विमर्श

हाशिए की औरत : एक चर्चा प्रेमचंद के बहाने

❐ डॉ. नीना शर्मा 'हरेश'

आज आजादी के ६० वर्ष बाद भी इस २१ वीं सदी के दौर में हमें स्त्री सशक्तिकरण, स्त्री विमर्श, स्त्री स्वतंत्रता की चर्चा करनी पड़े तो क्या वास्तव में हम प्रगति के पथ पर हैं ?

प्रगति के इस दौर में कई उतार-चढ़ाव आए, लेकिन समाज ने इस मार्ग की गहरी खाइयों में स्त्री के अस्तित्व को दफन कर दिया है। कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स, सानिया मिर्जा, पी.टी. ऊषा जैसी कई स्त्रियों की चर्चा करते समय हम गर्व से अपना सिर कई इंच ऊँचा कर लेते हैं। लेकिन अपने ससुराल वालों द्वारा गरम चाकुओं से दागी जाने वाली मिरांडा कालेज की प्रीति के आंसुओं के सैलाब को एक चटपटी खबर से ज्यादा अहमियत नहीं देते। अगर एक किरण अपने पति को जिंदा जला दे तो जगमोहन मुंदड़ा उस पर फिल्म बना देते हैं। और हम सभी मिलकर स्त्री सशक्तिकरण का ढोल पीटने लगते हैं। लेकिन क्या आज २००८ में भी स्त्री की इज्जत उसकी सबसे बड़ी पूंजी है, स्त्री अबला है, जैसे शब्द जाल से निकल पाए हैं ? हमारे सामंती समाज ने स्त्री को सिर्फ तीन नाम दिए हैं - पत्नी, रखैल और वैश्या। इसके अलावा वह किसी चौथे संबंध को स्वीकार ही नहीं करता।' और इन्हीं संबंधों की जंजीरों में जकड़ी नारी इन्हें तोड़ती है तो वह कुलटा बन जाती है।

कुछ दिन पहले क्लास में पढ़ाते -पढाते मैंने एक प्रश्न विद्यार्थियों से पूछा कि स्त्रियों को नौकरी नहीं करनी चाहिए। ऐसा कितने विद्यार्थी मानते हैं। कुछ लड़कों ने हाथ उठाया, एक ने गर्व से हाथ उठाया, दूसरे ने झिझकते हुए ऊपर हाथ उठाया कुछ आँखें नीचे किए अपनी स्वीकृति का संदेश देते रहे। पहले ने कहा मैं इतना कमाऊँगा कि उसे कमाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। वह घर संभाले और आराम से रहे। दूसरे ने कहा हमारे यहाँ औरतों से नौकरी करवाने का रिवाज नहीं है। मेरा मन तार-तार हो गया कि 'क्या यही शिक्षा का फल है।' आधुनिकता ने कपड़े पहनने के ढंग बदल दिए, खाने के स्वाद बदल दिए लेकिन सड़ी-गली मानसिकता के इन ऊबड़-खाबड़ रास्तों को ठीक न कर सका। मेरी ही ससुराल में भांजी को इंजीनियरिंग में एडमीशन लेना था, लेकिन 'हाईली एजूकेटेड फैमिली' में भी स्त्री को सजा मिली क्योंकि डोनेशन के सिर पर पैसा खर्च करने की अपेक्षा शादी में करें। लेकिन भांजे को लड़के होने का फायदा जरूर मिला।

बड़ौदा- अहमदाबाद में रास्तों पर बड़े अक्षरों में पोस्टरों में लिखा रहता है १५० रू. में गर्भपात। हमेशा इस सभ्य समाज को मुंह चिढ़ाते हुए नजर आते हैं। ये उदाहरण उस भारत के हैं जहाँ कहा गया है कि 'स्त्री हिब्रह्मा बभूविव'। जहाँ स्त्रियों का भी उपनयन संस्कार होता था। इसी भारत में लोपामुद्रा, उद्दालिका, गार्गी, मैत्रेयी, जैसी विदुषियाँ रही हैं। वह समाज आज प्रगति करके इस विचारधारा को प्राप्त हुआ है कि स्त्री मात्र पुरूष की संपत्ति है और उसे वह चाहे जैसे प्रयुक्त कर सकता है। एक फ्रांसिसि विद्वान चार्ल्स फरियन ने कहा है कि 'कोई देश कितना सभ्य है इसकी पहचान वहाँ की औरतों की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति से ही करनी होगी।... हम सीता, सावित्री के विषय में बहुत सुनते हैं। भारत में यह नाम पूजनीय है और शायद यह ठीक भी है परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अतीत का यह शोर खासतौर पर वर्तमान की कमियों को ढंकने के लिए और भारतीय औरतों की गिरी हुई दशा के मूल कारणों को नष्ट करने से रोकने के लिए किया जाता है।"[२]

स्त्री को 'देवी' बनाकर उसके आस-पास एक जाल बना दिया जाता है, जिसमें वह जकड़ कर रह जाती है। और इस बंधन में बंधी वह मात्र दूसरों पर दृष्टिपात करती रहती है न तो अपने को देख पाती है

❐ *व्याख्याता, हिन्दी विभाग, आनन्द आर्ट्स कालेज, आनन्द (गुजरात)*

और न अपनी स्थिति को, और न यह पुरूष प्रधान समाज इस 'देवी' की जयजयकार के अतिरिक्त कुछ नहीं करता। वह उसे देवी ही रखना चाहता हैं क्योकि अगर वह देवी से 'औरत' बन गई तो पुरूष प्रधान समाज का अस्तित्व संकट में पड़ जाएगा।

मुंशी प्रेमचंदजी की कहानियों में नारी के कई रूप हैं- कहीं तो वह बड़ी 'बोल्ड' है तो कहीं इतनी 'दब्बू' की चरणों की दासी बनी रहती है। लेकिन प्रेमचंद ने प्रेमयुक्त नारी के भावुक कोमल ह्दय की साधना को भी व्यक्त किया है तो उसके वैचारिक और स्वतंत्र अस्तित्व को भी उठाया है। 'स्वामिनी' की रामप्यारी जीवन से हताश घर की दीवारों से चिपकी सुख के रंगों को तलाशते तलाशते अपने सुख को वह 'जोखू' की आँखों में पा जाती है। एक विधवा नारी के प्यार और प्रेम के रंगों को बड़ी सुन्दरता से केनवास पर उतारा है। जहाँ जीवन की निराशा के गहरे काले रंग अचानक प्रेम के रक्तिम रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। सच भी है कि क्या नारी ह्दय के आकाश में प्यार के तारे नहीं टिमटिमातें ? जब चाँद का प्रकाश मध्मि हो जाए तो तारों की रोशनी में भी जीवन का बाग जगमगाने लगता है। बूढ़े चाँद के मध्मि प्रकाश की अपेक्षा जवाँ तारों का जगमग प्रकाश उसे भी खींचता है। 'नये विवाह' की आशा अपने बूढ़े पति की अपेक्षा से कम उम्र के जुगल की आँखों में उल्लास और प्रेम की लालिमा देख लेती है और मन उसे पाने को बेचैन हो जाता है। और वही आशा के पति लाला जब पहली पत्नी के बनाव श्रृंगार को देखते ही व्यंग्य में कहते हैं- 'वाह री तृष्णा....बाल खिचड़ी हो गए चेहरा धुले फलालेन की तरह सिकुड़ गया मगर आपको अभी सिंदूर मेंहदी और उबटन की हवस बाकी है।'[३] लेकिन लाला अपनी जवानी बनाए रखने के लिए रेसों और पार्कों को सेवन करते थे हफ्ते में दो बार खिजाब लगाते और एक डाक्टर से मंकीलेंड के विषय में पत्र-व्यवहार भी कर रहे थे।'[४]

नारी जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि वह पुरूष के लिए मात्र भोग्या रही है। अच्छी पत्नी में क्या गुण होने चाहिए उसके बारें में बहुत लिखा गया और बहुत चर्चा हुई। लेकिन एक अच्छे पति के क्या गुण होने चाहिए उसके पन्ने कोरे ही हैं। शास्त्र भी यही मानकर चलता है कि पुरूष होना ही उसका सबसे बड़ा गुण है। और स्त्री होना अपने आपमें एक पाप है। इसी कुंठा में जीने वाली स्त्री और उसे कुंठित करने वाला यह पुरूष समाज उसे एक साधन मात्र से ज्यादा कुछ नहीं समझता। 'पुरूष ने स्त्री के खून में यह भावना संस्कार की तरह कूट-कूटकर भर दी है कि वह सिर्फ शरीर है। वह शरीर के सिवा उसकी किसी पहचान से इनकार करता है और उसके लिए सुमुखी, पयोधरा, क्षीण-कीट, बिल्वस्तनी, सुभगा, भगवती है।'[५] और उसकी स्वतंत्रता तो शायद उसके पुरूषत्व पर एक चोट है। अपनी ही स्वतंत्रता के लिए लड़ना हर नारी के बस की बात नहीं है। 'नरक का द्वार' प्रेमचंद के स्त्री चरित्रों में एक बोल्ड स्त्री है। जो परंपरा के नाम पर उस थोपी मान्यता के भार को उतार फेंकना चाहती है।

'.... इस लोकप्रथा का बुरा हो जो अभागिनी कथाओं को किसी न किसी पुरूष के गले बांध देना अनिवार्य समझती है।[६] पिता से पुत्र तक की इस यात्रा में स्त्री के पंख क्या स्वतंत्रता के लिए नहीं फड़फड़ाते ? वह एक देह से ऊपर भी कुछ है। लेकिन वह रिश्तों में बंधी जीवन की डोर पर संभल कर तीरों से बींधती चली जाती है। बेटी, पत्नी और माँ आदि लेकिन हर सबंध मर्यादाओं के सांचे में ढला हुआ है। ज़रा हटी नहीं कि कुलटा बन जाती है।

'मेरा भी तो मन है उड़ूं पंख तोलूँ,
मुझे भी तो जीवन को जीने का हक है।
मेरे पंख काटो, न मुझको मिटाओ
कि बनकर चिरैया चहकने मुझे दो
मैं नन्हीं कली आज खिलने को आतुर
जरा फूल बनकर महकने मुझे दो।'[७]

वह चाहती है एक खुला आसमान लेकिन कटे पंखों से तड़पती छटपटाती है आहों से आसमान की सैर करती है। पुरूष की कैद से छूटी नारी अपने को स्वतंत्र मानती है और ये बात आज की नहीं है प्रेमचंद ने भी अपने स्त्री पात्रों में इस स्वतंत्रता के अहसास को भरा है। 'आज तीन दिन हुए मैं विधवा हो गई... मैंने चूड़ियां नहीं तोड़ी। क्यों तोडूं ? मांग में सिंदूर पहले भी नहीं डालती थी अब भी नहीं डालती। कोई मेरे गूंथे हुए बालों को देखकर नाक सिकोड़ता है, कोई मेरे आभूषणों पर

आंख मटकाता है,... मैं भी रंग-बिरंगी साड़ियां पहनती हूँ और बनती संवरती हूँ। मुझे जरा भी दुःख नहीं है। मैं तो कैद से छूट गई।'[८] और यह छटपटाहट उसे अपने अस्तित्व की तलाश के लिए विवश कर देती है। प्रेमचंद ने नारी हृदय के उस कोने को छू दिया है जो शायद परंपरा के नाम पर उसकी जबान पर कभी नहीं आया। इस दोहरी जिंदगी में हमेशा अपने आपसे लड़ती, अपने को खोजती वह कई बार तड़प कर रह जाती है। तो कई बार उसके दर्द की टीस आक्रोश बन कर चित्कार करती प्रतीत होती है।

लोपामुद्रा, गार्गी, की परंपरा का निर्वाह करने वाली स्त्री आज माात्र सेक्स का सामान बन कर रह गई है। पुरुष स्वतंत्रता के नाम पर उसके आचरण में स्वच्छंदता भर कर उसे लूट रहा है। शास्त्रार्थ करने वाली विदुषियाँ राज सत्ता को चलाने वाली नेत्रियाँ आसमान की ऊँचाइयों को छूने वाली नारी की सोच को बदल कर रख दिया है। इस पूंजीवादी सभ्यता ने आज के आधुनिक दौर में स्त्री की सोच का रूख उसके बाहरी सौन्दर्य की ओर कर दिया है। वह रंगीपुती अपने को 'मेन्टेन' करने में लगी रहती है। आज का उसका द्वन्द्व उसकी सोच पुरूष की इच्छानुसार उसकी देह तक सीमित है।

स्त्री की पहचान का दूसरा पहलू भी है जो उद्वेग आवेग से भरा है और कभी- कभी यह आवेग रचनात्मक न होकर विध्वंसात्मक हो जाता है। वह इसमें अपने आपको दुःखी करके दूसरों को दुःख देना चाहती है। मैं उन्हें लज्जित करना चाहती हूँ। मैं अपने मुंह में कालिख लगाकर उनके मुख में कालिख लगाना चाहती हूँ। '... मेरा नारीत्व लुप्त हो गया है। मेरे हृदय में प्रचण्ड ज्वाला उठी हुई है।'[९] प्रेमचंद ने स्त्री के मान-सम्मान उसके द्वन्द्व, दर्द को समझा, लेकिन वह कहीं उसकी स्वतंत्रता को 'नरक के द्वार' तक पहुँचा हुआ मान कर छोड़ देते हैं। लेकिन उन्होंनें स्त्री के प्रेम, ममता स्नेह के गुणों के आदर्शों को कभी नहीं तोड़ा 'सोहाग का शव' की शुभद्रा कहीं तो अधिक पतिव्रता है तो कहीं उसका नारी मन चित्कार भी उठता है '... क्या पुरूष हो जाने से ही सभी बातें क्षम्य और स्त्री हो जाने से सभी बातें अक्षम्य हो जाती हैं।'

नारी का विद्रोह समस्त समाज के प्रति है जिसने नारी को उसकी पहचान से हमेशा मुक्त रखा है। विवाह उसके जीवन की अंतिम परिणति नहीं, वैदिक काल की स्वतंत्र नारी आज पुरूष की छत्रछाया के दायरे में उसके पीछे-पीछे घसिटती-सी प्रतीत होती है। इसमें इतनी जकड़ी हुई है कि पुरूष की मौत के बाद उसे भी उसके साथ जलकर समर्पण का प्रमाण देना है। 'विडम्बना यह है कि नारी को अगर स्वतंत्र होना है तो उसे वेश्या बनने के सिवा कोई रास्ता नहीं है। तभी वह जी सकेगी।' और इस रास्ते पर वह जीवन भर अपने आपको और अपनों को कोसते-कोसते दम तोड़ देती है।

नारी अपने आपसे, अपने शरीर से अलग अपनी पहचान चाहती है। वह बेटी बनना चाहती है लेकिन मौन रहकर सिसकना नहीं चाहती, वह पत्नी बनना चाहती है, लेकिन बेडरूम के बिस्तर पर शरीर बनकर नहीं। माँ बनना चाहती है, लेकिन पुत्र के साये में बेबस बनकर जीना नहीं चाहती। वह अपनी नारी होने की पहचान के साथ जीना चाहती है।

सन्दर्भ सूची

१. भारतीय नारी संपा. प्रतिभा जैन, संगीता शर्मा (आदमी की निगाह में औरत ..... राजेन्द्र यादव) ...... पृ. ३३

२. नहीं मैं केवल नारी ..... इन्दिरा नूपुर .... पृ. ४७

३. भारतीय नारी जीवन की कहानियां ..... प्रेमचंद .... पृ. ४४

४. ,, ,, ,, ,, ,, ... पृ. ४४

५. भारतीय नारी जीवन की कहानियां-प्रेमचंद .... पृ. ३०

७. नहीं मैं केवल नारी ..... इन्दिरा नूपुर .... पृ. ५६

८. भारतीय नारी जीवन की कहानियां .... प्रेमचंद .... पृ. ५४

९. ,, ,, ,, ,, ,, ... पृ. ६३

संत साहित्य और नारी विमर्श

❒ डॉ. श्रीपति कुमार यादव

वैदिक कालीन नारी पुरूष की सहधर्मिणी थी। पुरूष के समस्त कार्यों में नारी का महत्वपूर्ण योगदान था। पत्नी के रूप में उसका उच्च स्थान था। उस काल में नारियाँ ब्रह्मवादिनी तक होती थीं। "जहाँ नारियों का सत्कार होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ इनका अनादर होता है, वहाँ सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। यही क्यों जिस कुल में ये शोकग्रस्त रहती हैं, वह कुल नष्ट हो जाता है, पर जहाँ इन्हें कष्ट शोक नहीं होता वह कुल बढ़ता जाता है।"[1] रामायण और महाभारत काल में नारी शक्ति, सम्मान, श्रद्धा, प्रेम, त्याग, सौन्दर्य आदि विविध गुणों की प्रतीक थीं।

आज भी हम नारी-जाति के विशिष्ट गुणों के प्रतीक रूप में प्राचीन नारियों का उल्लेख करते हैं। माता के रूप में कौशल्या, पत्नी, सीता और पतिव्रता के रूप में सीता, पार्वती, सावित्री, गान्धारी, धर्मपालन करने वाली सहधर्मिणी के रूप में पति के साथ दुःख सहने वाली शैव्या और दमयन्ती, शक्ति के रूप में दुर्गा, भक्ति के रूप में मीरा, वीरता के रूप में लक्ष्मीबाई आदि नारियाँ आज भी हमारे समाज को कर्तव्य, प्रेम, त्याग, वीरता की प्रेरणा दे रही हैं।

भारतीय समाज में नारी की विचित्र विरोधाभासमयी स्थिति रही है एक ओर उसे शक्ति, वैभव एवं ज्ञान की देवी कहा गया है, वहीं दूसरी ओर माया की प्रतीक, भक्ति, मुक्ति एवं ध्यान में बाधा उत्पन्न करने वाली बताया गया है। 'नारी' शब्द 'नृ' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है कि जो संसृति का नयन करती है, वह है नारी-'नृणाति नयति संसृतिम् इति नारी'। 'पुरि शेते पुरूष' अर्थात जो शरीर रूपी पुर (गाँव) में सोयें, निवास करे, वह पुरूष है। पुरूष और नारी के शरीर रचना में कुछ विशिष्ट भिन्नता है और वही विशिष्ट भिन्नता एक दूसरे का पूरक है। इन दोनों की सम्मिलित शक्ति एवं विकास ही पूर्ण मानव के अस्तित्व का द्योतक है।

कालान्तर में साधना के क्षेत्र में विकृतियाँ उत्पन्न हो गयी हैं। "शैवमत आगे चलकर अनेक संप्रदायों में विभक्त हो गया और कौल संप्रदाय में पंचमकारी साधना प्रारम्भ हुई, जिसमें मांस-मद्य के साथ मैथुन और मुद्रा को भी बढ़ावा दिया गया। इसी प्रकार बौद्ध संप्रदाय महायान, मन्त्रयान आदि के रूप में विकसित हुआ आठवीं नवीं शताब्दी में वज्रयान और सहजयान के रूप में परिणत हो गया।"[2] जनता की उदारता और उनके अंधविश्वास का लाभ उठाकर मंत्रयानियों ने धन संग्रह करना आरम्भ कर दिया। साधना के क्षेत्र में धन निश्चय ही व्याघात उपस्थित करता है। इसीलिए धन के प्रति अनाकर्षण साधकों के लिए आवश्यक माना गया है। मंत्रयानियों के ऊपर धन-संग्रह का कुत्सित प्रभाव पड़े विना नहीं रहा। धन-संचय की प्रवृत्ति ने समय पाकर विलासिता को जन्म दे दिया जिसका वड़ा भयावह परिणाम हुआ। वज्रयान तक प्रत्येक साधक के लिए एक महामुद्रा के सम्पर्क में रहना परमावश्यक समझा जाने लगा। साधक गुरू के निकट जाकर उनके आदेशानुसार किसी निम्नकुलोद्भव रमणी को अपनी महामुद्रा वना लेता था। तव से उसकी साधना उस महामुद्रा के सहवास में रहकर ही चला करती थी और दोनों की मनोवृत्तियों में पूरी साम्यावस्था लाने के प्रयत्न भी होते रहते थे और इन कामोपभोगों की क्रिया को सिद्धि प्राप्त करने का साधन मानते थे। उसका प्रभाव समाज पर क्या पड़

❒ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, साहू जैन पी. जी. कालेज नजीबाबाद, बिजनौर (उ. प्र.)

सकता था, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। वज्रयानी सिद्ध वासना की पंकिल भूमि में फंसते जा रहे थे किन्तु उनमें कुछ ऐसे साधक अवश्य थे जो सफल साधकों की कोटि में रखे जा सकते हैं। ऐसे ही साधकों में चौरासी सिद्धों की गणना की जा सकती है। सरहपा ने प्रचलित उन सभी साधनाओं पर प्रहार किया जो वाह्याडंबर के शिकार होकर दूषित मनोवृत्ति को प्रश्रय दे रहे थे। उनका यह प्रहार उस प्रकार कठोर था जैसा प्रहार आगे चलकर निर्गुण धारा के सूत्रधार संत कबीर साहब ने प्रचलित मान्यताओं के प्रति किया था। सरहपा ने वज्रयानियों की कमल और कुलिश वाली प्रचलित साधना के 'सुरति विलास' को एक साधन मात्र ठहराया। उनके अनुसार 'सुरति विलास' कभी भी साधक का अन्तिम लक्ष्य नहीं हो सकता।

वस्तुतः धार्मिक क्षेत्र में नारी को विलास का साधन बना दिया गया। प्रायः सामाजिक राजनीतिक क्षेत्र में भी नारी के कामिनी रूप को ही बढ़ावा दिया गया। हिन्दी साहित्य के आदिकालीन ग्रंथों में किसी न किसी सुन्दर युवती को प्राप्त करने हेतु युद्धों का वर्णन मिलता है। मुस्लिम बादशाहों को विलासमयता के बारे में अबुल फजल ने लिखा है- "बादशाह के हरम में लगभग पाँच हजार स्त्रियों का काफिला रहता था जिसकी देखभाल के लिए अलग से स्त्री अधिकारियों का एक बड़ा समुदाय रहता था। मुगल बादशाहों के महल बहुमूल्य अलंकरणों से सजाएं जाते थे। स्त्रियाँ विविध प्रकार के बहुमूल्य वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित रहती थीं। संपूर्ण वातावरण, इत्र की मादक सुगंध से परिपूर्ण रहता था। संपूर्ण परिवेश पाशविक एन्द्रिय भोग का केन्द्र बना हुआ था। रूप के बाजार लगते थे। बेगमों के अतिरिक्त रक्षिताओं, वेश्याओं और दासियों के समूह राजकीय वासनामय जीवन में उद्दीपन का कार्य करते थे।"

अतः बादशाह का जीवन बहुत अनियंत्रित और विलासपूर्ण होता था तथा अमीर-उमरा लोग इस क्षेत्र में अपने-अपने मनसब के अनुसार बादशाह का अनुकरण करना अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझते थे। 'न केवल मुगल बादशाह अपितु अमीर, उमराओं के भी बड़े-बड़े हरम (अन्तःपुर) होते थे। जिनमें सैकड़ों हजारों स्त्रियाँ निवास करती थी।'[3] यहाँ एक ऐसी परिस्थिति उपस्थित कर दी गयीं थीं कि वेश्याएँ नित्य रेशमी वस्त्र फाड़ा करती थीं और पवित्र नारियों के लिए फटा चिथड़ा नसीब नहीं हो पा रहा था। नैतिक दृष्टि से समाज अधोगति को पहुँच चुका था। मुगल शासकों के यहां हिन्दू स्त्रियाँ वासना को मिटाने के लिए बलपूर्वक ले जायी जाती थीं। विवाह जाति-कुजाति में संपन्न कराया जाता था। जहाँ पर गुणी लोगों को कुछ प्राप्त नहीं होता था, वहाँ वेश्यागामी भुजंगों को गौरव मिलता था। नारी का केवल कामिनी रूप ही दिखाई दे रहा था।

मध्यकाल में नारी के प्रति जो विलासमय भावना थी, उसके परिणामस्वरूप ही संतों और भक्तों की वाणियों में नारी-निन्दा देखने को मिलती है। समाज जिस रूप में नैतिक पतन की तरफ बढ़ रहा था उसे नियंत्रित करने हेतु संतों ने साधको के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अनिवार्य कर दिया। संत साहित्य में सर्वत्र ब्रह्मचर्य का महत्त्व बतलाया गया है। संतों में नारी-निन्दा की परम्परा बहुत ही प्रचीन है, इस परम्परा का आरम्भ सिद्ध कवियों से हुआ। सिद्धों से आरम्भ होकर जैन तथा नाथ पंथियों के साहित्य में परिपोषित होती हुई, यह परम्परा हमारे संत कवियों में दृष्टिगत होती है। गोरखनाथ ने भी नारी के कामिनी रूप की निन्दा की है परन्तु गोरखनाथ तक नारी-निन्दा का वह रूप दृष्टिगत नहीं होता है जो केवल कुछ ही वर्षों के बाद कबीर में उपलब्ध होता है। कबीर, दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास, दरियादास एवं पलटू साहब इत्यादि संतों की परम्परा में होने वाली महिलाओं ने नारी के विषय में कुछ नहीं लिखा। बावरी साहिबा, दयाबाई, सहजोबाई एवं सुवचन दासी इत्यादि का साहित्य नारी विषक किसी भी प्रकार

के उल्लेख से शून्य हैं। उन्होंने नारी की न निन्दा की है न प्रशंसा।

सिद्धों की तामसिक साधना एवं उनके मद्य, मांस, मैथुन आदि उपादानों के विरूद्ध जो क्रांति प्रादुर्भूत हुई वह नाथ पंथ के माध्यम से हमें संत साहित्य में देखने को मिलती है। कबीर मनुष्यों को संबोधित करते हुए कहते हैं-कनक और कामिनी देखकर तू मत भूल क्योंकि इनके मिलने तथा बिछुड़ने में उसी प्रकार कष्ट होता है जैसे केंचुली के आने और जाने में सांप को कष्ट होता है। सांप और बिच्छू के जहर को दूर करने के लिए वैद्यों की राय है कि यदि आदमी जहर खा ले तो उसे दवा खिलाकर वमन द्वारा गिराया जा सकता है परन्तु यदि मनुष्य विकट नारी के संपर्क में आ गया तो वह उसके कलेजे को काढ़कर खा जाती है।[४] संतों की यह निन्दा नारी के उस रूप की है, जो वासनाओं को उद्दीप्त करती है। कबीर आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहते हैं कि 'नारी की (एक विशेष परिस्थिति में) परछाई पड़ने से सर्प भी अंधा हो जाता है। उस मनुष्य की क्या गति होगी जो दिन-रात नारी के साथ ही रहता है।'[५] संत पलटू अस्सी वर्ष की बूढ़ी स्त्री पर भी विश्वास नहीं करते।[६] पलटू से दो कदम आगे बढ़कर कबीर ने कहा कि 'अगर अपनी ही माता हो तो भी एकांत में उसके पास मत बैठो।'[७] कबीर के समय में मुस्लिम शासक एवं अमीर-उमरावों में जो पर स्त्री के प्रति वासनात्मक भावना उद्दीप्त हुई थी उसी पर अंकुश लगाने का प्रयास करते हुए उन्होंने कहा-पर स्त्री तेज धार वाली छुरी के समान होती है। पर स्त्री के कारण ही रावण जैसे प्रतापी एवं बुद्धिमान को दसों सिर गँवाना पड़ा।[८] संत पलटू ने एक रूपक बांधते हुए कहा है- 'संसार तरबूज के समान है, रूपवती नारी छूरी तथा उसका नेत्र शेर के पंजा सदृश्य है।'[९]

नारी के बाह्य रूप पर ही जोर देने के कारण समाज में उसके गुणों की प्रतिष्ठा न रह गयी। उसका कार्य केवल पुरूषों को रिझाना रह गया, समय का नव-निर्माण नहीं। यह युगीन प्रवृत्ति का दोष था सिद्धान्त का नहीं। कबीर ने नारी को काली नागिन[१०], नरक का कुंड[११], सर्पिणी[१२], संत दादू ने नागिन, राक्षसी, बाघिन[१३], संत सुन्दरदास ने विष की बेल[१४] बतलाया है। संत दादूदयाल ने कामिनी स्त्री को आँखों से देखना, मुंह से उसका नाम लेना तथा कान से उसकी वाणी को न सुनने तक की बात कही है।[१५] संत मलूक ने कहा है कि रूपवती स्त्री को देखने मात्र से वह नेत्र से चोट करती है उस चोट का निवारण परमब्रह्म परमात्मा से ही संभव है।[१६] डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थवाल खेद प्रकट करते हुए कहते हैं कि "केवल स्त्री जाति को ही इन संतों द्वारा हानि पहुँचती है। सभी युगों व देशों के निवृत्तिमार्गियों का यह नियम रहा है कि वे स्त्री व धन की निन्दा करते आये हैं और इस प्रकार वैराग्य की उस भावना को जागृत करते रहे हैं जो निर्गुणियों को भी स्वीकार है। कबीर ने स्त्रियों को नरक का कुंड बतलाया है, पलटू को अस्सी वर्ष की स्त्री का विश्वास नहीं और यह बात खटकती है। दुःख की बात है कि स्त्रियों में इन लोगों ने केवल भोले भाव को ही देखा है, उनके आध्यात्मिक आदर्श की ओर से आँखें मूंद ली है जिसे उन्होंने उस शाश्वत प्रेमी की भार्याएं बनकर स्वयं अपनाने का विचार किया है। इसमें संदेह नहीं कि स्त्रियों के केवल यौन भाव वाले अंश को ही उन्होंने गर्हित माना है, किन्तु स्त्रियों में केवल यही भाव सब कुछ नहीं है और न पुरूष ही इस भाव से रहित हैं।[१७]

संत सुन्दरदास ने 'नारी निन्दा को अंग' में कामिनी स्त्री को सघन वन के समान माना है, जहाँ जाने पर आदमी अपना मार्ग भूल जाता है। उसकी चाल गज की है, कमर सिंह जैसी है, उसकी वेणी के बाल काली नागिन के समान है, कुच हिमालय पर्वत के समान है जहाँ काम रूपी चोर निवास करता है। जैसे अंग-प्रत्यंग वाली नारी जब नेत्र रूपी ए.के. सैंतालिस से वार करती

है तो पुरूष का प्राण हर लेती है।[१८] अतः निश्चय ही संतों ने उक्त हाव-भाव वाली स्त्री से दूर रहने की चेतावनी दी है। सुन्दरदास ने एक अन्य स्थान पर लिखा है कि कामिनी का सौन्दर्य बड़ा मोहक एवं आकर्षक होता है। वस्तुतः तथ्य इसके प्रतिकूल है। नारी का वाह्याकार भले ही मोहक तथा आकर्षक हो पर उसका अन्तिम परिणाम है श्मशान की भीषण ज्वालाएँ । इतना सौन्दर्य, इतना आकर्षण, इतनी मोहकता तथा इतनी कोमलता सब कतिपय क्षणों में अग्नि की लपटों में विसर्जित हो जाती है और शेष रह जाता है अस्थियों का समूह। यदि विचार पूर्वक देखा जाय जो स्पष्ट है कि यह शरीर मल, मूत्र, थूक आदि का आगार है। कामिनी का अंग-प्रत्यंग यहाँ तक कि उसका रोम-रोम मलिन तथा अशुद्ध है। हाड़, मांस, मज्जा, चर्बी से लिपटे हुए तथा खून से सने हुए शरीर का सौन्दर्य कैसा ? मल, मूत्र से पूरित तथा विविध विकारों से युक्त उदर को ध्यान पूर्वक देखा जाय तो विष्टा का भंडार है जिसकी प्रशंसा नख-शिख समुदाय करता रहता है -

कामिनी को अंग अति, मलिन महा अशुद्ध,
रोम रोम मलिन, मलिन सब द्वार है।
हाड़ माँस मज्जा मेद, चाम सूँ लपेटि राखै,
ठौर ठौर रक्त के, भरेई भंडार हैं।।
मूत्रहू पुरीष आँत, एकमेक मिलि रही,
और ही उदर माहिं, विविध विकार हैं।
सुन्दर कहत नारी, नखसिख निन्दा रूप,
ताहि जो सराहै सो तौ, बड़ोई गँवार है।।[१९]

संतों ने नारी को नरक का कुंड तथा उसका अंग-प्रत्यंग अत्यन्त मलीन कहा है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे नारी-निन्दक थे। उन संतों के समकालीन हिन्दू तथा मुसलमान रजवाड़े, जमींदार आदि अधिकतम् विषय लंपट थे। वे स्त्री को अपना क्रीड़ा-कंदुक समझते थे। वे उन विषयी लोगों को नारी का वीभत्स रूप एवं नारी-निन्दा विषयक उपदेश देकर स्त्रियों को उनके चंगुल से छुड़ाना चाहते थे। उन्हें तो पता था ही 'एक बूंद से सृष्टि रचि है, कौ बाम्हन कौ सूद्रा'[२०] कहीं-कहीं पर संतों ने माया के रूप भी स्त्री को माना है। कबीर ने कहा है 'माया महा ठगिनी हम जानी' माया ठगिनी है इसको हम जानते हैं। तमो गुण, रजोगुण तथा सतोगुण का त्रिगुण फांस लेकर डोलती है और अत्यन्त ही मीठी वाणी बोलती है। यह विष्णु के घर लक्ष्मी, शिव के घर पार्वती, पंडा के घर मूर्ति, तीर्थ में पानी, योगी के घर में योगिनी, राजा के घर में रानी बनी बैठी है। यह माया किसी के घर में हीरा बन गयी किसी के घर में कानी कौड़ी, भक्तों के घर में भक्तिन बनकर, साधु-सन्यासियों के आश्रमों में साधुनी बन कर बैठ गयी।[२१] कबीर विरक्त थे इसलिए स्त्रियों को उन्होंने माया कहा है। प्रायः यह देखने को मिलता है कि साधक स्त्रियों की संगत में फिसल कर अपनी साधना से पतित हो जाते हैं। यही कथन साधिका-साधुनियों को पुरूषों पर लगा लेना चाहिए। उनके लिए पुरूष ही माया बन सकते हैं। अभिप्राय यह है कि जिसमें जीव भूल जाय वह सब माया है। माया का अंत दुखदाई होता है। सीता स्वर्ण मृग पर भूल गयीं। लक्ष्मण के लाख मनाने पर न मानीं, वह मृग ही सीता के लिए माया है तथा वही दुख का कारण बना। रावण सीता पर भूल गया। सीता रावण के लिए माया तथा उसके सर्वनाश का कारण बनी। इस प्रकार से माया से विरत रहने का उपदेश संतों ने हमें दिया है।

संतों ने कामिनी स्त्री को साधना के क्षेत्र में अपदस्थ करने का साधनादि माना है। इसीलिए उन्होंने उससे दूर रहने की बार-बार चेतावनी दी है। संतों ने कामिनी के जिस रूप को अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है निश्चय ही वह नारी से विलग रहने के दृढ़ विचार को व्यक्त करते हैं। इस तथ्य में संदेह नहीं कि नारी की चाहे जितनी निन्दा संतों ने की हो उनकी स्त्री-पुरूष के लिए समदृष्टि भी रही है। कबीर कहते है कि नर-नारी सभी नरक हैं। जब तक शरीर में सकाम

भाव हैं तब तक दोनों ही निन्दनीय है। निष्काम भाव से ईश्वर का स्मरण करने पर सभी प्रभु के हो जाते हैं।[२२] नारी एवं पुरूष पर अपनी समदृष्टि का परिचय देते हुए संत दादू दयाल ने कहा है नारी और पुरूष परस्पर बैरी हैं।[२३] क्योंकि कामी पुरूष एवं कामिनी स्त्री एक दूसरे के प्रति वासना उद्दीप्त करते हैं। 'एक सही सबके उर अंतर'[२४] कहकर सुन्दरदास ने आध्यात्म के धरातल पर स्त्री-पुरूष को अभेद माना है। इस परिस्थिति में कोई निन्दनीय नहीं होता। विभिन्न संप्रदाय वालों ने पुरूष को श्रेय तो दिया किन्तु स्त्रियों के अधिकार को भी चुनौती दी। स्त्रियाँ वेद मंत्र एवं गायत्री मंत्र नहीं पढ़ सकतीं। वे पुरूषों के साथ मस्जिद नहीं जा सकतीं, कितने मत वालों ने उन्हें मुक्ति की अधिकारिणी भी नहीं माना। इस समस्या के विरोध में आज से छः सौ वर्ष पहले कबीर ने आवाज उठाई थी - 'वेद कितेब दीन औ दोजख, को पुरूष को नारी'[२५] कबीर ने कहा कौन पुरूष है और कौन नारी? दोनों के शरीर में केवल कुछ अंगों की रचना में अंतर है। इस अंतर की भिन्न मर्यादाएं रखना ठीक है परन्तु दोनों मनुष्य हैं। इसीलिए दोनों हर दिशा में उन्नति करने के हकदार हैं। संत सिंगा जी ने कहा है - 'नर नारी में देखिले, सब घट में एक तार'[२६] जब पुरूष-स्त्री सबमें एक ही तार है तो फिर भिन्नता कैसी ? 'जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा'[२७] कहकर कबीर संसार के सभी स्त्री-पुरूष में एक ही रूप का दर्शन करते हैं। स्त्री और पुरूष तो केवल शरीर के लक्षण हैं। उनके मूल लक्षणों में कोई अन्तर नहीं है।

डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल का कथन है कि "निर्गुणियों ने स्वयं माना है कि पुरूष भी स्त्री के लिए उसी प्रकार बन्धन स्वरूप है जिस प्रकार स्त्री पुरूष के लिए हो सकती है। फिर भी यह उल्लेखनीय है कि उन्हें स्त्रियों के व्यक्तित्व से कोई दोष न था क्योंकि उनके अनुसार वह भी पुरूष की ही भांति ईश्वर की सृष्टि है। इसके विपरीत स्त्रियों को इस बात के लिए उनका ऋणी होना चाहिए कि उन्होंने उनके लिए भी भक्ति का द्वार खोल दिया है। निर्गुणियों ने स्त्रियों को अपने शिष्य रूप में भी स्वीकार किया था।"[२८]

संत कवियों ने जहाँ एक ओर नारी के भोगमय एवं वासनापूर्ण स्वरूप की निन्दा की है, उसे अविद्या का प्रतीक माना है वहीं दूसरी ओर उसके कल्याणकारी एवं पतिव्रता रूप की प्रशंसा भी की है। संत कवियों ने नारी के उस रूप का समर्थन किया है, जो पुरूष को सत्कार्य धर्म की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है। कबीर ने स्पष्ट रूप से कहा है कि नारियों की निन्दा नहीं करनी चाहिए क्योंकि नारी से ही ध्रुव और प्रहलाद जैसे भक्त पैदा हुए हैं।[२९] वे मैली, काली, कुरूप पतिव्रता नारी की प्रशंसा करते हुए थकते नहीं हैं।[३०] पतिव्रता नारी पति में आशा एवं विश्वास कर सदैव उसका नाम स्मरण करती है। उसके अतिरिक्त अन्य की तरफ देखती भी नहीं।[३१] संतों की दृष्टि में पतिव्रता नारी ही समाज का आदर्श है। संत दादूदयाल ऐसी पतिव्रता स्त्री की सराहना करते हैं जो पति सेवा एवं आज्ञा पालन में रत हो।[३२] भारतीय संस्कृति में पतिव्रता स्त्री के लिए पति ही सबकुछ माना गया। इसका उदाहरण संत सुन्दरदास ने कुछ इस प्रकार बतलाया है - पतिव्रता को पति से प्रेम रखना चाहिए, पति से ही क्षमा मिल सकती है, पति ही यज्ञ, योग, रस, भोग आदि हैं। पति के द्वारा ही शोक का निवारण संभव है। पति ही ज्ञान, ध्यान, पुण्य, दान है। पति ही तीर्थ स्थान है। पति के बिना मुक्ति भी संभव नहीं है।[३३] ऐसी पतिव्रता स्त्री के पति को भी परमेश्वर बनना पड़ेगा। मारवाड़ वाले दरिया साहब ने स्पष्ट शब्दों में नारी की प्रशंसा की है, उसे जगत की जननी तथा पालन-पोषण करने वाली बताया है और ऐसे लोगों को मूर्ख कहा है जो नारी-निन्दा करते हैं।[३४]

आज की किशोरियां जो भारतीय शुद्ध वातावरण में उत्पन्न एवं पोषित हुई हैं, अपेक्षाकृत ठीक हैं। वे आस्तिक हैं तथा विवाहित होकर अपने पतिव्रत धर्म का

पालन करती हुई गृह कार्यों का संपादन करती हैं, अपने सास-ससुर तथा वृद्ध जनों का आदर करती हैं। किन्तु पाश्चात्य आचार पद्धति को अपनाने वाली वैसा करने में अपना अपमान समझती हैं। वे रात-दिन शरीर की साज-सज्जा, आभूषण और सौन्दर्य-प्रसाधन आदि से आकर्षक वेश-भूषा बनाने में व्यस्त रहती हैं। ऐसी स्त्रियाँ परिवार के सास-ससुर, जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी इत्यादि के साथ संयुक्त परिवार में रहना नहीं पसन्द करतीं बल्कि वे पति के साथ 'खाओ-पियो और मौज करो' की सभ्यता को अंगीकार करती हैं। इस प्रकार से वर्तमान समय में एकल परिवार की संस्कृति विकसित हो रही है। संत भारतीय संस्कृति के पोषक एवं संयुक्त परिवार के हिमायती थे। संत पलटू साहब ने पतिव्रता स्त्री के लक्षणों को निर्धारित करते हुए कहा है -

पतिबरता के लच्छन सब से रहै अधीन।।
सब से रहै अधीन टहल वह सबकी करती।
सास ससुर औ ससुर ननद-देवर से डरती।।
सब का पोषन करै सभन की सेज बिछावै।
सब को लेय सुताय पास तब पिय के जावै।।
सूतै पिय के पास सभन को राखै राजी।
ऐसा भक्त जो होय ताहि की जीती बाजी।।
पलटू बोलै मीठे वचन भजन में है लौलीन।
पतिबरता के लच्छन सब से रहै अधीन।।[३५]

संदर्भ साहित्य

१. मनुस्मृति ३/५२-५७
२. डॉ. वासुदेव सिंह, हिन्दी संत काव्य समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. २८३
३. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, भाग-२, पृ. ६८३
४. श्री अभिलाषदास, कबीर दर्शन, पृ. १६२, कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद
५. संपा. श्री प्रकाशमणि नाम साहेब, साखी ग्रंथ, पृ. २३३/८, कबीर कीर्ति मंदिर, काशी
६. पलटू साहब की बानी, भाग-३, पृ. ७८/१२७, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
७. साखी ग्रंथ, पृ. २३६/४२
८. साखी ग्रंथ, पृ. २३५/३२
९. पलटू साहब की बानी, भाग-३, पृ. ७८/१२९
१०. संपा. डॉ. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ. ३०/१, ना.प्र.स. काशी
११. संपा. डॉ. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ. ३१/१५, ना.प्र.स. काशी
१२. साखी ग्रंथ, पृ. २३५/२६
१३. संपा. आ. परशुराम चतुर्वेदी, दादू ग्रंथावली, १४४/१५०, ना.प्र.स. काशी
१४. सुन्दर विलास, पृ. ४७/२, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
१५. दादू ग्रंथावली, पृ. १४५/१५२
१६. मलूकदास की बानी, पृ. ३६/७३, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
१७. डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृ. ३२२
१८. सुन्दर विलास, पृ. ४६/१
१९. सुन्दर विलास, पृ. ४७/४
२०. बीजक, व्याख्याकार अभिलाषदास, पारख संस्थान, इलाहाबाद, पृ. ७८१/७५
२१. बीजक, व्याख्याकार अभिलाषदास, पारख संस्थान, इलाहाबाद, पृ. ७११/५६
२२. कबीर ग्रंथावली, ३१/७
२३. दादू ग्रंथावली, २४६/१६
२४. सुन्दर विलास, ७१/४
२५. बीजक, पृ. ७८१/७५
२६. संतकाव्य, पृ. २७/१
२७. बीजक, पृ. ८८५/६७
२८. डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृ. ३२८
२९. कबीर बानी, भाग-१, पृ. ६७
३०. साखी ग्रंथ, पृ. १७६/३
३१. साखी ग्रंथ, पृ. १७६/५
३२. दादू ग्रंथावली, पृ. ६६/३३
३३. सुन्दर विलास, पृ. ७२/६
३४. दरिया साहब (मारवाड़ वाले) की बानी, पृ. ४३
३५. पलटू साहब की बानी, भाग-१, पृ. ४६/१०७

वेद एवं विज्ञान की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

❑ डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

वेद भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं विश्व साहित्य का अजस्र स्रोत होने के साथ ही साथ विश्व ज्ञान-विज्ञान से भी परिपूर्ण हैं। वेद न केवल ज्ञान का कोष हैं, अपितु विज्ञान का अक्षय निधि हैं। वेद अध्यात्म विद्या से लेकर भौतिक विद्या तक फैले ज्ञान के विविध क्षेत्रों में प्राप्त बौद्धिक उत्कर्ष का भण्डार हैं। वेद में अन्तर्विषयीय अध्ययन की अपार क्षमता है। इसने साहित्य एवं दर्शन, व्याकरण एवं भाषाशास्त्र, तकनीकी विज्ञान एवं ललित कलाओं के क्षेत्र में व्यापक योगदान किया है। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, वास्तु विज्ञान, सैन्य विज्ञान, कृषि विज्ञान, वृष्टि विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, गणित, ज्योतिष, भूगोल तथा खगोल आदि क्षेत्रों में बहुत पहले ही संस्कृत में अनेक अनुसंधान कर लिये गये थे। अतएव वेदों में प्रायः सभी वैज्ञानिक विषयों का ज्ञान सन्निविष्ट है। प्राचीन काल में ही इस तथ्य को स्वीकार करते हुए मनु ने कहा था -

"सर्वज्ञान मयो हि सः"

भौतिक विज्ञान (फिजिक्स) के क्षेत्र में वैदिक संहिताओं का अनुपम योगदान है। अथर्वा ऋषि को विश्व का प्रथम वैज्ञानिक होने का गौरव प्राप्त है। ऋषि अथर्वा ने ऊर्जा (इनर्जी) के क्षेत्र में अग्नि से सम्बन्धित आविष्कार किये थे। यजुर्वेद में वर्णित तथ्यों के आधार पर सर्वप्रथम अरणि नामक वृक्ष की लकड़ियों के घर्षण से ऋषि अथर्वा ने अग्नि को उत्पन्न किया था। 'ऋग्वेद' में भी अरणियों के घर्षण[२] एवं प्रस्तरखण्डों[३] के घर्षण से उत्पन्न अग्नि का उल्लेख किया गया है। इस अग्नि का यज्ञ में सर्वप्रथम प्रयोग अथर्वा ऋषि के पुत्र दधीचि ऋषि ने किया था।[४] ऋषि अथर्वा ने भूगर्भीय अग्नि का भी आविष्कार किया था। 'ऋग्वेद'[५] 'यजुर्वेद'[६], तथा 'तैत्तिरीय संहिता'[७] में उत्खनन से भूगर्भीय अग्नि को निकाले जाने का उल्लेख किया गया है। 'ऋग्वेद्' तथा 'यजुर्वेद' में भूगर्भीय अग्नि के लिए 'पुरीष्यासो अग्नयः'[८] शब्द का प्रयोग किया गया है। भूगर्भीय अग्नि वाचक पुरीष्य पद का बहुवचनान्त प्रयोग यह सिद्ध करता है कि पुरीष्य अग्नि शब्द के द्वारा भूगर्भीय प्रज्वलनशील सभी पदार्थों जैसे- पेट्रोल, कैरोसिन तेल, गैस आदि की भी गणना होती है।[९] 'यजुर्वेद'[१०] में इन ज्वलनशील पदार्थों की उच्च प्रज्वलनशीलता का विस्तार से वर्णन किया गया है।

विद्युत (इलैक्ट्रिकसिटी) के क्षेत्र में भी अथर्वा ऋषि का आविष्कार महनीय है। जलघर्षण जन्य जलीय विद्युत के आविष्कार का उल्लेख बहुत पहले ही वैदिक वाड़मय यथा - 'ऋग्वेद्'[११] 'यजुर्वेद्'[१२] 'सामवेद'[१३] एवं 'तैत्तिरीय संहिता'[१४] में प्राप्त होता है। ऋषि अथर्वा ने सरोवर के जलमन्थन से जलीय विद्युत का आविष्कार किया था। 'यजुर्वेद'[१५] एवं 'अथर्ववेद'[१६] के अनुसार अग्नि जलीय उष्मा या अग्नि ही है-

"अग्ने पित्तम् अपामसि।"

ऋषि भारद्वाज एवं ऋषि अगस्त्य का भी विज्ञान के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान है। ऋषि भारद्वाज के आश्रम के निकट विज्ञान संकाय उनके वैज्ञानिक होने का प्रबल एवं पुष्ट प्रमाण है। ऋषि अगस्त्य की रचानाओं में अगस्त्य संहिता का नाम आता है जो बिल्कुल विशुद्ध विज्ञान का वर्णन करता है। इसमें विद्युत के लिए बैटरी

❑ रीडर एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पुखरायाँ (कानपुर देहात)

बनाने की विधि बतायी गयी है -

संस्थाप्य मृण्मये पात्रे ताम्रपत्रं सुसंस्कृतम्।
छादयेच्छिखिग्रीवेन चाद्राभिः काष्ठपांसुभिः।।
दस्तालोष्टो निधातव्यः पारदाच्छादितस्ततः।
संयोगाज्जायते तेजो मैत्रावरूण संज्ञितम्।।
-अगस्त्य संहिता

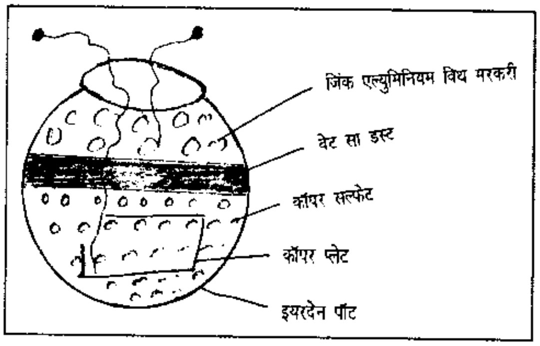

अर्थात मिट्टी के बर्तन में (मृण्मये पात्रे-इयरदेन पॉट) कॉपर प्लेटों को (ताम्रपात्रं-कॉपर शीट) सुव्यवस्थित रखकर कोयले के चूर्ण या तूतिया या नीला तुत्थ (शिखिग्रीवेन-सल्फेट ऑफ कॉपर, ब्लू वाइटल) तथा भिगी लकड़ी के बुरादे से क्रमशः आच्छादित कर (आद्राभिः काष्ठपांसुभिः-वुड सा डस्ट) तत्पश्चात् उस पर जस्ता चूर्ण (दस्तालोष्ठ-जिंक) फैलाकर तथा उसे भी पारा से (पारद-मरकरी) ढककर सेलों (मित्रा-पॉजिटिव एवं वरूण-निगेटिव) से परस्पर जोड़ देने से विद्युत उत्पन्न होती है। जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है। ऋषि अगस्त्य ने कई हजार वर्ष पूर्व ही विद्युत के लिए बैटरी बनाने की विधि की खोज की थी। इस पद्धति का अनुकरण कर सन् १८०० ई. में एलिसेन्ड्रो वोल्टा ने प्रथम बार विद्युत के लिए बैटरी बनाने का श्रेय प्राप्त किया। अतएव भौतिक वैज्ञानिक डेनियल और लेक्सलांची ने जिस सेल का निर्माण किया था। उस सेल को बनाने की विधि कई हजार वर्ष पूर्व अगस्त्य ऋषि द्वारा प्रणीत 'अगस्त्य संहिता' में प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में सौ सेलों को जोड़कर बैटरी बनाने की विधि, जल-विच्छेदन तथा गैस बनाने की विधि एवं उदान अर्थात हाइड्रोजन गैस के उपयोग से विमान बनाने की विधि का वर्णन किया गया है। -

वायुबन्धक वस्त्रेण निबद्धो यानमस्तके ।
उदान स्वलघुत्वे विभर्त्याकाशयानकम्।।
-अगस्त्य संहिता-शिल्पशास्त्र सारः

अर्थात उदानवायु (हाइड्रोजन गैस) जो ऊपर की ओर उठती है। उसको किसी चादर में बाँधकर यान के मस्तक पर बाँध दिया जाय तो वह उसको ऊपर लेकर आकाश में उड़ जाती है।

इसी प्रकार २४०० ई. पू. में भारद्वाज ऋषि द्वारा रचित 'यन्त्रसर्वस्व' नामक ग्रन्थ में भी वायुयान बनाने की विधि का सविस्तार वर्णन किया गया है। आधुनिक युग में इस पद्धति का अनुकरण कर वैज्ञानिक राइटब्रदर्स ने १७ दिसम्बर सन् १६०३ को वायुयान का अविष्कार किया था।

भौतिक विज्ञान में ऊर्जा मूल रूप में एक ही है। जो रूपान्तरित होकर विद्युत ऊर्जा, गतिज ऊर्जा और स्थितिज ऊर्जा आदि विविध रूपों में अभिहित होती है। भारतीय दार्शनिक आचार्य कपिल मुनि के अनुसार[१६] सत्वगुण स्वरूपतः प्रकाशकारी एवं सुखकारी होता है। वह वस्तुओं को सहजसिद्ध अवस्था में प्रकाशित करता है। रजोगुण स्वभावतः चंचल होता है। वह वस्तुओं को क्रियाशील एवं उनमें प्रवृत्ति उत्पन्न करता है। तमस् भारी होने के कारण गतिशील वस्तुओं की गति क्रिया का निरोधक होता है। इनके अनुसार एक समय एक ही गुण अपनी क्रिया सम्पन्न करता है शेष दो उसके सहायक होते हैं। तीनों गुण एक ही क्रियाशील शक्ति प्रकृति के विविध व्यापार हैं जो मूलतः न तो उत्पन्न होते हैं और न ही नष्ट। बल्कि वे दूसरे पदार्थों में रूपान्तरित होते हैं। भौतिक विज्ञान के ऊर्जा संरक्षण का

यह सिद्धान्त 'यजुर्वेद' में प्राप्य है।[18] जिसके अनुसार नश्वर जगत में अग्नि अर्थात ऊर्जा नियत है अक्षय है। क्योंकि ऊर्जा में वयस्[19] है। आंग्लभाषा में वयस् के लिए पोटेन्शियल इनर्जी शब्द का प्रयोग किया गया है। 'ऋग्वेद्' के अनुसार अग्नि अर्थात ऊर्जा 'पुरुरूप' है।[20] शब्द रूप प्रकाश एवं गति आदि स्वरूपों को धारण करने के कारण अग्नि को 'विश्वरूप' कहा गया है।[21] ऊर्जा के समूह रूप में गमन करने के कारण उसे 'संहत' पुंजीभूत भी कहा गया है।[22] प्रसिद्ध आधुनिक वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि द्रव्य और ऊर्जा न तो नष्ट होते हैं और न ही उत्पन्न केवल रूपान्तरित होते हैं। प्रत्येक पदार्थ में उसके द्रव्यमान के कारण उसमें ऊर्जा होती है। ऊर्जा द्रव्य में परिवर्तित होती है तथा द्रव्य ऊर्जा में। उन्होंने इसके लिए सूत्र प्रस्तुत किया है। ई = एम. सी.^{2} इसमें ई-इनर्जी अर्थात ऊर्जा के लिए है, एम-मास या द्रव्य के लिए है, सी-स्पीड ऑफ लाइट अर्थात प्रकाश की गति के लिए है। महर्षि कपिल की सृष्टि प्रक्रिया का सिद्धान्त और प्रकृति के अस्तित्व का तथ्य कितना वैज्ञानिक और प्रामाणिक था जो कालानतर में आइन्स्टीन के सापेक्षता के इस सिद्धान्त से स्वतः सिद्ध हो रहा है। ऋग्वेद् में सापेक्षता के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन वैदिक ऋषियों द्वारा किया गया है। ऋग्वेद् के अनुसार अदिति अर्थात द्रव्य से दक्ष अर्थात् ऊर्जा उत्पन्न होती है और दक्ष अर्थात् ऊर्जा से अदिति अर्थात् द्रव्य उत्पन्न होता है।[23]

भौतिक विज्ञान के अनुसार अखिल ब्रह्माण्ड में ऊर्जा का मूल स्रोत सूर्य है। भूतल पर ऊर्जा के जितने भी साधन विकसित किये गये हैं उन सबमें सौर ऊर्जा ही किसी न किसी रूप में विद्यमान है। सौर ऊर्जा से ही पेड़ पौधों में वृद्धि होती है। जिनसे प्राप्त लकड़ी कोयला आदि ऊर्जा के प्रसिद्ध पुरातन श्रोत हैं। सूर्य की किरणों से पृथ्वी गर्म होती है। पृथ्वी गर्म होने से वायु ऊपर उठती है। गतिमान वायु की ऊर्जा से पवन चक्कियाँ चलती हैं। ऋग्वेद् में सौर ऊर्जा का उल्लेख मिलता है। जिसके अनुसार ऋषि वशिष्ट तथा भारद्वाज ने सौर ऊर्जा का आविष्कार किया था। इन ऋषियों ने सूर्य से उस ऊर्जा को उत्पन्न किया जिसे 'धर्म' की संज्ञा दी गयी।[24] 'ऋग्वेद्' में प्राप्त अन्य उल्लेखों के अनुसार त्रित (इन्द्र), गन्धर्व और वसु को सौर ऊर्जा का सफल आविष्कारक माना गया है। ऊर्जा का सर्वप्रथम ज्ञान इन्द्र को हुआ, गन्धर्वों ने इसका परीक्षण किया और वसुओं ने इसको मूर्त रूप प्रदान किया। अतएव वसुओं को भौतिक विज्ञान का विशेषज्ञ कहा गया है। इसलिए विज्ञान आज जिस सौर ऊर्जा की बात कर रहा है वह हमारे ऋषियों के चिन्तन का पुरातन विषय रहा है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आज से लगभग एक सौ पच्चीस वर्ष पूर्व जहां पृथ्वी और आकाश से विद्युत प्राप्त कर उसके उपयोग की बात कही, वहीं सौर ऊर्जा का निर्देश भी दिया। 'यजुर्वेद' के भाष्य में उन्होंने लिखा है कि मानव को ऐश्वर्य प्राप्ति के साधनभूत कारण को जानना चाहिए। जो सृष्टि के निमित्तभूत विद्युत रूप तेज है उसको जानकर उपयोग करें।[25] ऋग्वेद् भाष्य में उन्होंने इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है कि-अगृम्भणात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट- हे सज्जनों सूर्य से शीघ्र गमन करने वाले अग्नि को ग्रहण कर उसको निरन्तर उपयोग में लाओ।[27] वैज्ञानिक वेंजामिन ने मेघों से उत्पन्न विद्युत और साधारण विद्युत को गुण में समान बताया है।

आधुनिक भौतिक विज्ञान अश्वशक्ति को अग्नि का ही एक रूप माना है। यन्त्रों में गति प्रदान करने वाली शक्ति को हार्सपावर (हार्स पावर) की संज्ञा देता है। वैदिक वाड्मय में इसे 'हर्यश्व' (शीघ्रगतिकारी) कहा गया है। 'ऋग्वेद्'[28] में इसके लिए 'अश्वमिष्टि' तथा ब्राह्मणग्रन्थों में[29] अग्निर्वै अश्वः संज्ञा दी गयी है।

वैदिक वाङ्मय में ऊर्जा की सम्प्रेषण शक्ति के लिए 'द्रुतगमिता सूचक शब्द'[३०] तथा यजुर्वेद में 'दुद्रवत' शब्द प्राप्त होता है। दुद्रवत अर्थात दौड़कर पहुंचता है। आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार ताप या ऊष्मा एक ऐसी ऊर्जा है, जो किसी द्रव्य में उसके अणुओं के कारण उत्पन्न होती है जो एक वस्तु से दूसरे वस्तु में प्रवेश करती है तथा अणुओं में गति उत्पन्न करती है। आधुनिक वैज्ञानिक मार्कोनी और जे. एल. ब्लेयर्ड ने वैदिक ऋषियों द्वारा प्रतिपादित सम्प्रेषणीय शक्ति के सिद्धान्त के आधार पर ही क्रमशः रेडियो तथा टेलीविजन का अविष्कार किया था।

वेदों में विद्युत द्वारा ध्वनि सम्प्रेषण का कथन किया गया है। 'ऋग्वेद्'[३१] तथा 'यजुर्वेद'[३२] में विद्युत तरंगों द्वारा संवाद प्रेषणीयता की सामर्थ्य का वर्णन किया गया है। कालान्तर में इस पद्धति का भौतिक विज्ञान में अनुकरण किया गया है। जिसके अनुसार विद्युत में श्रवण शक्ति होने के कारण विद्युत द्वारा ध्वनि तरंगों का सम्प्रेषण होता है। जिसके फलस्वरूप देश-विदेश में स्थित व्यक्ति भी परस्पर वार्तालाप कर सकता है एवं सूचनायें भेज सकता है। आधुनिक वैज्ञानिक ग्राहमवेल तथा मार्कोनी ने भारतीय वैदिक परम्परा का अनुकरण कर क्रमशः टेलीफोन एवं वायरलेस की खोज की।

वैदिक मंत्रों के द्रष्टा दीर्घतमस् ऋषि ने आक्सीजन तथा हाइड्रोजन गैसों का उल्लेख किया है। उन्होंने सूर्य के चारों तरफ फैली हुई शक्तिशाली गैसों की बात कही है। 'ऋग्वेद्' में 'शकमयंधूमस्' (महाशक्तियुक्तधूम) को अत्यन्त-शक्तिशाली गैस माना गया है।[३३] 'यजुर्वेद' के अनुसार सूर्य में प्राण (आक्सीजन) तथा अपान (हाइड्रोजन) गैस दोनों ही विद्यमान है।[३४] ऋषि अगस्त्य ने भी अपनी अगस्त्य संहिता में वैदिक मंत्रों की व्याख्या कर सूत्रों का निर्माण किया है:

अनेन जलभंगोऽस्ति प्राणोदानेषु वायुषु।

एवं शतानां कुम्भानां संयोगः कार्यकृत स्मृतः।।

-अगस्त्य संहिता

अर्थात इस प्रकार से प्राण (आक्सीजन) वायु और उदान (हाइड्रोजन) वायु में जल विच्छेदित हो जाता है। इस भारतीय पद्धति का अनुकरण कर ही पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने जल = हाइड्रोजन + आक्सीजन (एच.टू. ओ.) सूत्र का निर्माण किया। पाश्चात्य वैज्ञानिक ने आक्सीजन तथा प्रिस्टले ने हाइड्रोजन गैस की जो खोज आधुनिक युग में की है उन गैसों की खोज वैदिक ऋषियों ने कई हजार वर्ष पूर्व ही कर ली थी।

वैदिक युग में ताप विस्तारण क्षमता का भी उल्लेख प्राप्त होता है। यजुर्वेद में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है।[३५] ऋग्वेद् के अनुसार इन्द्र ने पर्वतीय चट्टानों को वज्र से काटकर नदियों के लिए मार्ग बनाया था।[३६] यही बज्र कालान्तर में डाइनामाइट के रूप में विकसित हुआ तथा भौतिक विज्ञान में तापीय विस्तारण क्षमता का सिद्धान्त निर्मित हुआ। वस्तुतः इस सिद्धान्त के अनुसार अग्नि में तापीय प्रसार के कारण पदार्थ का फैलाव होता है, जिसके कारण कोई वस्तु आसानी से टूट जाती है। वस्तुतः आधुनिक युग में पाश्चात्य विद्वान नोबेल ने पहाड़ों को तोड़कर सुरंग बनाने, लोहे को मोड़ने, तोड़ने तथा काटने के लिए जिस डाइनामाइट का निर्माण किया उसका निर्माण प्राचीन युग में ही हो चुका था।

आधुनिक वैज्ञानिक न्यूटन को गुरूत्वाकर्षण के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने का जो श्रेय प्राप्त हुआ है। उसका उल्लेख प्राचीन काल में ही हमारे वैदिक ऋषियों द्वारा कर लिया गया था। ऋषि पिप्पलाद ने 'प्रश्नोपनिषद्'[३७] में, ऋषि जाबालि ने 'बृहत्जाबालोपनिषद्'[३८] में महर्षि पतञ्जलि ने अष्टाध्यायी के महाभाष्य[३९] में वराहमिहिर ने अपने 'पच्चसिद्धान्तिका'[४०] में, श्रीपति ने अपने ग्रन्थ 'सिद्धान्त शेखर'[४१] में, प्रशस्तपादाचार्य ने 'प्रशस्तपाद

भाष्य'[४२] में, भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ 'सिद्धान्त शिरोमणि'[४३] में गुरूत्वाकर्षण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। श्री धराचार्य ने भी प्रशस्तपाद भाष्य पर लिखी अपनी टीका 'न्यायकन्दली'[४४] में गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है। भौतिक वैज्ञानिकों की दृष्टि में प्रकाश के परावर्तन एवं अपवर्तन के कारण इन्द्रधनुष की रचना होती है। इसका उल्लेख भारतीय आचार्यों ने बहुत पहले ही कर दिया था। इस सन्दर्भ में आचार्य वराहमिहिर का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने ग्रन्थ बृहत्संहिता में लिखा है कि सूर्य की सप्तरंगी किरणें इन्द्रधनुष का निर्माण करती हैं। जब बादल से युक्त (साभ्रे) आकाश (वियति) में विविध रंगों (विविधवर्णाः) वाली सूर्य की किरणें वायु से टकराकर (पवनेनविघटिताः) बिखरती हैं तब धनुष की आकृति बनती है जिसे इन्द्रधनुष कहते हैं।

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघटिताः कराः साभ्रे।
वियति धनुः संस्थानाः ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः।।
- बृहत्संहिता

भौतिक वैज्ञानिक रॉगर बेकन (सी. ई. १२१४ से १२९२) ने लेन्ज (ताल, चश्मे या दूरबीन का शीशा) का आविष्कार किया। परन्तु भारतीय विद्वान महर्षि गौतम ने लगभग ८०० ई.पू. में ही लेन्ज का आविष्कार कर दिया था। उनके अनुसार जो दूरस्थ वस्तु नेत्रों से स्पष्टतः नहीं दिखायी देती वह लेन्ज के द्वारा स्पष्ट हो जाती है लेन्ज को कांच (ग्लास), आभ्रपटल (मिका) और स्फटिक (क्रिस्टल) से निर्मित किया जाता है।[४५]

वैदिक वाङ्मय में चुम्बकीय शक्ति का भी वर्णन किया गया है। ऋग्वेद् में चुम्बकीय शक्ति के लिए मरूतों को 'अयोदंष्ट्र'[४६] तथा उनसे शक्ति के विकिरण के लिए 'विधावतः'। ऋग्वेद् के एवया मरूत सूत्र में चुम्बकीय तरंगों का सम्यक्तया निरूपण किया गया है।[४७] यहाँ पर 'एवया' अतितीव्रगामी तथा मरूत विद्युत चुम्बकीय तरंगों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद् में मरुतगणों के लिए 'एवयावन'[४८] तथा विद्युत के 'एवयावरी'[४९] शब्द का प्रयोग किया गया है। आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रयुक्त विविध यन्त्रों का उल्लेख भी वेदों में प्राप्त होता है।[५०] महर्षि भारद्वाज ने भी अपनी पुस्तक 'यन्त्र सर्वस्व' में आधुनिक युग में प्रचलित यन्त्रों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने ग्रन्थ में अपने पूर्व विज्ञानशास्त्रियों के नाम एवं उनकी कृतियों का निर्देश किया है-

१. घुण्डीनाथ	-	व्योम यानार्क प्रकाश
२. ऋषि नारायण	-	विमान चन्द्रिका
३. शौनक ऋषि	-	व्योम यान तन्त्र
४. गर्ग ऋषि	-	यन्त्र कल्प
५. वाचस्पति	-	यान बिन्दु
६. यक्रायणी	-	खेय्यान प्रदीपिका

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक विज्ञान के समस्त सूत्र एवं सिद्धान्त तथा भौतिक वैज्ञानिकों के आविष्कार एवं तकनीकियां वैदिक संहिताओं में ही नहीं वरन सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में भरी पड़ी हैं। वस्तुतः वर्तमान युग के समस्त वैज्ञानिक चमत्कार उन भारतीय ऋषियों की देन हैं जिनकी साधना एवं तपस्या से आविष्कृत हुए थे। संस्कृत के विद्वानों का विज्ञान में दखल न होने के कारण। वैदिक ऋषियों का यह गूढ़ वैज्ञानिक रहस्य बहुत समय तक भारतीय जनमानस से अपरिचित रहा है। परन्तु पाश्चात्य विद्वान प्राचीन भारतीय आर्य भाषा एवं संस्कृत वाङ्मय के प्रति आकृष्ट हुए तथा उनमें संस्कृत में विद्यमान गूढ़ रहस्यों को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। इसके लिए उन्होंने संस्कृत भाषा को सीखना प्रारम्भ किया। तदुपरान्त वैदिक संहिताओं एवं संस्कृत वाङ्मय में विद्यमान विज्ञान के सूत्र एवं तत्वों की जानकारी प्राप्त की तथा उसे अपनी प्रयोगशाला में सिद्ध करके ऋषियों द्वारा अन्वेषित विज्ञान के सिद्धान्तों एवं सूत्रों की आधुनिकता का पुट

देकर तथा उसका आंग्लभाषा में रूपान्तरण कर नवीन शब्दावली में उन सिद्धान्तों को प्रस्तुत कर स्वयं को उनके आविष्कारक एवं वैज्ञानिक होने का दावा करने लगे। भारतीय संस्कृतज्ञों को चाहिए कि प्राचीन ऋषियों के वैज्ञानिक बहुमूल्य धरोहर को सुरक्षित रखने हेतु शोधपरक अध्ययन की परम्परा विकसित करें एवं भारतीय जनमानस में भी संगोष्ठियों के माध्यम से इस रहस्य के प्रति चेतना जागृत कर उन्हें सजग एवं सचेत करें।

सन्दर्भ सूची

१. अथर्वा त्वा प्रथमो निरन्मथद् अग्ने-यजुर्वेद ११.३२
२. अरण्योर्निहितो जातवेदाः- ऋग्वेद-३.२९-०२ नव जनिष्टारणी- ऋग्वेद ५.०९.०३ अग्नि मन्थाम पूर्वथा- ऋग्वेद३.२९.०१
३. यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान- ऋग्वेद ०२.१२.०३
४. तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वण : यजुर्वेद ११.३३
५. पुरीष्यासो अग्नय :-ऋग्वेद ३.२२.०४
६. यजुर्वेद १२.५०
७. तैत्तिरीय संहिता - ०४.२.४०.०३
८. पुरीष्यासो अग्नय :-ऋग्वेद, ३.२२.०४, यजुर्वेद १२.५०
९. पुरीष्यो ऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदाग्ने यजुर्वेद ११.३२
१०. पृथिव्याः साधस्याद अग्निं पुरीष्यम् .... खनाम-यजुर्वेद ११.२८.११.२९,११.३१
११. ऋग्वेद -६.१६.१३
१२. यजुर्वेद- ११.३२
१३. सामवेद-०९
१४. तैतिरीयसंहिता -३.५.११.३
१६. अथर्वेद - १८.०३.०५
१७. 'सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृति :-सांख्यतत्त्व कौमुदी का. ३
१८. मन्त्रेषु अग्निस्मृतो निधायि-यजुर्वेद-१२.२४
१९. अग्निरमृतो अभवद वयोभि : यजुर्वेद १२.२५
२०. अग्ने-त्मना शतिनं पुरुरूपम- ऋग्वेद २.२.०९
२१. स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपम ऋग्वेद ३.०१.०७
२२. स्तीर्णा अस्यसंहतो विश्वरूपम्-ऋग्वेद-३.०१.०७
२३. अदितेर्दक्षो अजायत, दक्षाद उ अदितिः-ऋग्वेद-१०.६२.४
२४. आ सूर्याद अभरन् घर्ममेते ऋग्वेद -१०.१८१.०३
२५. त्रित एनम आयुनक ऋग्वेद १.१६३.२, यजुर्वेद २९-१३
२६. यजुर्वेद भाष्य १२.२३
२७. ऋग्वेद् १२.१८
२८. मघवन गविष्टये अश्वमिष्टये-ऋग्वेद ८.६१.०६-अग्ने अश्वमिष्टे ऋग्वेद २.६.०२
२९. शतपथ ब्राह्मण-२.१.४.६
३०. विश्वस्य द्रुतमममृतम स दुद्रवत् स्वाहुतःयजुर्वेद १५.३३.३८
३१. श्रुधि श्रुत्कर्ण बहनिभि : ऋग्वेद १.४४.१३
३२. अग्ने तव श्रवोवयो यजुर्वेद १२.१०६
३३. शकमयंधूमम् ऋग्वेद १.१६४.४३
३४. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादायानतौ-यजुर्वेद ३.१६
३५. अग्ने-येनान्तरिक्षम् उर्वाततन्थत्वेषः-यजुर्वेद-१२.४८
३६. बज्रेष खानि अतृणन् नदीनाम ऋग्वेद २.१५.०३
३७. प्रश्नोपनिषद ३.५,३.८
३८. आधारशक्यावधृत :, कालाग्निरयम् ऊर्ध्वगः

बृहदजाबालोपनिषद् २.८

३६. लोष्ठः क्षिप्तो बाहुवेगं गत्वा नैव तिर्यग् गच्द्दतिनोर्ध्वमारोहति। पृथिवीविकारः पृथिवीमेव गच्द्दति आन्तर्यत : पतञ्जलि महाभाष्य १.१.४६

४०. पच्चसिद्धान्तिका-पृष्ठ-३१

४१. सिद्धान्तशेखर १५.२१,२२

४२. गुरूत्वं जल भूम्योः पतनकर्मकारणम। अप्रत्यक्षं पतनकर्मानुमेयं संयोग प्रयत्न संस्कार विरोधि अस्य चाबादि परमाणु रुपादिवन्नित्यानित्यत्व निष्पत्तयः। प्रशस्तपादभाष्य

४३. आकृष्टिशक्ति श्चव महीतया यत सिद्धान्त शिरोमणि भुवन-१६

४४. अथावयवानां गुरूत्वादेव तस्य पतनं तदवय वानामपि स्वावयव गुरूत्वात् पतन मिति सर्वम कार्ये तदुच्दछेदः। अथव्यधि करणेभ्यः स्वावयव गुरूत्वेभ्योऽवयवानां पतनसम्भवात् तेषु गुरुत्वम् कल्प तदा अवयविन्यपि कल्पनीय न्याय समानत्वात्।

न्याय कन्दली

४५. अप्राप्यग्रहण। काचाभ्रपटलस्फटिकान्तरितोपलब्धेः।।

न्यायदर्शन अ.३.४६

४६. मरूत् अयोदंष्ट्रान् विधावतः ऋग्वेद १.८८.५

४७. ऋग्वेद एवयामरुत सूक्त ५.६७.१-८

४८. मरूत : एवयावन ऋग्वेद २.३४.११

४६. या सुम्नै : एवयावरी-ऋग्वेद ६.४८.१२

५०. वातानां यन्त्राय, ऋतूनां यन्त्राय, दिशां यन्त्राय, तेजसे यन्त्राय, वाचोयन्त्रम् अशीय। तैतिरीयसंहिता १.६.१.२

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अष्टांगिक मार्ग और योग की प्रासंगिकता एवं उपादेयता

❑ डॉ. उर्मिला कुमारी

आज मानव जीवन की बागडोर एक बिना लगाम के घोड़े के समान दिख पड़ती है आत्मा की स्थिति वैसे ही घोड़े के समान है जिसे वश में करने के लिए लगाम लगाई नहीं जा सकती है। आज मानव अपनी डफली अपना राग अलापने में मस्त है। इस वैज्ञानिकता के युग में मानव ने अपनी सुख-सुविधा हेतु सभी साधनों का प्रबन्ध कर रखा है आज न कोई योगी है न कोई भोगी, अपनी खिचड़ी पकाने में ही सुखानुभूति हो रही है। जो लगाम ऋषि मुनियों ने समाज कल्याण के लिए बना रखी है आज उसका रूप विज्ञान नष्ट कर दिया है। वैज्ञानिक शोध से ज्ञात होता है कि समाज बंधन मोक्ष के स्थान पर अन्धाधुंध सुख के साधन उपलब्ध करा चुका है और कराया जा रहा है। उस जमाने में मानव तप के बल पर ज्ञान या सुख की अनुभूति रखता था, आज दौलत के बल पर सुख की अनुभूति हो रही है अतः समय काल के अनुरूप ही योग मार्ग को सक्षम अनुशासन की बागडोर माना जा सकता है आज के युग में विज्ञान ने इसका अस्तित्व खतरे में डाल दिया है।

योग का अर्थ एवं उत्पति :- योग शब्द "युज" धातु से बना है जिसका अर्थ है, 'जोड़ना'। अर्थात जो युक्त करे, मिलावे उसे योग कहते है। इस सम्बन्ध में योग सूत्र के रचनाकार महर्षि पतंजलि ने "योगः समाधिः" कहकर योग को समाधि के रूप में परिभाषित किया है, अर्थात् कामना वासना आशिक्त संस्कार आदि सब प्रकार की आगन्तुक मलिनता को दूरकर स्वरूप में प्रतिष्ठित होना, जीव का ब्रह्म होना ही समाधि है। विभिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न साधना द्वारा इस लक्ष्य की अर्थात समाधि की स्थिति को प्राप्त किया है। भारतीय तत्व चिन्तकों ने आत्मा की पवित्रता को उत्तम साधन के रूप में योग की महत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है।

वेद के प्रत्येक भाग में योग को किसी न किसी रूप में मान्यता मिली है। वेद के तीन खंड हैं।

१. **कर्मकाण्ड**
२. **ज्ञानकाण्ड**
३. **उपासना काण्ड**

१. **कर्मकाण्ड के अनुसार** :- योगः कर्मसु कौशलम् अर्थात कर्मों की कुशलता ही योग है।
२. **ज्ञान काण्ड के अनुसार** :- "संयोग योग इत्युत्तों जीवत्म परमात्मनों" अर्थात् जीवात्मा परमात्मा का संयोग एकीकरण योग है।
३. **उपासना काण्ड के अनुसार** :- "योगः चित् वृत्ति निरोधः" अर्थात् चित्र वृत्तियों का निरोध योग है।

योग दर्शन के अष्टांग मार्ग का एक संक्षिप्त परिचय :- योग दर्शन के प्रणेता पतंजलि माने जाते हैं। योग दर्शन में योग का अर्थ चित्त वृत्तियों का निरोध है। योग दर्शन में चितृत स्थिरता बनाए रखने के लिए एवं चित्त वृत्तियों का निरोध करने के लिए योग मार्ग की व्याख्या की गयी है। इस दर्शन में चित्त स्थिरता कायम एवं चित्त वृत्तियों के निरोध हेतु ८ मार्ग बताये गये हैं जिस पर चलकर मानव अपनी जीवन नैया को बंधन में पड़ने से बचाने में सक्षम है। योग दर्शन में ८ मार्गों की व्याख्या की गयी है, जिसे योग के अष्टांगिक मार्ग द एट

❑ व्याख्याता, दर्शन शास्त्र विभाग, भूपेश गुप्त विश्वविद्यालय रामलाल नगर, भभुआ, कैमूर (बिहार)

फोल्ड पाथ ऑफ योगा कहा जाता है।

योग के आष्टांगिक मार्ग :- १. यम,२. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान ८. समाधि।

उपर्युक्त में से क्रमशः ५ मार्गों को वहिरंग साधन तथा निम्न ३ मार्ग को (धारणा, ध्यान, समाधि) को अंतरंग साधन कहा जाता है। उपर्युक्त अष्टांगिक मार्ग का संक्षिप्त अध्ययन इस प्रकार है।

१. **यम** :- यह योग का प्रथम अंग है। इसलिए इसे योगांग भी कहा जाता है। वाह्य तथा अभ्यांतर इन्द्रियों की संयम की क्रिया को यम कहा जाता है। यम ५ हैं।

क - अंहिसा :- किसी से किसी प्राणी की हिंसा न करना।

ख - असुतेय :- मिथ्या वचन का परित्याग।

ग - असुतेय :- दूसरे के धन के अपहरण की प्रवृत्ति का त्याग।

घ - अपरिग्रह :- लोभवश आवश्यकता से अधिक वस्तु का त्याग।

ड़ - ब्रह्मचर्य :- विषय वासनाओं की ओर झुकने वाली प्रवृत्ति का त्याग।

२. **नियम** :- यह योग का द्वितीय अंग है, नियम का अर्थ है सदाचार को प्रश्रय देना। नियम ५ हैं :

क - शौच :- शौच का अर्थ है शुद्धि। वाह्य तथा आंतरिक इन्द्रिय की शुद्धि ही शौच कहलाता है।

ख - संतोष :- उचित प्रयास से जो कुछ भी प्राप्त हो उसी से संतुष्ट रहना संतोष कहलाता है।

ग - तपस :- सर्दी, गर्मी, जाड़ा, बरसात आदि को सहने की क्षमता ही तपस है।

घ - स्वाध्याय :- शास्त्रों का अध्ययन करना, ज्ञानी पुरूषों के कथन का अनुशीलन करना ही स्वाध्याय कहलाता है।

ड़ - ईश्वर प्रणिधान :- ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखना अपने आपको ईश्वर पर छोड़ देना ही ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।

३. **आसन** :- यह योग का तीसरा अंग है। आसन का अर्थ है शरीर को किसी विशेष मुद्रा में रखना। आसन की अवस्था में शरीर का हिलना डुलना एवं मन की चंचलता गायब हो जाती है, इस अवस्था में यदि शरीर को कष्ट की अनुभूति विद्यमान रहे तो ध्यान में बाधा पहुँच सकती है आसन कई प्रकार के हैं इनमें वीरासन, मयूरासन, गरूड़ासन, शीर्षासन इत्यादि प्रमुख हैं।

४. **प्राणायाम** :- यह योग का चौथा अंग है। श्वासक्रिया को नियंत्रित करना तथा उसमें क्रमबद्धता लाना ही प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम तीन प्रकार के हैं :-

(अ) पूरक :- इसमें गहरी साँस ली जाती है।

(ब) कुम्भक :- इसमें साँस को भीतर रोका जाता है।

(स) रेचक :- इसमें श्वास को बाहर निकाला जाता है।

५. **प्रत्याहार** :- यह योग का पाचवाँ अंग है, प्रत्याहार का अर्थ है, इन्द्रियों को वाह्य विषयों से हटाना तथा उन्हें मन के वश में रखना यह अत्यन्त कठिन है, लेकिन अनवरत अभ्यास, दृढ़ संकल्प और इन्द्रिय निग्रह के द्वारा ही इसे अपनाया जा सकता है।

६. **धारणा** :- धारणा का अर्थ है चित्त को अपने अभीष्ट विषय पर लगाना जैसे सूर्य, चन्द्रमा आदि पर। धारणा आंतरिक अनुशासन का

प्रथम सोपान है धारणा में चित्त किसी एक वस्तु पर केन्द्रित हो जाता है। वह वस्तु वाह्य या आतंरिक दोनों हो सकती है।

७. **ध्यान** :- यह योग का सातवाँ अंग है। ध्यान का अर्थ है अभीष्ट विषय पर लगातार ध्यान केन्द्रित करना, जैसे मूर्ति पर ध्यान केन्द्रित करना। यह सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र कुछ पर भी हो सकता है।

८. **समाधि** :- यह योग की अंतिम सीढ़ी है। यहाँ ज्ञाता तथा ज्ञेय की चेतना समाप्त हो जाती है। इस अवस्था में मन की चंचलता गायब हो जाती है। तथा मन अपने ध्येय विषय में पूर्णतः लीन हो जाता है, जिसके फलस्वरूप उसे अपना कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है। इस अवस्था को प्राप्त हो जाने पर चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है। आत्मा अपने स्वरूप को पहचान लेती है आत्मा को देहमन इन्द्रियों से भिन्न होने का ज्ञान प्राप्त हो जाता है इस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है और आत्मा बन्धन से मुक्त हो जाती है।

समाधि के भेद :-

१. **सम्प्रज्ञात समाधि** :- इसमें ध्येय विषय का स्पष्ट ज्ञान रहता है। सम्प्रज्ञात समाधि को सबीज समाधि भी कहा जाता है सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद किए गए हैं :-

(क) **सवितर्क समाधि** :- यह समाधि का वह रूप है जिसमें स्थूल विषय पर ध्यान लगाया जाता है जैसे मूर्ति पर ध्यान केन्द्रित करना।

(ख) **सविचार समाधि** :- यह समाधि का वह रूप है जिसमें सूक्ष्म विषय पर ध्यान लगाया जाता है जैसे कभी-कभी तन्मात्राओं पर ध्यान केन्द्रित होता है।

(ग) **सानन्द उपाधि** :- यह पूर्ण आनन्द की अवस्था है। यहाँ इन्द्रियाँ पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रिय + पाँच कर्मेन्द्रिय + एक मन = कुल ११, इन्द्रियों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इन्द्रियों की अनुभूति आनन्ददायक होने के कारण इस समाधि को सानन्द समाधि कहा जाता है।

(घ) **सस्मित समाधि** :- समाधि की इस अवस्था में ध्यान का विषय अहंकार है। अहंकार को अस्मिता कहा जाता है।

२. **असम्प्रज्ञात समाधि** :- इस समाधि में ध्यान का विषय ही लुप्त हो जाता है। इस अवस्था में आत्मा अपने यथार्थ स्वरूप को पहचान लेती है। इस अवस्था की प्राप्ति के साथ ही साथ सभी प्रकार की चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है। आत्मा का पूर्ण मिलन परमात्मा से हो जाता है, इस अवस्था में ध्यान की चेतना का पूर्णतः अभाव हो जाता है। इसलिए इस समाधि को निर्बीज समाधि कहा जाता है।

हमें वेद, उपनिषद, स्मृति, रामायण, महाभारत तथा लगभग सभी धार्मिक ग्रन्थों के साथ-साथ हड़प्पा मोहनजोदड़ों तथा नर्मदा नदी के तट पर प्राचीन महर्षि महिष्मती नगरी के प्राचीन सांस्कृतिक अवशेषों में योग साधना के प्रमाण दृष्टिगोचर होते हैं। अतः योग मार्ग को एक अनुपम मार्ग के रूप में उजागर किया जा सकता है।

योग की उपयोगिता :- शरीर को स्वस्थ, मन को स्थिर और आत्मा को परमात्मा स्वरूप में प्रतिष्ठित करने में अमोघ साधन के रूप में योग साधना का विशेष महत्व है, जिसे योगियों, सिद्धों और साधकों ने प्रचारित तथा प्रतिष्ठित किया है। इस योग साधना में शरीर शुद्धि

का विशेष और महत्वपूर्ण स्थान है। योगाभ्यास से शरीर में ताजगी आती है और मनुष्य दीर्घआयु और अरोग्य को प्राप्त होता है।

योग साधना सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिए हमारे ऋषि, मुनियों और महान योगिराज पतंजलि द्वारा अष्टांगयोग प्रचार का विशिष्ट रसायन है। जिसका सेवन हर देशकाल, जाति, लिंग, वर्ण, समुदाय, सम्प्रदाय एवं पन्थों के लोगों के लिए सुलभ और उपादेय है।

निष्कर्ष :- आज जब सम्पूर्ण विश्व स्वास्थ्य और मानसिक शांति की प्राप्ति के लिए उद्विग्न है तथा इस समस्या का समाधान ढूंढ़ने के लिए भारतीय योग साधना से प्रेरणा ग्रहण करने के लिए उत्सुक है तब ऐसे समय में योग की साधना से मानसिक और शारीरिक व्याधियों का समाधान विश्व मानवता का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। योग की साधना सर्वांगपूर्ण साधना है। इस साधना के माध्यम से हम न केवल लोककल्याण तथा आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं अपितु इस सम्बन्ध में प्रचलित गलत धारणाओं में मनमाने मिथ्या विचारों का निराकरण भी कर सकते हैं। इसलिये वर्तमान में योग की प्रासंगिकता एवं उपादेयता बढ़ गयी है।

भारतीय संगीत–एक वैज्ञानिक विवेचन

❑ डॉ. ज्योति सिन्हा

संगीत चाहे किसी भी देश का हो या महादेश का हो, यदि वह हमारे हृदय को स्पन्दित कर सकने में सक्षम है तो वही सर्वश्रेष्ठ संगीत है। हमारी संगीत परम्परा विश्व की सबसे पुरातन संगीत परंपरा है। भारतीय संगीत अपनी मधुरता, सरसता, शुद्धता एवं विविधता के बल पर विश्व संगीत के श्रोताओं की दृष्टि में लोकप्रिय सिद्ध हुआ है। भारतीय संगीत हमारे देश की अमूल्य धरोहर है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत एक पवित्र अनुभूति है। ललित कलाओं में इसका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कलाकारों, कवियों, नर्तकों, मूर्तिकारों तथा संगीतज्ञों के माध्यम से ललित कलायें राष्ट्र की आत्मा की व्याख्या करती हैं और भावी पीढ़ियों को काल, शास्वत सौंदर्य श्री और शक्ति का ज्ञान प्रदान करती है। संगीत एक दिव्य-भव्य कला है। केवल मन-रंजन की अपेक्षा आत्म-ज्ञान करा देने की सामर्थ्य भारतीय संगीत में है। हमारी सभ्यता संस्कृति में मोक्ष प्राप्ति के साधनों में भारतीय संगीत को एक महत्वपूर्ण अंश के रूप में माना गया है। भारतीय संगीत स्थायी अमरत्व प्रदान करता है और इसीलिए 'ब्रह्मानंद-सहोदर' माना गया है। श्रीमद्भगवत्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने भी अपना निवास, भक्तों के संगीतमय गान में ही बताया है; यथा –

'नाहं वासमि बैकुण्ठे, योगिनां हृदये न वा।
मदमक्तः यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारदः।।

अर्थात् हे नारद, न मैं बैकुण्ठ में निवास करता हूँ और ना ही योगियों के हृदय में। मैं वहाँ निवास करता हूँ जहाँ मेरे भक्तगण गान करते हैं।

इस प्रकार वेद, स्मृतियां, पुराण, उपनिषद् तथा अन्य पौराणिक ग्रंथों में अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं जिनमें भारतीय संगीत की विशिष्टता को दर्शाया गया है। 'नादाधीनम् जगत सर्वम्' से ही उसके नाद, श्रुति, स्वर एवं संगीत की व्याख्या पूर्ण होती है। इसमें द्वैत से अद्वैत की ओर ले जाने वाला तत्व है और यही भारतीय संगीत का सनातन पर सार्वभौमिक गुण है। भारतीय संगीत का आधार ही 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम' के भाव से भरा हुआ है जो मानव मन पर सीधा असर डालती है और उसे अभिभूत कर देती है। भारतीय संगीत सत्-चित्-आनन्द प्राप्ति का साधन है तथा अनुभूतियों का चरमोत्कर्ष है, लौकिक विभेद से परे मोक्ष प्राप्ति का सरल सुलभ साधन है। संगीत का दार्शनिक महत्व बताते हुये श्री उपेन्द्र चन्द्र सिंह ने अपनी पुस्तक व्हाट इज म्यूजिक में विस्तार से लिखा है –

इस प्रकार सामवेद से निकला संगीत मानव के लिये सदा ही चमत्कारी ढंग से उपकारी रहा है। भारतीय संगीत की महत्ता सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक सभी क्षेत्रों में समान रूप से है।

आज का युग वैज्ञानिक युग के नाम से जाना जाता है। विज्ञान ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महान उपलब्धियाँ हासिल की हैं। भारतीय संगीत भी वैज्ञानिक क्षेत्र से अछूता नहीं रहा है। अध्यात्म से विज्ञान तक का सफर महत्वपूर्ण रहा है। आरंभ से ही दोनों एक दूसरे के पूरक रहें हैं जिसका परोक्ष-अपरोक्ष प्रभाव स्वतः दिखाई देता है।

सर्वप्रथम विज्ञान ने अपने खोजपूर्ण उपकरणों से संगीत जगत को लाभान्वित किया है जिसका प्रथम

❑ प्रवक्ता, संगीत गायन, भारतीय महिला पी. जी. कालेज, जौनपुर (उ. प्र.)

प्रयास ग्रामोफोन रहा है जिसे १८७७ में थामस एडिसन ने संगीत जगत को विज्ञान जगत के माध्यम से समर्पित किया। इसके बाद तो कई लाभप्रद उपकरण जैसे - रेडियो, टेपरिकार्डर, टेलीविजन, मेट्रोनम, लहरा मशीन, इलेक्ट्रॉनिक तानपूरा, स्वर पेटी, ताल पेटी इत्यादि यंत्र संगीत जगत को विज्ञान ने प्रदान किये। वैज्ञानिक खोजपूर्ण प्रयत्नों की यह उपज अथवा इन माध्यमों ने भारतीय संगीत को प्रचारित-प्रसारित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ग्रामोफोन से लेकर ऑडियो-वीडियो तक का सफर भारतीय संगीत को काफी हद तक सुरक्षित एवं संरक्षित कर पाने में समर्थ हुआ है। जहाँ एक कलाकार की कला उसके साथ ही समाप्त हो जाया करती थी, आज उसे संरक्षित करना संभव हो पाया है। यदि विज्ञान ने संगीत का संरक्षण किया है तो संगीत ने भी विज्ञान को एक नई सोच एक नई दिशा प्रदान की है।

कम्प्यूटर ने अपने प्रयोग से संगीत जगत को भी समृद्ध किया है। इसके द्वारा असंभव समझे जाने वाले सांगीतिक तथ्य भी संभव होते नजर आ रहे हैं। इससे शास्त्रीय संगीत को समझने के प्रयास को एक नया बल मिला है।

संगीत के माध्यम से मनुष्य तो क्या प्रकृति और पशुओं को भी वशीभूत किया जा सकता है। संगीत का प्रभाव वनस्पतियों पर भी स्पष्ट रूप से दिखने लगा है। संगीत से पेड़ पौधों की उत्पादन शक्ति को अधिकतम सीमा तक पहुँचाया जा सकता है। गाय-भैंस को अधिक दूध उत्पादन हेतु तथा कृषि में भी अधिक उत्पादन के लिये वैज्ञानिकों ने इसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया है।

चिकित्सा के क्षेत्र में संगीत का प्रवेश एवं प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। संगीत का मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ध्वनि की पहुँच मस्तिष्क तक है। संगीत सुनने गाने और गुनगुनाने मात्र से हमारा मस्तिष्क शांत और व्यवस्थित होने लगता है और इसमें मौजूद किसी भी तरह का अवरोध इस ध्वनि के प्रभाव से विलीन हो जाता है। अतः मनुष्य के मन का सम्बन्ध संगीत के साथ सीधे रूप से युक्त है। जब मनुष्य मानसिक तनाव से युक्त रहता है तो सांगीतिक मनोरंजन के द्वारा मानसिक तनाव से मुक्ति अनुभव करता है। मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक रोगियों में इसके परिणाम को उत्साहवर्द्धक बताया है। वैज्ञानिकों ने भी इस तथ्य की सत्यता को स्वीकार किया है। आधुनिक समय में विभिन्न मानसिक तनाव से ग्रस्त असंख्य व्यक्तियों का विभिन्न रागों द्वारा उपचार करने की चेष्टा की जा रही है। जिसे 'म्यूजिकथेरेपी' के नाम से जाना जाता है। औषधि रहित यह उपचार प्राकृतिक एवं सात्विक भी है। अमेरिका में ऐसे ५००० से अधिक चिकित्सक हैं जो 'नेशनल एसोसिएशन फार म्यूजिक थिरैपी' के अर्न्तगत संगीत से रोग की चिकित्सा करते हैं। जर्मनी के डॉक्टरों ने संगीत चिकित्सा के सफल परिणाम देखे हैं। अमरीकी शोधकर्ता 'जी. आर. वटकिन्स' ने यह सिद्ध किया कि हृदय बीट्स की गति में, विविध प्रकार के संगीत के प्रयोग से अनेक परिवर्तन होते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध मनुष्य के स्वास्थ्य से है। हृदय रोग, टी. बी. कैंसर तथा प्रसव पीड़ा जैसी गम्भीर स्थितियों में भी संगीत का प्रयोग लाभप्रद सिद्ध हुआ है। महाराष्ट्र के एक आयुर्वेदिक चिकित्सा विशेषज्ञ हैं - डॉ. बाला जी ताम्बे। इन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत के रागों को उच्च और निम्न रक्त चाप, तनाव, अनिद्रा, खण्डमनस्कता आदि रोगों के उपचार में अत्यंत कारगर पाया है। डॉ. ताम्बे ने काली (महाराष्ट्र) की प्राचीन बौद्ध गुफाओं के निकट एक अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की है तथा इसका नाम 'आत्म-संतुलन ग्राम' रखा है। उपचार के लिये वे रागों का सहारा लेते हैं। अनुसंधान के दौरान डॉ. ताम्बे ने पाया कि भूपाली एवं तोड़ी राग उच्च रक्त चाप, मालकौंस एवं आसावरी राग निम्न रक्त चाप वाले रोगियों को लाभ पहुँचाते हैं। तनाव मुक्त करने में

राग-भैरवी एवं बौद्धिक कार्यों के लिये प्रेरित करने में राग शिवरंजनी की भूमिका महत्वपूर्ण है।

जगत् विख्यात पं. ओमकार नाथ ठाकुर जी का यह मानना है कि अनिद्रा से ग्रसित व्यक्ति को राग पूरियाकी आलापचारी की घंटों अवतारणा करके इस कठिन पीड़ा से मुक्ति दिलाई जा सकती है। राग दरबारी व्यक्ति को मानसिक तनाव से मुक्ति दिलाता है। राग बहार में व्यक्ति में नया उत्साह एवं उमंग भरने की शक्ति है।

तबला एवं मृदंग जैसे वाद्य भी चिकित्सा में सहायक सिद्ध हुये हैं। सुप्रसिद्ध मृदंग वादक भगवान दास जी ने अकबर के दरबार में मृदंग पर गजपरण बजाकर बिगड़ैल पागल हाथी को न केवल नियंत्रित किया बल्कि शांत भी किया।

वास्तव में देखा जाये तो संगीत और विज्ञान का सम्बन्ध उतना ही प्राचीन है जितना भारतीय संगीत। प्राचीन काल में यज्ञों में वैदिक यंत्रों के सस्वर पाठ से वर्षा होना आज भी वैज्ञानिक दृष्टि से श्रेष्ठ माना जा रहा है। थकावट से व्यथित किसान का रामायण पाठ करना, ग्रामीण महिलाओं का चक्की चलाते हुये, खेतों में निराई-बोआई करते हुये गीत गाना, प्रसव पीड़ा के समय घर की अन्य महिलाओं द्वारा गीत गाना, इन सबके पीछे वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है जो उन्हें उस थकान, पीड़ा, तनाव से मुक्ति दिलाने अथवा कम करने में सहायक होता है।

शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत स्वर सप्तक की स्थापना, स्वरों की आन्दोलन संख्या, स्वरांतर बाईस श्रुतियों का विभाजन, सहायक नादों की उत्पत्ति इत्यादि सभी का आधार गणितीय एवं वैज्ञानिक है। ध्वनि एवं विज्ञान का सम्बन्ध सर्वविदित है। ध्वनि की तारता, तीव्रता, जाति, गुण, आवर्तन-विर्वतन, अनुरणन इत्यादि सभी का आधार वैज्ञानिक है, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है। हमारे शास्त्रों में इसका उल्लेख विधिवत् रूप से है।

संगीत के सकारात्मक पक्ष के साथ ही इसके नकारात्मक पहलू का भी प्रादुर्भाव हुआ है। कर्णकटु संगीत हमारी मानसिक अवस्था को विकृत कर देता है। ध्वनि प्रदूषण इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। जो मनुष्य में कई रोगों को जन्म दे रहा है। आज जरूरत है हमें इसके सकारात्मक पक्ष को और प्रबल बनाने की ताकि संगीत समाज के विकास में स्वस्थ भूमिका का निर्वाह कर सके। आज मुद्रण ऑडियों-वीडियो के रिकार्डिंग के माध्यम से संगीत संरक्षण का पूरा प्रयास हो रहा है। विचित्र वीणा, इस राज तथा गोट्वाद्यम् जैसे गम्भीर वाद्यों की रिकार्डिंग का संरक्षण आज सम्भव है। कम्प्यूटर की सहायता से संगीत के वैज्ञानिक तथ्यों-तत्वों को विश्लेषित कर उन्हें समझा जा सकता है। जो विकास के लिये आवश्यक है यह सत्य है कि कोई भी कला स्थिर नहीं रहती या नहीं रह सकती। विकास का अर्थ ही परिवर्तन है।

यह परिवर्तन अच्छे के लिये है कि नहीं; यह अंशतः प्रत्येक पीढ़ी के चरित्र व प्रवृत्ति पर निर्भर करता है जो विभिन्न जीवन पद्धति से निर्धारित होता है। ग्राह्यता और सौंदर्य तत्व की व्याख्या समय के साथ बदलती है। आज जो भी हो रहा है वह संगीत की समृद्धि का अंश है। परन्तु यह प्रयोग व्यावहारिक दृष्टिकोण से हमारी परंपरा को कितना समृद्ध करेंगे यह तो आने वाली पीढ़ी ही बतायेगी।

उत्तर प्रदेश में उच्च शिक्षा में मुस्लिमों की वर्तमान स्थिति : एक विश्लेषण

❐ प्रा. योगेन्द्र बेचैन

भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। इसमें सभी धर्मों के स्त्री-पुरूष हैं। इनमें से हिन्दू बहुसंख्यक के रूप में मुसलमान, सिक्ख, क्रिश्चियन, बौद्ध, जैन आदि अल्पसंख्यक के रूप में धार्मिक सहिष्णुता से रह रहे हैं। इन अल्पसंख्यक में जब हम संख्या की बात करें तो मुस्लिमों की संख्या सर्वाधिक है। आजादी के बाद अब मुस्लिमों की आबादी की हिस्सेदारी भारत की कुल आबादी में महत्त्वपूर्ण रही है। इस समय भारत में मुस्लिमों की कुल आबादी १३८,१८८,२४० है जबकि बहुसंख्यक ८२७,५७८,८६८ हैं। यह देखने की बात है कि मुस्लिम आबादी जहाँ १९६१ में १०.६९ प्रतिशत थी वहीं २००१ में १३.४३ प्रतिशत हो गई है। इससे स्पष्ट है कि भारत में मुस्लिम के बड़े हिस्से के रूप राष्ट्रीय धारा में शामिल हैं।

यदि प्रदेश स्तर पर मुस्लिम आबादी के आंकड़े देखे जाएं तो (घटते क्रम में) विभिन्न प्रदेशों में लक्षद्वीप (९५.५%), जम्मू कश्मीर (६७%), आसाम (३०.९%), पश्चिम बंगाल (२५.२%), केरल (२४.७%), उत्तर प्रदेश (१८.५%), बिहार (१६.५%), ऐसे राज्य हैं जहाँ आबादी में मुस्लिमों की मुख्य भूमिका है। उत्तर प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में मुस्लिम आबादी भारत की कुल आबादी की तुलना में वर्ष १९९६ से वर्ष २००१ तक लगभग तीन गुना बढ़ी। भारतीय जनगणना २००१ यह इंगित करती है कि भारत में मुस्लिम आबादी का हिस्सा एक महत्त्वपूर्ण अंग है, साथ ही उत्तर प्रदेश में अन्य राज्यों की तुलना में मुस्लिम आबादी का एक अच्छा-खासा भाग है।

यह माना जाता है कि किसी भी देश में रहने वाली पूर्ण जनसंख्या की शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक, सामाजिक स्थिति उस देश की सम्पूर्ण स्थिति को व्यक्त करती है। इनमें शिक्षा महत्त्वपूर्ण है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत की सांस्कृतिक विविधता को किस प्रकार अभिव्यक्त किया जाता है तथा उनमें विशेष रूप से भारत के विशालतम अल्पसंख्यक समुदाय-मुसलमानों को कितना महत्त्व दिया जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यातव्य है कि शिक्षा के तीनों स्तरों प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च स्तर पर मुस्लिम स्थिति क्या है ? शैक्षिक विषमताऐं किन-किन क्षेत्रों या स्तरों पर हैं ? इत्यादि।

आजादी के ६० वर्ष बाद भी संविधान में प्रावधानों के बावजूद मुस्लिमों की शिक्षा की स्थिति अत्यंत दयनीय है। भारतीय संविधान में अनुच्छेद २९ के अनुसार अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि धर्म, जाति, वर्ग, भाषा के आधार पर राज्य की किसी भी शिक्षण संस्था में प्रवेश को नकारा नहीं जा सकता है, इतना ही नहीं अनुच्छेद ३० में यह भी कहा गया है कि राज्य (स्टेट) धर्म या भाषा के आधार पर किसी भी अल्पसंख्यक के प्रबन्धन में चल रहे शिक्षण संस्थान को सहायता देने में भेदभाव नहीं करेगा। इन सब प्रावधानों के बाद भी अल्पसंख्यकों के सबसे बड़े भाग मुस्लिम समुदाय की शैक्षिक स्थिति क्या है ? अथवा शैक्षिक स्थिति जस-की-तस है।

भारत गणतंत्र में लगभग १० वर्ष बाद साक्षरता २८.३१ प्रतिशत थी जो जनगणना २००१ के अनुसार

❐ *प्रवक्ता, शिक्षक शिक्षा विभाग, डी. वी. (पी. जी.) कालेज, उरई (जालौन)*

६५.३८ (पुरूष ७५.८५, महिलाऐं ५४.१६) प्रतिशत हो गई है। लेकिन मोटे आंकड़ों पर न जाकर जरा धर्म/सम्प्रदायों के आधार पर आंकड़ों पर नजर डालें तो कुछ अलग ही स्थिति बयान करते हैं। भारतीय मुसलमानों के सन्दर्भ में साक्षरता दर की स्थिति बहुसंख्यकों की तुलना में ठीक नहीं हैं, मुसलमान देश अन्य समूहों से शिक्षा में पिछड़े हैं। हालांकि यह शैक्षिक पिछड़ापन सीधे-सीधे आर्थिक पिछड़ेपन से जुड़ा है (नसीम अहमद, २००३)।

मुस्लिम आबादी के आधार पर विभिन्न राज्यों में उनकी साक्षरता दर पर नजर डालें तो यह स्पष्ट होता है कि लक्षद्वीप तथा केरल को छोड़कर शेष राज्यों में बहुसंख्यकों की तुलना में मुस्लिम साक्षरता दर अपेक्षाकृत कम है। विशेष रूप से उत्तर प्रदेश तथा बिहार के मामले में पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं की साक्षरता दर लगभग डेढ़ गुना पीछे हैं। हालांकि पश्चिम बंगाल, आसाम, लक्षद्वीप में मुस्लिम पुरूष, महिलाओं की साक्षरता में डेढ़ गुने से कम का अन्तर है।

सच्चर समिति की रिपोर्ट ने भी यह स्पष्ट कर ही दिया है कि उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल और आसाम में मुस्लिम समाज की स्थिति हिन्दू, पिछड़ों और अन्य धार्मिक समुदायों से भी खराब है। यह स्थिति शिक्षा के अभाव के कारण है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि शिक्षा का अभाव क्यों है ? शिक्षा की बदतर स्थिति के लिये कौन-कौन से कारण या कारक हैं ?

विभिन्न अध्ययनों द्वारा यह स्पष्ट हैं कि मुसलमानों में नामांकन की कुल दर, आबादी की अपेक्षा बहुत कम है, यही नहीं ६ से १४ वर्ष की आयु में स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों का प्रतिशत भी मुस्लिमों में औसत आबादी से अधिक है (नेसार अहमद, २००३)। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में मुस्लिमों की शिक्षा हेतु २० हजार से ऊपर मदरसे हैं, परंतु इन मदरसों में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं में से ६० प्रतिशत कक्षा आठ तक पहुँचते-२ अपनी पढ़ाई छोड़े देते हैं (फहीमुद्दीन, २००३)।

इतना ही नहीं मुस्लिम शैक्षिक पिछड़ेपन में ग्रामीण तथा शहरी परिवेश को लेकर भी विभिन्न विषमताऐं हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में २२ प्रतिशत मुस्लिम पुरूष तथा ०.५ प्रतिशत मुस्लिम महिलाऐं ग्रेजुएट हैं। यह विषमता शहरी क्षेत्रों में भी है अर्थात् शहरों में जहाँ ६ प्रतिशत पुरूष तथा इतनी ही मुस्लिम महिलाऐं ग्रेजुएट हैं वहाँ हिन्दुओं में यह प्रतिशत क्रमशः १६ तथा १४ है (नेसार अहमद, २००३)।

राष्ट्रीय स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में मुस्लिम महिला साक्षरता पुरूषों की तुलना में अत्यंत कम है जबकि शहरी स्तर पर पुरूष व महिला साक्षरता में अन्तर ग्रामीण की तुलना में अपेक्षाकृत कम है। उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में ग्रामीण स्तर पर महिला साक्षरता का प्रतिशत पुरूष की तुलना में दो गुना (लगभग) कम है, जबकि शहरी क्षेत्र में पुरूष साक्षरता डेढ़ गुना अधिक है।

इसके अतिरिक्त यदि उच्च शिक्षा में महिला शिक्षा की बात करें तो यह स्पष्ट है कि १९९० से ९७ तक ग्रेजुएट स्तर पर महिला नामांकन बढ़ा है परन्तु पोस्ट ग्रेजुएट स्तर पर घटा है (३२.८% से ३०.५%)। इसमें अतिरिक्त बी०एड०/बी०टी०सी० पर पुनः नामांकन में ०.९% की कमी हुई है (मीरा सेठ, २००१)। उत्तर प्रदेश में यह स्थिति ज्यादा चिन्ताजनक है।

उच्च शिक्षा में मुस्लिम समुदाय की स्थिति से सम्बन्धित विभिन्न महत्त्वपूर्ण अध्ययनों ने यह दर्शाया है कि उत्तर प्रदेश में मुस्लिम समुदाय की शैक्षिक स्थिति उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में अत्यन्त गम्भीर है। सच्चर समिति (२००६) ने उत्तर प्रदेश, केरल, बंगाल, बिहार और पूर्वोत्तर राज्यों के सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि मुस्लिम समुदाय की रोजगार,

शिक्षा आदि में स्थिति संतोषजनक नहीं है। इतना ही नहीं रिपोर्ट ने यह भी पाया है कि ७५ फीसदी मुस्लिम बच्चे सरकारी तथा २० फीसदी निजी विद्यालयों में पढ़ते हैं। इनमें से ६-१४ वर्ष तक स्कूल में जाने वालों का औसत करीब ७५ फीसदी, हाईस्कूल तक ४० से ६० फीसदी तथा इंटर तक यह घटकर ३० से ४० फीसदी रह जाता है। स्नातक उत्तीर्ण करने वालों में १५-२० फीसदी जबकि परास्नातक करने वालों की संख्या २ फीसदी के लगभग है।

एन०एस०एस०ओ० (६१वें राऊण्ड डाटा, प्रोविजनल) सर्वेक्षण के अनुसार सामाजिक-धार्मिक श्रेणी के आधार पर वर्तमान मुस्लिम समुदाय के सम्बन्ध में कुल ग्रेजुएट २३.६ लाख हैं, जबकि डिप्लोमा तथा सर्टिफिकेट वाले २.७ लाख हैं, जबकि इस शैक्षिक श्रेणी में आने वाले (२० वर्ष तक के छात्र छात्राएं) कुल छात्र/छात्राओं का प्रतिशत क्रमशः ६.७ तथा ०.०७ है। इनमें मुस्लिम समुदाय का प्रतिशत क्रमशः ३.६ तथा ०.४ है जबकि शैक्षिक आधार पर इनमें से केवल ६.३ प्रतिशत तथा ६.८ प्रतिशत क्रमशः ग्रेजुएट तथा डिप्लोमा/सर्टिफिकेट से सम्बन्धित हैं।

मुहम्मद मुज़म्मिल (२००५) के अध्ययन के विश्लेषण के अनुसार उ०प्र० में मुस्लिम समुदाय आर्थिक रूप से पिछड़े हैं। जनगणना २००१ में भारत के मुस्लिम समाज की आर्थिक सामाजिक स्थिति से प्राप्त आंकड़े यह दर्शाते हैं कि मुस्लिम समाज में आर्थिक असमानता है तथा स्थिति अत्यंत दयनीय है।

फहीमुद्दीन (२००५) के अध्ययन के अनुसार अधिकतर मुस्लिम छात्र/छात्राऐं बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं तथा मुस्लिम बच्चों को मिशनरी स्कूलों या सरकारी स्कूलों में पढ़ाना नहीं चाहते हैं। इतना ही नहीं मदरसों में पढ़ने वाले छात्रों/छात्राओं में ४२ प्रतिशत विज्ञान, ७० प्रतिशत गणित, ५७ प्रतिशत अंग्रेजी में अध्ययन करते हैं। लेकिन यह जानना भी जरूरी है कि यह अध्ययन इस पर बल नहीं देता कि उच्च शिक्षा में प्रवेश की स्थिति क्या है ? उच्च शिक्षा में प्रवेश लेने वाले कितने मुस्लिम विद्यार्थी यह शिक्षा पूर्ण कर पाते हैं ? यदि नहीं पूर्ण कर पा रहे हैं तो उसके कारण क्या हैं ? शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक कारण क्या हैं ?

उदय यादव (२००५) द्वारा सामाजिक स्थिति से सम्बन्धित मुस्लिम समुदाय के अध्ययन के अनुसार ४३ प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करती है तथा मुसलमानों की साक्षरता ४६ प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश की दृष्टि में मुस्लिम साक्षरता को जमीनी स्तर पर जाँचने की जरूरत है। यह साक्षरता उत्तर प्रदेश में किस प्रकार परिलक्षित होती है ? मुस्लिमों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का उनकी उच्च शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ रहा है ? जैसे प्रश्न अनछुए।

नेसर अहमद (२००३) के अध्ययन के अनुसार अधिकतर मुस्लिम अन्य समूहों से पिछड़े हैं। यह पिछड़ापन शैक्षिक रूप से अधिक है। मुसलमानों में साक्षरता दर का प्रतिशत पुरूषों के केस में ५६.५ प्रतिशत तथा महिलाओं के सन्दर्भ में ३८.० प्रतिशत है इसके अलावा नामांकन ६२.२ प्रतिशत पुरूष तथा ५६.६ प्रतिशत महिलाओं के सम्बन्ध में है, जबकि ६ से १४ वर्ष के बच्चों में मुस्लिमों के शिक्षित बच्चे ६.४ प्रतिशत (लड़के) तथा ७.७ प्रतिशत (लड़कियाँ) हैं। इस अध्ययन के अतिरिक्त यह जानना आवश्यक है कि उच्च शिक्षा को लेकर मुस्लिमों में स्त्री-पुरूष, ग्रामीण-शहरी तथा विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तरों के सन्दर्भ में वर्तमान स्थिति क्या है ?

योगेन्द्र सिकन्द (१९९४) द्वारा किए गए अध्ययन में मुस्लिम महिलाऐं शिक्षा की दृष्टि से अत्यन्त पीछे हैं। इसके पीछे राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक

कारणों को जानना आवश्यक है।

एन०सी०ई०आर०टी० के श्री विश्व स्वरूप गुप्ता द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार पश्चिमी उ०प्र० के चार जिलों एटा, इटावा, मुरादाबाद और मुजफ्फर नगर में किए गए १११ स्कूलों के अध्ययन से यह पता चलता है कि हिन्दू मुस्लिम आबादी अनुपात ७६:२१ था परन्तु स्कूलों में बच्चों का नामांकन ६३:७ था। हिन्दुओं के बच्चों का पास प्रतिशत, मुसलमानों की तुलना में अधिक था। उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दू एवं मुस्लिम बच्चों की शिक्षा नामांकन में इस अन्तर के समाजशास्त्र का अन्वेषण करने की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त एस०एम० साजिद (२००३) द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार अध्ययन यह दर्शाता है कि अधिकतर मुस्लिम माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा हेतु सरकारी अथवा पब्लिक स्कूलों/संस्थाओं को कम महत्त्व देते हैं। इसके अतिरिक्त साक्षरता तथा उच्च शिक्षा के मामले में मुस्लिमों की शिक्षा में स्त्री एवं पुरूष शिक्षा को लेकर अत्यन्त अन्तर झलकता है। पढ़ाई पूरी कर चुकी महिलाओं का प्रतिशत मात्र ३ है जबकि शहरों में महिलाऐं जो १० वीं तक पढ़ी हैं, का प्रतिशत १४ है।

मु० एस० जमान (२००१) के शोध से यह बात स्पष्ट है कि महिला शिक्षा को लेकर मुस्लिम समुदाय में भी शैक्षिक रूप से पिछड़ी लड़कियों में लड़कियों का नामांकन अत्यंत कम है। लड़कियों का पीछे रहने, शिक्षा में लिंगभेद से कितना जुड़ा है ? यह मुस्लिम समुदाय के सन्दर्भ में जांचने की आवश्यकता है।

इसमें से कोई दो राय नहीं है कि भारत में मुस्लिमों की आबादी की महत्त्वपूर्ण भागीदारी इस गणतंत्र को अक्षुण रखे है। भारतीय संविधान में जहाँ सभी के लिये शिक्षा (ऐजूकेशन फार ऑल, ई. एफ. ए.) की बात होती है वहाँ पर अल्पसंख्यकों को छोड़ने की वकालत नहीं की जा सकती है। इतना ही नहीं ईयर २००० एसेसमेंट ऐजूकेशन फॉर आल, के अनुसार समानता तथा समरसता के साथ शिक्षा सभी के लिये जरूरी है। मुस्लिमों की विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर स्थिति की जांच-पड़ताल करने की आवश्यकता है, जिससे प्राप्त आंकड़ों से मुस्लिमों के लिये शैक्षिक कार्य योजना/नीति बनाने में मदद मिल सकती है। इस दिशा में वर्तमान सरकार द्वारा जारी किये गये प्रयासों को व्यावहारिकता के धरातल पर देखने की अत्यंत आवश्यकता है।

सन्दर्भ : रिपोर्ट/सरकारी ग्रंथ

- शरीफ, अबू सालेह, १९९९, इंडिया ह्यूमेन डवेलपमेंट रिपोर्ट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली
- एन०एस०एस०ओ०, २००१, रिपोर्ट नं० ४६८, एम्प्लायमेंट एण्ड अनएम्प्लायमेंट सिचुएशन अमंग रिलीजियस ग्रुप्स इन इंडिया, १९९९-२०००.
- प्रोवीजनल स्टेस्टिक्स, सितम्बर २००२, सेवंथ आल इंडिया स्कूल ऐजूकेशन सर्वे, एन०सी०ई०आर०टी०, नई दिल्ली।
- इंडिया : ईयर २००० एसेसमैंट, इंडिया, २००० एम०एच०आर०डी०, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नीपा नई दिल्ली।
- सेनसश ऑफ इंडिया, २००१, दी फर्स्ट रिपोर्ट ऑन रिलीजियस डाटा, रजिस्ट्रार जनरल तथा सेनसश कमीशन, नई दिल्ली।
- लर्निंग : दी ट्रेजर विदइन, १९९६, रिपोर्ट टू येनेस्को, यूनेस्को, पेरिस।
- नेशनल करिकूलम फ्रेमवर्क फॉर स्कूल ऐजूकेशन, २००५, एन०सी०ई०आर०टी०, नई दिल्ली।
- प्रेस रिलीज, कैंप जयपुर, अगस्त २४, २००५ गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, सरदार पटेल भवन, नई दिल्ली।

- सच्चर समिति रिपोर्ट, २००६,
- फिफ्थ सर्वे ऑफ ऐजूकेशन रिसर्च, १६८८-६२, ऐब्सट्रेक्टर, वोल्यूम II, एन०सी०ई०आर०टी०, नई दिल्ली।
- फोर्थ सर्वे ऑफ ऐजूकेशन रिसर्च, १६८२, एन०सी०ई०आर०टी०, नई दिल्ली।
- सिक्सथ सर्वे ऑफ इंडिया ऐजूकेशन, १६८८, एन०सी०ई०आर०टी०, नई दिल्ली।
- प्रोब, १६६६, पब्लिक रिपोर्ट ऑफ बेसिक ऐजूकेशन इन इंडिया, सेन्टर फार डेवलपमेंट इकानामिक्स, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- शरीफ, अबू सालेह, १६६८, रिलेटिव इकोनोमिक एंड सोशल डेप्रीविए शन ऑफ इंडियन मुस्लिम्स, जर्नल ऑफ ऑबजेक्टिव्स स्टडीज, जुलाई १६६८
- सिकंद, योगेंदर, १६६४, द मेवीन्स ऑफ मेवात, जर्नल ऑफ ऑबजेक्टिव्स स्टडीज, जनवरी, १६६४.
- अहमद इम्तियाज, १६८१, मुस्लिम ऐजूकेशन बैकवार्डनेश : एन इनफिरिएंशल ऐनॉलेशिस, ई. पी. डब्लू., १६ जून, १०६६-७५

पुस्तकें

- इम्तियाज अहमद, १६७८, कास्ट, सोशल स्ट्रेटिफिकेशन अमंग मुस्लिम इन इडिया, दिल्ली।
- फहीमुद्दीन, २००४, मार्डनाइजेशन ऑफ मुस्लिम ऐजूकेशन इन इंडिया, सौजन्य बुक, नई दिल्ली।
- मोहम्मद, शान, २००४, गिल्म्पस ऑफ मुस्लिम ऐजूकेशन ऑफ इंडिया, सौजन्य बुक, नई दिल्ली।
- वसे, अख़्तरूल, २००२, इंडियन मुस्लिम्स : यसटरडे, टुडे एंड टुमारो।
- शरीफ, अबू सालेह, १६६६, इंडिया ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस, दिल्ली।
- एन०एस०एस०ओ०, २००१, रिपोर्ट नं० ४६८ एम्प्लायमेंट एण्ड अनएम्प्लायमेंट सिचुएशन अमंग रिलीजियस ग्रुप्स इन इंडिया, १६६६-२०००.
- हमीद, सईदा सैयदेन, वॉयास ऑफ द वॉयसलैस : स्टेटस ऑफ मुस्लिम वूमेन इन इंडिया, राष्ट्रीय महिला आयोग।
- जमान, मु. एस., २००१ प्राब्लम्स ऑफ मॉइनारिटी ऐजूकेशन, हैदराबाद बुलतिक कार्पोरेशन।

पत्र-पत्रिकायें

- रोल ऑफ यूनिवर्सिटी इन एमपावरिंग वीकर सेक्सन ऑफ दी सोशायटी, २००५ वोल्यूम ४३, नं० ४७, यूनिवर्सिटी न्यूज, एम आई यू हाउस, नई दिल्ली।
- योजना, २००५, वर्ष : ४६ अंक ६, योजना भवन, नई दिल्ली।
- दक्षिण ऐशियाई शिक्षा सम्मेलन, १६६६, लेखसार, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
- रूरल ऐजूकेशल, एटेट्स एण्ड ट्रेंड, २००४, आई०सी०एस०एस०आर०, डिसकसनपेपर, नई दिल्ली।
- हस्तक्षेप, सहारा समय, ५ सितम्बर, २००५, लखनऊ।
- हंस, अगस्त २००३ नई दिल्ली।
- दैनिक जागरण, कानपुर, २ दिसम्बर, २००६।
- दैनिक जागरण, कानपुर, ३ दिसम्बर, २००६।

१८५७ का विद्रोह और नागपुर

❐ डॉ. (श्रीमती) शुभा जौहरी

१८५७ में जब उत्तरी भारत में विद्रोह आरंभ हुआ, नागपुर और आस-पास के इलाके ऊपर से शांत थे। परंतु भीतर ही भीतर लोगों में और शासकीय परिवारों में प्रचुर मात्रा में रोष व्याप्त था। नागपुर के लोग अंग्रेजों के न्यायरहित फैसलों से और उनके तोड़े हुये वायदों से अत्यधिक अप्रसन्न थे। नागपुर का राज्य अत्यंत अनुचित ढंग से अंग्रेजी सम्राज्य में विलीन कर लिया गया। राज परिवार को यह अधिकार भी नहीं दिया गया कि वे किसी पारिवारिक सदस्य को गोद लेकर अंतिम शासक रघुजी तृतीय का उत्तराधिकारी नियुक्त कर सकें। भोंसले परिवार की पारिवारिक संपत्ति को जब्त कर उनकी सरेआम नीलामी की गई।

अंग्रेज अफसरों के व्यवहार से भोंसले राजपरिवार की रानियों को बार-बार अपमानित होना पड़ा। इन सबका जनता की सामूहिक मानसिकता पर प्रतिकूल असर पड़ा और जनता इन सबसे अत्यंत अप्रसन्न थी। इसी तरह की भावनायें उतरी भारत के उन स्थानों में भी व्याप्त थीं जहाँ के लोगों ने विद्रोह कर दिया परंतु नागपुर क्षेत्र में विद्रोह की आग नहीं भड़क सकी।

१८५७ का विद्रोह किसी नियमित योजना के अनुसार नहीं हुआ। यह स्थानीय सैनिकों के आकस्मिक विद्रोह और जनता के समर्थन से प्रारंभ हुआ और आग की तरह कई स्थानों में फैल गया। यह विद्रोह एक प्रकार से भारतीय जनता की अभिव्यक्ति थी जो अंग्रेजों के अत्याचारों से और धोखेबाजी से परेशान हो गई थी। विद्रोह का जनता को समर्थन प्राप्त था। इस विद्रोह को शुरू करने के लिये कोई नेता नहीं आये। विद्रोह के शुरू होने के बाद विद्रोह को कुछ विशेष लोगों का नेतृत्व प्राप्त हुआ।

विद्रोह के आकस्मिक आरंभ के बावजूद यह कहना अनुचित होगा कि इसकी कोई भी योजना नहीं थी। किसी प्रकार के विद्रोह की योजना बन रही थी, इसकी जानकारी है परंतु इन योजनाओं को पूरी तरह बनने के पहले ही विद्रोह आरंभ हो गया। विद्रोह से पहले देश के कई हिस्सों में चपातियाँ बाँटी गई थीं जो लोगों को सूचना दे रही थीं कि वे विद्रोह के लिये तैयार हो जायें। नागपुर में भी विद्रोह शुरू होने के काफी पहले चपातियाँ बाँटी गईं। अधिकांश जनता ने इसका महत्व नहीं समझा। परंतु नागपुर का शासन चौकन्ना हो गया। नागपुर के मुसलमानों में कुछ बेचैनी देखी गई और नागपुर का प्रशासन उन पर विशेष ध्यान देने लगा। मई १८५७ के समय जब उत्तरी भारत में विद्रोह फैल रहा था, नागपुर में उपस्थित सैनिक टुकड़ियाँ इस प्रकार थीं - एक घुड़सवार दस्ता, तोपखाना और पैदल सैनिकों की टुकड़ी, घुड़सवारों में अधिकतर मुसलमान थे और पैदल सैनिकों में अधिकतर उत्तर भारतीय थे। घुड़सवार सैनिक नागपुर के टाकली नामक जगह पर स्थित थे। इनके अलावा कुछ और सैनिक टुकड़ियाँ कामठी में थीं जो नागपुर से लगभग १२ मील दूर था। कामठी में मद्रास सेना के घुड़सवार पैदल सैनिकों के दो दस्ते और यूरोपीय तोपखाने के दो दल उपस्थित थे।[1]

मेरठ और दिल्ली में हुये विद्रोह के समाचार नागपुर में मई १८५७ में आ गये थे। इस बात का अंदेशा मिल रहा था कि इन समाचारों के आने के बाद

❐ प्रपाठक, इतिहास विभाग, राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर (महाराष्ट्र)

नागपुर में भी विद्रोह का वातावरण बन रहा था। कामठी के घुड़सवार सैनिक और नागपुर शहर के मुसलमानों के बीच किसी प्रकार की योजना बन रही थी। नागपुर के डिप्टी कमिश्नर श्री आर. एस. एलिस की यह खबर थी कि रात में ये अपनी सभायें कर रहे थे। शहर के इसाईधर्म के प्रचारकों को भी यह आभास मिल रहा था कि जनता में किसी प्रकार की खलबली थी। वास्तव में विद्रोह की एक योजना बन रही थी।[२] यह तय किया गया कि विद्रोह का प्रारंभ जून १३-१४, १८५७ की रात से किया जायेगा। योजना के अनुसार मध्य रात्रि के समय मोतीबाग नामक इलाके से एक आग का गुब्बारा आकाश में छोड़ा जाने वाला था। इस संकेत के मिलने के बाद टाकली के घुड़सवार नगर की ओर प्रस्थान करते जो लगभग तीन मील दूर था। वहाँ से सैनिकों और नागरिकों की संयुक्त रूप से रेसिडेन्सी पर आक्रमण करने की योजना थी।[३] लेकिन समय से कुछ घंटे पहले कामठी घुड़सवार दल के कुछ सैनिकों को सिवनी की ओर प्रस्थान करने का आदेश मिल गया। इससे विद्रोह की योजना में एक अवरोध आ गया। तब विद्रोहियों ने निश्चय किया कि पैदल सैनिकों को विद्रोह में सम्मिलित किया जाये। उन लोगों ने एक दफेदार दिलदार खाँ को, पैदल सैनिकों से अपील करने के लिये, उनके पास भेजा। परंतु पैदल सैनिकों ने दिलदार खाँ को गिरफ्तार कर लिया। इससे विद्रोह की योजना का पर्दाफाश हो गया।"[४]

इस बीच डिप्टी कमिश्नर श्री एलिस और असिस्टेंट कमिश्नर श्री मौरिस को जेल के सब इन्सपेक्टर ने सूचना दी कि कामठी के घुड़सवार सैनिकों में कुछ संदेहजनक हलचल थी। इस सैनिक टुकड़ी के सेकेण्ड अफसर कप्तान वुड के घर में कुछ घुड़सवार सैनिक रात के समय अपने घोड़ों पर लगाम कसते पाये गये, जबकि उन्हें इस प्रकार का कोई आदेश नहीं मिला था। कप्तान वुड के कर्मचारी ने उन्हें समाचार दिया कि घुड़सवार सैनिकों में कुछ षड़यंत्र की बात चल रही थी।[५] इस समय तक १३ जून १८५७ की रात को दस बज रहे थे। इन सब समाचारों के मिलने के बाद अंग्रेज महिलाओं को उसी समय नागपुर से कामठी भेज दिया गया।

कामठी के सैनिकों को शीघ्र नागपुर की ओर प्रस्थान करने का आदेश दिया गया। मेजर बेल ने तोपखानों को नागपुर शहर के प्रवेश द्वार और मार्ग पर तैनात कर दिया। मद्रास सेना की एक छोटी टुकड़ी को सीताबड़ी पहाड़ पर तैनात कर दिया गया। इन व्यवस्थाओं के बाद कामठी के सैनिकों की प्रतीक्षा थी। जब तक ये सैनिक नागपुर नगर में पहुँचते, नागपुर में स्थित पैदल सेना और तोपखाना के सैनिकों के व्यवहार पर पूरा ध्यान रखा गया। पैदल सैनिकों के दो उत्तराधिकारी उपस्थित नहीं थे, इसलिये कमिश्नर प्लाउडेन के व्यक्तिगत असिस्टेंट लेफ्टिनेंट कंबरलेज ने इस सैनिक टुकड़ी का संचालन अपने हाथ में ले लिया कंबरलेज पहले इस पैदल सैनिक के दस्ते में काम कर चुके थे। वे जब संचालन हाथ में लेने के लिये पहुँचे तो पैदल सैनिक पहले ही क्रमबद्ध पंक्तियों में सावधान खड़े थे और आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे। उधर कप्तान प्लेफेयर जो कि तोपखाने के सैनिकों की कमान संभालने पहुँचे, उन्होंने सैनिकों को पूरी तरह से आदेशों के पालन के लिये तत्पर पाया। यह निश्चित करने के बाद कि परिस्थिति नियंत्रण में थी, एलिस ने नागपुर नगर का दौरा किया और पाया कि सभी जगह शांति थी। विद्रोहियों को अवश्य ही इस बात का एहसास हो गया कि प्रशासन को उनकी योजना का पता चल गया था और अधिकारी सतर्क हो गये थे। आग का गुब्बारा छोड़ा ही नहीं गया। टाकली के घुड़सवार सैनिकों को जब दिलदार खाँ के गिरफ्तार होने का पता चला तब

उनकी हिम्मत टूट गई और जो घोड़ों पर जीने कस रहे थे उन्होंने घोड़ों को खोल दिया। बाद में घुड़सवार सैनिकों के घोड़े छीन लिये गये और उन्हें निःशस्त्र कर दिया गया। उनसे कहा गया कि उनका नाम बतायें जो विद्रोह का नेतृत्व कर रहे थे। परंतु उन्होंने कोई नाम नहीं बताया। दिलदार खाँ पर सैनिक मुकदमा चला जिसके फलस्वरूप उसे मृत्यु दंड दे दिया गया।

कुछ दिनों के पश्चात मुख्य विद्रोहियों के बारे में पता चल गया। इसमें तफज्जुल हुसैन खान ने सहायता की जो अंग्रेजों के प्रति वफादार बने रहे। तीन सैनिकों को विद्रोह के लिये अपराधी घोषित किया गया। ये सैनिक थे इनायतुल्ला खाँ, विलायत खाँ और नवाब कादिर खाँ।[६] इन सैनिकों को और साथ में दो मुसलमान नागरिकों को सीताबड़ी किले से लटकाकर फाँसी दे दी गई। इनके अलावा नौ सैनिकों को लंबे कारावास के लिये भेज दिया गया।

इस घटनाक्रम के साथ-साथ अधिकारियों ने आपातकालीन व्यवस्थाएं की। खजाना को सीताबड़ी किले में स्थानांतरित कर दिया गया। हथियारों को सुरक्षित किया गया और तीन महीने की रसद सीताबड़ी किले में जमा कर दी गई। नागपुर के कमिश्नर प्लाउडेन ने समस्त दैनिक समाचार पत्रों के प्रकाशन पर रोक लगा दी।[७]

घुड़सवार दस्ता जिसे निःशस्त्र कर दिया गया था, इसी अवस्था में नवम्बर १८५७ तक रहा। इस समय तक विद्रोह की बात पूरी तरह से दब गई थी। इसके बाद घुड़सवार सैनिकों को फिर से शस्त्र दिये गये और उन्हें सम्बलपुर भेज दिया गया।

१३ जून १८५७ की रात में जिस विद्रोह की योजना बनी थी वह पूरी तरह विफल हो गया। उस रात के बाद और किसी प्रकार का विद्रोह प्रदर्शन नहीं हुआ।

यह प्रश्न स्वाभाविक है कि नागपुर में विद्रोह क्यों विफल हो गया जबकि अन्य जगहों पर यह आग की तरह फैल गया था। नागपुर में भी पर्याप्त कारण विद्यमान थे जिनसे विद्रोह किया जा सकता था। संभवतः नागपुर में एक प्रशस्त नेता की कमी थी जो विद्रोह का नेतृत्व कर उसे सफल बना सकता।[८] इस भूमिका के लिये सबसे उपयुक्त संभवतः रानी बाकाबाई थीं। वह रघुजी द्वितीय की विधवा थीं और राजपरिवार में सबसे बड़ी थीं। नागपुर और बाहर के लोग भी उनका सम्मान करते थे और उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि विद्रोह में उनका नेतृत्व या सिर्फ समर्थन रहता तो विद्रोह का कुछ और ही रूप देखने को मिलता। उनके आह्वान पर जनता अवश्य ही विद्रोह में शामिल हो जाती। अक्सर उनकी तुलना झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई से की जाती है जिन्होंने विद्रोह में नेतृत्व प्रदान कर और महत्वपूर्ण योगदान कर अपना नाम अमर कर लिया।

परंतु रानी बाकाबाई ने बिल्कुल ही अलग मार्ग चुना। रानी बाकाबाई ने सभी महत्वपूर्ण व्यक्तियों को एक सभा में बुलाया। इन व्यक्तियों में उनके परिवार के सदस्य थे, प्रतिष्ठित ब्राह्मण मुसलमान और मराठी नागरिक थे और वे सभी लोग थे जिनको समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त था। कुल मिलाकर ४००-५०० लोग रहे होंगे। इतने लोगों के सामने उन्होंने ऐलान किया कि वे विद्रोह के बिल्कुल विरूद्ध हैं। उपस्थित लोगों से उन्होंने आग्रह किया कि वे भी विद्रोह से कोई सरोकार न रखें।[९] यदि उन्हें पता चला कि कोई विद्रोह के बारे में जानता है। या समर्थन दे रहा है तो उसे रानी की अप्रसन्नता का सामना करना पड़ेगा। रानी बाकाबाई ने यह भी कहा कि यदि उन्हें पता चला कि कोई विद्रोह का समर्थन कर रहा है तो उसे पकड़वा देंगी, भले ही वह उन्हीं के परिवार का क्यों न हो।[१०] उनके इस घोषणा और चेतावनी के बाद विद्रोह की बात पूरी तरह से दब

गई।

इसके बारे में कई इतिहासकारों ने लिखा है कि क्या होता यदि नागपुर का विद्रोह सफल हो जाता। जो घटना नहीं हुई उसके बारे में अनुमान ही लगाया जा सकता है। संभवतः यदि नागपुर में विद्रोह सफल हो जाता तो इसी तरह की प्रतिक्रिया दक्षिण एवं पश्चिम के क्षेत्रों में भी देखने को मिलती। इनमें हैदराबाद, सतारा, बेलगांव, कोल्हापुर, आरकोट और इनके भी आगे के सभी क्षेत्र आ जाते हैं जहाँ अंग्रेजों के अत्याचार से जनता परेशान थी। लेकिन यह सब अनुमान की बातें हैं, वस्तुतः विद्रोह की आग जो उत्तर भारत से दक्षिण की ओर बढ़ रही थी नागपुर पहुँचते ही शान्त हो गई।

संदर्भ ग्रंथ

१. आर. वी. रसेल (संपा.), सेन्ट्रल प्रीविन्सेस डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, अंक, अ (बाम्बे - १९०८) पृ. ५१-५४
२. प्रा. डॉ. वक्कानी, आधुनिक विदर्भ का इतिहास - पृ. १८
३. डी. पी. मिश्र (संपा.), मध्य प्रदेश में स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास (म.प्र., २००२), पृ. ७८
४. वही पूर्वोक्त, पृ. ७९
५. वही पूर्वोक्त, पृ. ७८
६. वही पूर्वोक्त, पृ. ७९
७. शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ (नागपुर १९५५), पृ. १३५
८. एन. बी. व्यास - नागपुर नगर एवं स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास (नागपुर १९८१), पृ. २१
९. डी. पी. मिश्र, पूर्वोक्त, पृ. ८०
१०. यादव माधव काले, नागपुर प्रांताचा इतिहास, पृ. ५३५
११. डी. पी. मिश्र - पूर्वोक्त, पृ. ८०

इतिहास दृष्टि

मौर्य काल से गुप्त काल तक के सिंचाई के साधनों का एक वैज्ञानिक अवलोकन

❑ डॉ. शंकरलाल यादव

वर्तमान युग का कृषक २१वीं सदी के वैश्वीकरण एवं वैज्ञानिक युग में प्रवेश कर चुका है लेकिन कुछ कृत्रिम साधनों को छोड़कर ज्यादातर परम्परागत सिंचाई के साधनों का ही प्रयोग आज भी कर रहा है। कृषकों को उत्तम फसल एवं अन्य कृषिगत उत्पादनों के लिए सिंचाई की आवश्यकता प्राचीन काल से ही रही है। 'प्राचीन काल में ज्यादातर प्राकृतिक साधनों द्वारा सिंचाई होती थी। यहाँ की जलवायु तथा प्राकृतिक स्थिति से ही भारत देश का अपना अलग अस्तित्व है। जिससे यहाँ अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग सिंचाई के साधन थे। जैसे लाट देश में सिंचाई वर्षा द्वारा, सिन्धु देश में नदियों द्वारा, द्रविड़ देश में तालाबों द्वारा उत्तरापथ में कुओं से और पूर्वी क्षेत्रों में बाढ़ से सिंचाई की जाती थी।'[१]

मौर्य काल की सिंचाई व्यवस्था पर प्रकाश डालने वाले साधनों में मेगस्थनीज एवं उसके अनुवर्ती यूनानी लेखकों के ग्रन्थ, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, अशोक के अभिलेख, शक शासक रूद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख तथा कुछ पुरातात्विक अवशेष प्रमुख हैं। मेगस्थनीज के अनुसार, भारत की कृषि योग्य भूमि का अधिकांश भाग सिंचित है; एक वर्ष में दो बार वर्षा होती है। एक बार जाड़े की ऋतु में जब गेहूँ बोया जाता है और दूसरी बार गर्मी में, जौ, तिल, ज्वार आदि की बुवाई के लिए लाभदायक होती है। देश के सभी भागों में पर्याप्त वर्षा होने के कारण अथवा नदियों के पानी की उपलब्धता के कारण नमी रहती है।[२]

स्ट्रैबो ने पंजाब तथा पश्चिमोत्तर भारत में पहाड़ी क्षेत्रों में पर्याप्त वर्षा का उल्लेख किया है। जिसका कारण सम्भवतः उन प्रदेशों की भौगोलिक स्थिति थी।[३] स्ट्रैबो ने लिखा है कि मिश्र की भाँति मौर्यों के शासनकाल में अग्रोनोमोई संज्ञक अधिकारी भू-मापन तथा नदियों की देखभाल करता था और नहरों/नालियों के माध्यम से खेतों के सिंचाई के लिए सभी कृषकों को पर्याप्त मात्रा में पानी उपलब्ध कराना सुनिश्चित करता था।[४]

ग्रीक लेखक डायडोरस ने भारत में साल में दो बार वर्षा तदनुसार दो फसलों का उल्लेख किया है। एक वर्षा जाड़े में होती जब गेहूँ बोया जाता था और दूसरी वर्षा ग्रीष्म ऋतु में होती थी, जब ब्रीही, तिल, प्रियंगु आदि बोए जाते थे।[५]

कौटिल्य के अनुसार कृषि भूमि की सिंचाई के लिए राजा को चाहिए कि नदियों पर बाँध बनवाए और वर्षा के पानी को बड़े जलाशयों में संचित कराये इसके अतरिक्त अर्थशास्त्र में भी सिंचाई के चार प्रकार के साधनों का विवरण है जो कृत्रिम साधन निम्न हैं -

प्रथम-हाथ से कुएं आदि से पानी खीचकर, दूसरा-किसी अन्य स्थान से कन्धे पर/बैलगाड़ी द्वारा पानी लाकर, तृतीय-नालों/नहरों के पानी से और चतुर्थ-नदियों के स्रोतों, झीलों तथा कुएँ के पानी से, सिंचाई के साधनों का वर्णन किया है साथ ही इन साधनों के सिंचाई करों का भी वर्णन किया है, यदि कुएँ से सिंचाई की गयी तो १/५ भाग, बैलगाड़ी द्वारा १/७ भाग, नहरों द्वारा १/३ भाग और नदियों स्रोतों झीलों द्वारा १/४ भाग सिंचाई के रूप में कृषक द्वारा देय था।[६]

इसके साथ-साथ कौटिल्य ने यह भी बताया है

❑ *व्याख्याता, इतिहास, एस. बी. डी. एम. बी. मेजा रोड, इलाहाबाद (उ. प्र.)*

कि वर्षा कब और कितनी लाभदायक होती है - यदि कुल वर्षा का एक हिस्सा श्रावण-कार्तिक में और दो हिस्सा भाद्र-आश्विन में पानी बरसे तो वह फसल के लिए लाभकारी होती है। कौटिल्य ने वर्षा के पूर्वानुमान करने के लिए भी लक्षण बताए हैं - जब बृहस्पति मेष राशि से वृष राशि में संक्रमण करे; शुक्र की उदयास्त गति नौ तिथियों में संचरित हो और सूर्य में चारों और मंगल दृष्टिगोचर हो तो अच्छी वर्षा होनी चाहिए। निरन्तर सात दिन में तीन बार वर्षा होना लाभदायक होता है और यदि खिली धूप में बार-बार वर्षा होती रहे तो वह फसल के लिए अति उत्तम है। इसी प्रकार तीन-तीन दिन हल चलने के बाद वर्षा होने से अच्छी फसल होने का अनुमान है। वर्षा का पूर्वानुमान करने के लिए राजकीय कोष्ठागार के सामने वर्षामान (Rain gauze) स्थापित किए गए थे।[७]

चन्द्रगुप्त मौर्य ने भी सिंचाई के लिए पर्याप्त प्रयास किया था जिसके साक्ष्य हमें रूद्रादामन के जूनागढ़ अभिलेख में मिलते हैं, जिसमें लिखा है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के सुराष्ट्र प्रांत के प्रांतपति वैश्य पुण्यगुप्त ने कठियावाड़ क्षेत्र की सिंचाई के लिए गिरिनगर (गिरनार) की सुदर्शन झील के पानी के उपयोग के उद्देश्य से एक सुदृढ़ बांध का निर्माण कराया था। इस प्रकार के कार्यों को चन्द्रगुप्त मौर्य के उत्तराधिकारियों ने भी बराबर प्रोत्साहन दिया। अशोक ने मार्गों के किनारे आठ-आठ कोस की दूरी पर कुएँ खुदवाए थे।[८] कुम्राहार में ४५० फुट लम्बी ४५ फुट चौड़ी और १० फुट गहरी एक नहर के पुरावशेष मिले है जिसे मौर्यकाल का माना गया है और यह अनुमान किया गया है कि यह नहर गंगा एवं सोन नदियों से जोड़ी गई थी।[९] बेसनगर के उत्खनन में डी. आर. भण्डाकर, प्रागमौर्य अथवा मौर्यकाल में निर्मित नहर के अवशेष प्रकाश में लाए हैं। यह नहर आकार में कुम्राहार की उपर्युक्त नहर से काफी छोटी थी।[१०] पुरातात्विक उत्खननों में पाए गए छल्लेदार कुओं (Ring wells) में से अनेक मौर्य युग के हैं जिनका पानी पीने के साथ-साथ सिंचाई के लिए भी उपयोग किया जाता था।

मौर्य युग में सिंचाई के प्राकृतिक साधनों के अतिरिक्त, कुएँ, नहर, तालाब आदि कृत्रिम साधन थे। ज्यादातर यूनानी लेखकों ने वर्षा के अतिरिक्त नदियों द्वारा सिंचाई के साधनों का वर्णन किया है। मेगस्थनीज के अनुसार मिश्र की भाँति भारत में भी सिंचाई विभाग के कुछ अधिकारी नदियों की देखभाल तथा भू-मापन किया करते थे।[११] जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आज की भाँति उन दिनों भी राज्य द्वारा सिंचाई के लिए अलग विभाग की व्यवस्था थी।

उपरोक्त विवरणों के अतिरिक्त सिंचाई में साधनों के अभाव की भी बात कई लेखकों ने कही है। डॉ. यज्ञदत्त शर्मा के अनुसार सम्पूर्ण भारत के अधिकांश भागों में सिंचाई के लिए देव मातृक साधन इतने सुलभ नहीं थे। भारत में कई क्षेत्र कम वर्षा वाले और सूखे की चपेट में आ जाते थे जिनके उदाहरण के रूप में उन्होंने सहगौरा (गोरखपुर) और महास्थान (बंग्लादेश के बोगरा जिला में) वर्णन किया है, और उन्होंने आगे यह भी वर्णन किया है कि चन्द्रगुप्त अपने पुत्र सिंहसेन (बिन्दुसार) को शासन का उत्तरदायित्व सौपकर स्वयं जैन बनकर कर्नाटक चले गये थे।

मौर्योत्तर काल में भी सिंचाई के लिए प्राकृतिक एवं कृत्रिम दोनों प्रकार के साधनों द्वारा सिंचाई की जाती थी। अश्वघोष ने वर्षा वाले बादलों को जीवन का आधार कहा है और ए. एन. बोस, ने वर्ष में तीन बार वर्षा होने का उल्लेख किया है।[१२] पतंजलि के अनुसार प्रत्येक ग्राम में कुछ व्यक्ति सिंचाई के कार्य में दक्ष होते थे और वे कुओं तथा तड़ागों का निर्माण करते थे।

इस काल में भी नदी, नहरों, कुएँ एवं तालाब सिंचाई के प्रमुख साधन थे। मनु ने कुएँ, तड़ाग एवं

बावड़ी के निर्माण को राजा के कर्तव्यों में शामिल किया है। याज्ञवलक्य ने भी इसी प्रकार की सलाह दी है। चुल्लवग्ग में कुल रहट (चक्कवट्टक) तथा पुर (कर्कटक) द्वारा सिंचाई करने का उल्लेख है। सातवाहन राजा हालकृत गाथासप्तशती में अरघट्ट (रहट) का प्राचीनतम उल्लेख आया है।[१३] एम. सी. जोशी के अनुसार रहट से परिचय भारतीयों की प्रथम-द्वितीय सदीं के बाद रोम के साथ व्यापार के दौरान हुआ। मौर्योत्तर काल के शासक भी सिंचाई के साधनों के विकास और संरक्षण में रूचि रखते थे। शक क्षत्रय षोडास (५० ई.) के शासनकाल के मथुरा शिलालेख में एक ब्राह्मण कोषाध्यक्ष द्वारा एक तड़ाग, दो तड़ागों के तटबंधी एवं एक कुंड का निर्माण करने का उल्लेख है।[१४]

इसी काल के शक शासक नहपान (११९-२० ई.) के नासिक गुहालेख में उसकें दामाद उषवदात द्वारा तडागों एवं जलाशयों का निर्माण करने का उल्लेख है। रूद्रदामन के समय सुदर्शन झील का बांध भारी बाढ़ और सुवर्णरेखा, पलाशिनी इत्यादि नदियों के प्रवल प्रवाह के कारण टूट गया। जिसकी मरम्मत एवं पुनः निर्माण अपने निजी कोष से विशाल धनराशि व्यय करके पहले से भी अधिक सुदृढ़ बांध बनवा दिया था। जबकि दरार ४२० हाथ लम्बी ७५ हाथ गहरी थी लेकिन अब तटबन्ध के तिगुना टिकाऊ बना दिया गया।[१५] इतिहासकार एस. के. मैती ने १८१ ई. में काठियावाड़ क्षेत्र के एक ग्राम में तड़ाग बनाए जाने का उल्लेख है।[१६]

उपर्युक्त साहित्यिक एवं अभिलेखीय उल्लेखों की काफी हद तक पुष्टि इस काल के पुरातात्विक अवशेष से भी हो जाती है। उल्लिखित काल में पक्की ईटों से बने छल्लेदार कुएँ (Ring wells) एवं तड़ाग आदि का पीने के पानी के अतरिक्त सिंचाई के लिए भी उपयोग किया जाता था। पुरातात्विक उत्खननों में कुओं, तड़ागों के अवशेष नई दिल्ली, मथुरा, रोपड़, उज्जैन हस्तिनापुर तथा नासिक से प्राप्त हुए हैं।[१७] लखनऊ जिले में मोहनलालगंज के निकट हुलासखेड़ा तथा इलाहाबाद के निकट शृंगवेरपुर में कुषाणकाल के तालाब खुदाई में मिले हैं। उत्तर प्रदेश सरकार के पुरातत्व विभाग, लखनऊ के निर्देशक राकेशचन्द्र तिवारी के निर्देशन में कानपुर देहात के मुसानगर नामक स्थान के उत्खनन में भी कई छल्लेदार कुएँ प्रकाश में आए हैं।[१८]

जब यह बात आती है कि मौर्योत्तर काल में सिंचाई के लिए किन साधनों का प्रयोग अधिक और किनका कम होता था तो इस पर डॉ. आर. एस. शर्मा के अनुसार मौर्योत्तर काल में सिंचाई के लिये नहरों का प्रयोग कुओं तथा तडागों की तुलना में कम होता था। इसीलिए शकों तथा कुषाणों के शासनकाल में कुओं तथा तड़ागों के निर्माण के उल्लेख अधिक हैं जबकि नहरों व अन्न साधनों का विवरण अप्राप्त है। मध्य एशिया के खुरासान प्रदेश में राहुल सांकृत्यायन ने कुषाणकाल की कई नहरों के अवशेषों का उल्लेख किया।[१९]

गुप्त काल में भी ज्यादातर परम्परागत साधनों द्वारा ही सिंचाई की जाती थी। उत्तर भारत में नदियों से अधिकतर सिंचाई होती थी। मानसून की वर्षा से भी खेती के लिए पर्याप्त पानी मिल जाता था। परन्तु मध्यभारत और पश्चिमी भारत में नदियों से सिंचाई सम्भव न थी जिसके कारण तालाब, झील और कुओं द्वारा सिंचाई की जाती थी।[२०]

कालिदास ने उत्तर भारत की जिन नदियों का उल्लेख किया है वे तीन श्रेणियाँ में विभाजित हैं। प्रथम श्रेणी में सिन्धु, गंगा और उसकी सहायक नदियां तथा दूसरी श्रेणी में यमुना, सरयू, सरस्वती, शौण (सोन) मालिनी, महाकोशी, तमसा, सुराभितनया, वेत्रवती, सिन्धु, निविध्या, गन्धवती, गम्भीरा और क्षिप्रा आदि तथा तृतीय श्रेणी में लोहित्य और ब्रह्मपुत्र निम्न हैं। इसके अतिरिक्त कालीदास ने नर्मदा, कावेरी, ताम्रवर्णी और मुरला नदी

को दक्षिण भारत की नदी के रूप में वर्णन किया है, साथ ही यह भी लिखा है कि इन नदियों के जल से आर्यावर्त जीवित रहता है।[२१]

नदियों के अतिरिक्त प्राकृतिक सिंचाई के साधनों के रूप में झीलों तथा झरनों के नाम आते हैं। अमरकोश से ज्ञात होता है कि गुप्त काल में नदियों से नहरें निकाली गईं थीं और तालाब भी बनवाये गये थे। नहरों से नदियों की बाढ़ से हानि को कम करने के लिए भी नालियाँ निकाली जाती थीं।[२२]

वराहमिहिर ने सिंचाई के कृत्रिम साधनों के स्रोत कूप, नहर, तालाब, वापी जलाशय आदि का वर्णन किया है। जिसका उन्होंने विवरण भूमि के विभिन्न प्रकारों तथा उनकी मिट्टी की प्रकृति के आधार पर जमीन के अन्दर जल की स्थिति का विस्तृत विवरण दिया है जिससे कृषकों को इन कृत्रिम साधनों के निर्माण में पर्याप्त मदद पहुँचाते रहे होंगे, सर्वप्रथम पृथ्वी के धरातल पर लगे हुए वृक्षों एवं पौधों के आधार पर उस प्रदेश की जलगत स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि यदि जल-रहित देश में वेद मंजनू का वृक्ष हो तो उसके तीन हाथ पश्चिम दिशा में डेढ़ पुरूष (एक प्रमाण पुरूष = १२० अंगुल नाप, भुजा ऊपर करके खड़ा होने पर पुरूष की जितनी लम्बाई होती है।) नीचे जल होता है, इस खेत में पश्चिम सिरा बहती है यहाँ पर खोदने के समय कुछ चिन्ह मिलते हैं जैसे एक पुरूष प्रमाण के नीचे लोह के समान गन्ध वाली मिट्टी और उसके नीचे कुछ सफेद मिट्टी और उसके नीचे मेढ़क निकलता है। उसके आगे यह भी वर्णित है कि जल-रहित देश में गूलर का वृक्ष हो तो उसमें तीन हाथ पश्चिम दिशा में ढाई पुरूष नीचे जल होता है।[२३]

उपुर्यक्त विवरणों से तत्कालीन ऋषियों के भू-गर्भ विज्ञान सम्बन्धी अन्वेषणों का परिचय कराता है। आज की भाँति उन दिनों भी प्रायः कुओं द्वारा खेतों में सींचने के लिए पुरवट, मोट, रहट आदि यंत्रों का प्रयोग होता था। कूपों के अतिरिक्त तालाब भी कृत्रिम साधन थे। इन्हें बावली, दीर्धिका, जलाशय, बावली तड़ागादि नाम से सम्बोधित किया गया है। इसके अतिरिक्त कृत्रिम साधनों में नहरें भी एक प्रधान साधन थीं अमरकोष में इन्हें 'कर्षू' कहा गया है।

इस प्रकार हम देखते है कि इन दिनों सिंचाई के ऐसे प्रचुर साधन विद्यमान थे जिनका सदुपयोग करके उन्नतशील कृषि उद्योग की स्थापना की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त इन कृत्रिम जलस्रोतों के निर्माण में धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावना व भू-गर्भ विज्ञान व वातावरणीय ज्ञान का परिचय ऋषियों, मनीषियों द्वारा उसका समय-समय पर वर्णन इस काल के सिंचाई सम्बन्धी जानकारियों पर एक अनूठा प्रभाव छोड़ता है। इस पर इतिहासकारों को शिद्दत के साथ अन्वेषण की आवश्यकता है जो एक शोध का विषय है।

यह स्वाभाविक था कि तत्कालीन व्यवस्थाकारों तथा धर्मवेत्ताओं द्वारा जलस्रोतों के निर्माण की पृष्ठभूमि में निहित अध्यात्म एवं धर्म की उत्कृष्ठ भावना समकालीन राजाओं को भी इस कार्य के लिए प्रेरित करती थी यही कारण है कि इन दिनों हम भारतीय नृपतियों को अनेक प्रकार से इस कार्य में संलग्न पाते हैं। अपने राज्य में सिंचाई के पर्याप्त साधनों की व्यवस्था करना कालिदास ने एक धर्मात्मा एवं प्रजा वत्सल राजा के शासन की प्रमुख विशेषता बतलायी है। गुप्त राजाओं ने सिंचाई के साधनों की सुविधा की दृष्टि से यह दायित्व स्थानीय इकाइयों को सौंप दिया था। बृहस्पति ने सिंचाई के साधनों की देखभाल करने वाली अनेक श्रेणियों का उल्लेख किया है।[२४]

उपरोक्त समस्त वैज्ञानिक एवं पुरातात्विक पहलुओं पर अवलोकन से तत्कालीन सिंचाई की यथेष्ट आवश्यकता एवं उपयोगिता का अनुमान करके तत्कालीन जनों ने

व्यक्तिगत, सामूहिक तथा राजकीय आदि प्रयासों से पर्याप्त जलपूर्ति की व्यवस्था कर ली थी। विधिवेत्ताओं व शास्त्रकारों का सहयोगपूर्ण स्वभाव और साथ ही प्रकृति का भी कृपालुपन, जैसे समस्त तत्वों ने मिलकर कृषि को एक समृद्धि रूप देने में पर्याप्त सहायता प्रदान की।

उपरोक्त विवरणों से यह स्पष्ट है कि मनुष्य भले ही कितना विकास वैज्ञानिक एवं तकनीकि क्षेत्र में कर रहा हो लेकिन जब बात कृषि के अंतर्गत सिंचाई की आती है तो यह सब विकास एक स्थान पर धरा रह जाता है। क्योंकि उस समय सिंचाई का प्रमुख स्रोत वर्षा थी वह नियत समयानुसार हो जाती थी और ज्यादातर भू-क्षेत्रों पर कम ही सही लेकिन कुछ न कुछ अनाज अवश्य पैदा हो जाता था। साथ ही साथ नदियों व तालाबों, कुओं, पोखरों आदि में वर्षा के बाद भी ज्यादा समय तक जल उपलब्ध रहता था जिसका कृषक उपयोग सिंचाई के साधन के रूप में कर लेता था। उपरोक्त तीनों कालों में कुछ परिवर्तनों को छोड़कर ज्यादातर स्थिति एक समान ही दिखाई पड़ती है। लेकिन आज मानव को भौतिकवादी स्वरूप के कारण सम्पूर्ण क्षेत्रों व संसाधनों में जल व जल स्तर का अभाव ही अभाव नजर आता है।

संदर्भ

१. ब्रहत्कल्पभाष्य, १/१२/३६
२. मैक्रिडल, मेगस्थनीज एण्ड एरियन, पृ. ३०-३१
३. मजूमदार, आर. सी. द क्लासिकल एकाउन्टस ऑफ इण्डिया, पृ. २५०
४. अच्छेलाल, प्राचीन भारत में कृषि, पृ. १०८
५. मजूमदार, आर. सी. द क्लासिकल एकाउन्टस ऑफ इण्डिया, पृ. २३२-२३३
६. शर्मा, यज्ञदत्त, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, पृ. ३४
७. वहीं पृ. ३५
८. गुप्ता, पी. एल., प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, १, पृ. ७२
९. इण्डियन आरक्योलाजिकल रेव्यू, १९५४-५५, पृ. ६९-७०
१०. आरक्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, १९१४-१५, पृ. ६९-७०
११. डॉ. अच्छेलाल यादव, प्राचीन भारत में कृषि एवं कृषकों की दशा-शोध प्रबन्ध, पृ. १४०
१२. बोस, ए. एन. सोशल एण्ड रूरल एकोनामी, १, पृ. १५६
१३. शर्मा, यज्ञदत्त, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, पृ. ३६
१४. घोष, यू. एन. हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, पृ. २१०
१५. शर्मा, रामशरण प्राचीन भारत का आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास, पृ. १९७
१६. मैटी, एस. के. इकोनामिक लाइफ एन गुप्ता एज, पृ. ८५
१७. शर्मा, यज्ञदत्त प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, पृ. ३७, संस्करण १९९८
१८. वहीं, पृ. ३८
१९. वहीं, पृ. ३८
२०. ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, पृ. २१, चतुर्थ संस्करण
२१. उपाध्याय, वासुदेव शरण, कालिदास का भारत, पृ. ३०
२२. ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, पृ. २२, संस्करण १९९७
२३. डॉ. अच्छेलाल यादव, प्राचीन भारत में कृषि, पृ. ७९
२४. मैटी, एस. के. इकनामिक लाइफ इन नार्दन इण्डिया इन द गुप्ता पीरियड, पृ. ८४

ओरछा स्थित बुन्देला शासकों की छत्रियां एवं स्थापत्य कला

❑ डॉ. रमेश चन्द्र यादव

भारत के मध्यकालीन इतिहास में बुन्देला शासकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। गहढ़वाल राजपूतों की बनारस शाखा के जो शासक विन्ध्य खण्ड में आव्रजित हुए वे विन्ध्येला ही कालान्तर में बुन्देला के नाम से प्रसिद्ध हुए। बुन्देलों की प्रथम राजधानी गढ़कुंड़ार के अंतिम शासक मलखान सिंह दिल्ली के लोदी शासकों के समकालीन थे। वीर एवं साहसी बुन्देला नरेश ने यद्यपि अपने राज्य का काफी विस्तार किया, किन्तु उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी रूद्रप्रतापदेव (ई. सन् १५०१ से १५३१) को अपने जीवन के अंतिम समय में बुन्देला रियासत की सुरक्षा हेतु विचार करना पड़ा। यह वह समय था जब मुगल आक्रान्ता बाबर ने पानीपत, खानवाह, माण्डू व चन्देरी को विजित कर बुन्देला रियासत की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उस सदी के सबसे भीषण आक्रमण को रोकने के लिये बुन्देला नरेश रूद्रप्रताप देव ने अपनी राजधानी तुंगारण्य क्षेत्र में वेतवा एवं जामुनी नदियों के संगम पर स्थापित की। भौगोलिक रूप से सुरक्षित यह द्वीप प्राकृतिक सम्पदा से भी परिपूर्ण था। वेतवा नदी की अपर धारा के किनारे-किनारे सुदृढ़ सुरक्षा भित्ति का निर्माण कराया गया। शाही निवास हेतु राजा महल एवं रानी महल के निर्माण कराये गये। राजा रूद्र प्रतापदेव अपने जीवन काल में अपनी आकांक्षा को पूर्ण न कर सके, तो उनके ज्येष्ठ पुत्र भारतीचन्द्र (१५३१-१५५४ ई. सन्) द्वितीय पुत्र मधुकर शाह (१५५४-१५६२ ई. सन्) ने उनके अधूरे कार्यों को पूर्ण किया। ओरछा के बुन्देला शासकों के मुगल शासकों से प्रायः सम्बन्ध खराब रहे और इस वीर भूमि के वीर सपूतों ने अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये अपने प्राणों की आहूति दी है। इनमें वीर हरदौल एवं चम्पतराय का योगदान अविस्मरणीय है। इस वंश के सबसे बहादुर शासक वीर सिंह देव को महान निर्माता भी कहा जाता है। मुगल सम्राट जहांगीर की मित्रता के यादगार स्वरूप एक राजा प्रसाद का निर्माण ओरछा में करवाया था। यह विशाल महल बुन्देली स्थापत्य का उत्कृष्ट नमूना है। इस महल में हिण्डोला तोरण द्वार, भारवाही टोड़ी, प्रवेश द्वारों पर लटकती पद्म पंखुड़ी संरचना जहाँ राजस्थान की राजपूत शैली का प्रतिनिधित्व करती है, वहीं गुम्बदनुमा शिखर युक्त लघुकाय एवं विशाल छत्रियां तथा प्रस्तर का जालिकावत अलंकरण इस्लामिक शैली के अनुकरण पर बने हैं। यद्यपि राजस्थान में १५ वीं शताब्दी में राणा कुम्भा के कुशल संरक्षण में जो राज प्रसाद निर्मित हुए इनकी नुकीली महरावें, हिण्डोला द्वारा, जालिकावत अलंकरण युक्त झरोखे, गुम्बदनुमा अट्टालिकायें, मयूराकृति टोड़ी, छज्जी आदि विशेषताओं से परिपूर्ण स्थापत्य विधा विकसित हुई, जिसका प्रयोग प्रायः राज प्रसादों में किया गया। ओरछा के स्मारकों यथा राजा महल, जहांगीर महल एवं रानी महल (राम मंदिर) में इसी विधा का प्रयोग है। प्रयोगधर्मी बुन्देला शासकों ने राजपूत स्थापत्य कला को बुन्देली शैली में परिमार्जित कर कई स्मारकों का निर्माण किया। इनमें लक्ष्मी मंदिर, चतुर्भुज मंदिर, पंचमुखी महादेव मंदिर, राधिका बिहारी मंदिर एवं वेतबा किनारे की छत्रियाँ हैं। इन स्मारकों के निर्माण में यद्यपि प्राचीन भारतीय मंदिर स्थापत्य विधा नागर शैली का अनुकरण

❏ *सहायक संग्रहाध्यक्ष, जिला पुरातत्व संग्रहालय, धार (म. प्र.)*

हैं, किन्तु जगती, वेदिबन्ध, शिखर, गर्भगृह, अंतराल, मण्डप व मुख मण्डप की संरचना में क्षेत्रीय शैली अथवा स्थानीय विशेषताओं को प्रमुखता दी गयी है। यही विशेषतायें बुन्देली शैली कही गयी। स्मारकों के अंग प्रत्यगों के अतिरिक्त अलंकरण एवं प्रयुक्त सामग्री भी विशेष उल्लेखनीय है। ओरछा, दतिया के स्मारकों के भित्तिचित्रों में आंचलिक विविधता के साथ-साथ सामाजिक पक्ष को प्रबलता से दर्शाया गया है।

भारतीय इतिहास में जब मुगलों की गतिविधियों पर प्रकाश डाला जाता है, तो बुन्देलखण्ड के बुन्देला शासकों की चर्चा अवश्य होती है, चाहे वह वीर सिंह देव का अबुल फजल वध हो अथवा छत्रसाल का शौर्य। कवि केशवदास की अनुपम रचनायें हों अथवा राय प्रवीण की प्रणय गाथा। सभी में बुन्देलखण्ड एवं बुन्देलों का गौरव ही प्रतिबिम्बित होता है।

सौभाग्य से मुझे ओरक्षा में विभाग द्वारा पदस्थ किया गया। इस अवधि में मेरे द्वारा बुन्देला इतिहास का अध्ययन किया गया और महसूस किया गया कि बुन्देलखण्ड के इन परमवीरों यथा मधुकर शाह, वीर सिंह देव, वीर हरदौल, उद्धेत सिंह, चम्पतराय एवं छत्रसाल की भूमिका का वास्तविक मूल्यांकन नहीं हुआ है। वीर हरदौल बुन्देली सेना के सेनापति थे, उनके नेतृत्व में कई बार मुगल सेना पराजित हुई। मुगलों के षड़यंत्र के शिकार राजा जुझार सिंह, पहाड़ सिंह एवं रनिवास में हुई घटनाओं के परिणामस्वरूप वीर हरदौल की मौत ने ओरछा के पतन का रास्ता तैयार किया था।

स्थापत्य कला पर मेरी विशेष अभिरूचि होने के कारण ओरछा के स्मारकों का अध्ययन मेरे द्वारा किया गया। मेरे अल्पकाल की कार्य अवधि (८ माह) में ओरछा के इतिहास एवं स्थापत्य पर कई महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डाला गया। पूर्व में ओरछा के कई स्मारकों के स्पष्ट नाम अज्ञात थे। इस अवधि में यह महत्वपूर्ण कार्य मेरे द्वारा किया गया। बेतवा के किनारे स्थित बुन्देला परिवार की छत्रियों को लोग छन्नी समूह के नाम से जानते थे, किन्तु मेरे द्वारा प्रत्येक का नाम शोध के पश्चात दिया गया, उसकी वास्तुगत एवं शैलीगत विशेषताओं सहित प्रत्येक स्मारक का सांस्कृतिक विवरण तैयार किया गया। आयुक्त, पुरातत्व, अभिलेखागार एवं संग्रहालय म. प्र. भोपाल द्वारा मेरे विवरण से सभी स्मारकों के हिन्दी-अंग्रेजी द्विभाषी सांस्कृतिक पट्ट तैयार किये गये। ओरछा के स्मारकों की वास्तुगत विशेषताओं के अध्ययन यद्यपि महलों, मंदिरों, छत्रियों एवं अन्य स्मारकों का किया गया है, किन्तु यहाँ पर मैं ओरछा की छत्री स्थापत्य कला का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

बुन्देला शासक रूद्रप्रताप देव ने अपनी राजधानी तुंगारण्य क्षेत्र में बेत्रवती एवं जामुनी नदियों के संगम पर स्थापित की, इस स्थल का नाम ओड़छा या ओरछा रखा गया। इससे पूर्व व्यासपुरा नामक ग्राम एवं अन्य ग्राम पूर्व से ही अस्तित्व में थे। १२ वीं शताब्दी में यह स्थल पथरीगढ़ के नाम से जाना जाता था, जिसके सानी राजपूत शासक थे बाद में चंदेल सामंत मलखान ने इसे जीत कर चन्देल राय का अंग बनाया था। बुन्देला राजा रूद्रप्रताप देव ने गढ़ कुडार से ओरछा राजधानी ई. १५३१ में स्थानांतरित की। इसके पश्चात ई. सन् १७८३ तक ओरछा बुन्देला वंश की राजधानी रहा, १७८३ ई. में मराठों के निरन्तर आक्रमणों के कारण राजा विक्रमजीत सिंह ने टेहरी को राजधानी बनाया और नवीन राजधानी का नाम टीकमगढ़ रखा गया। इस अवधि में बुन्देला राजवंश के स्वर्गवासी राजाओं की छत्रियाँ बेतवा नदी के किनारे बनवायी गयीं। ये सभी छत्रियाँ म. प्र. पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित हैं, किन्तु इनमें से अधिकांश के नाम अज्ञात थे मेरे अध्ययन के फलस्वरूप इनके नाम अंकित करवाये गये।

यहाँ पर स्थित छत्रियों में राजा भारतीचन्द्र (ई.

१५३१-१५५४), राजा मधुकर शाह (ई. सन् १५५४-१५६२), राजा वीर सिंह देव (ई. सन् १६०५-१६२७), राजा पहाड़ सिंह (ई. सन् १६४१-१६६३) एवं राजा पृथ्वी सिंह (ई. सन् १७३६-१७५२) की छत्रियां छत्री परिवार के बाहर स्थिति हैं एवं प्रकार से आवृत परिसर में ५ राजाओं की छत्रियां यथा राजा सुजान सिंह (ई. सन् १६६३-१६७२), राजा इन्द्रमणि (ई. सन् १६७२-१६७५), राजा यशवंत सिंह (ई. सन् १६७५-१६८४), राजा भगवन्त सिंह (ई. सन् १६८४-१६८६) एवं राजा सावन्त सिंह (ई. सन् १७५२-१७६५) की छत्रियां हैं।

बेतवा नदी के तट पर स्थित बुन्देला शासकों की छत्रियां बुन्देली स्थापत्य की एक महत्वपूर्ण देन हैं। छत्री शब्द की व्युत्पत्ति उसकी वास्तुगत विशेषताओं के आधार पर 'छात्र' जैसे शिखर के कारण हुई, जो उद्देश्य एवं सरंचना में मुस्लिम स्थापत्य के मकबरों का अनुकरण था, किन्तु ओरछा के शासकों द्वारा मंदिर स्थापत्य में छत्रियों का निर्माण कर छत्री स्थापत्य विधा में नवीन आयाम जोड़े। छत्री की योजना में वर्गाकार चबूतरे पर वर्गाकार गर्भगृह एवं चारों ओर आयताकार गलियारा तथा इनके महरावदार द्वार हैं। ऊर्ध्व विन्यास में वितान की ऊँचाई त्रितलीय संरचना तक है, उसके ऊपर जंघा एवं नागर शैली के गगन चुम्बी शिखर हैं। गर्भगृह के ऊपर नागर शिखर के चार कोनों पर गुम्बदनुमा शिखर है, जो पंचायन शैली के हैं। यद्यपि छत्रियों के निर्माण में प्राचीन भारतीय मंदिर स्थापत्य कला नागर शैली का अनुकरण किया गया है, किन्तु जगती, गर्भगृह, प्रदक्षिणा पथ, ऊर्ध्व विन्यास में जंघा एवं कोनों के गुम्बदनुमा शिखर आदि में स्थानीय विशेषताओं का भी समावेश है।

बेतवा तट पर स्थित छत्रियों में सबसे प्राचीन छत्री राजा भारतीचन्द्र की है, जो ई. सन् १५५४ में राजा मधुकर शाह के समय बनवायी गयी। इस समय तक छत्री स्थापत्य का स्वरूप स्पष्ट नहीं था। इस कारण प्रथम चरण अर्थात् ई. सन् १५५४ में केवल वर्गाकार चबूतरे पर वर्गाकार गर्भगृह एवं चारों ओर आयताकार गलियारा प्रदक्षिणा पथ के रूप में निर्मित हुआ। इसमें समतल छत निर्मित की गयी, किन्तु १७ वीं शती ई. में गुम्बदाकार शिखर जोड़े गये तथा छज्जों के नीचे सुन्दर चित्र बनाये गये। मध्य में गुम्बद के छज्जे के नीचे दक्षिणी एवं पूर्वी भित्ति पर वि. स. १७३५, १७३२, एवं १७४० के लेख हैं। यह छत्री ओरछा की छत्री स्थापत्य विधा का प्राथमिक नमूना है। पूर्व में इसे लोग उधोत सिंह की छत्री कहते थे, जबकि उनके शासनकाल (१६८६-१७३६ ई.) से पूर्व छत्री के द्वितीय चरण का भी निर्माण हो चुका था।

दूसरी महत्वपूर्ण छत्री राजा मधुकर शाह की है, जिसे मूलतः रामशाह के समय (ई. सन् १५६२-१६०५) में बनवाया गया, किन्तु शिखर भाग परवर्ती काल में जोड़ा गया। राजा मधुकर शाह की छत्री का निर्माण मंदिर स्थापत्य कला में किया गया। पूर्वाभिमुखी छत्री के भूविन्यास में गर्भगृह, अंतराल एवं मण्डप हैं, किन्तु ऊर्ध्व विन्यास में वेदिबन्ध, जंघा एवं नागर शैली का शिखर है। शिखर के चारों कोनों पर लघु शिखराकृतियाँ भी बनी हुई हैं। छत्री के गर्भगृह में महाराजा मधुकर शाह एवं उनकी पत्नी गणेशा कुंअरि की प्रतिमायें पार्श्व भित्ति में स्थापित हैं। कालक्रम की दृष्टि से अगली छत्री महाराजा वीर सिंह देव की छत्री है, जो बेतवा नदी के निकट है, इसका शिखर पूर्ण रूप से निर्मित नहीं हो सका था। इस छत्री का निर्माण वीर सिंह देव के ज्येष्ठ पुत्र महाराजा जुझार सिंह द्वारा कराया गया, किन्तु राजनैतिक घटनाक्रमों के कारण शिखर का निर्माण नहीं हो सका। इस त्रितलीय भव्य छत्री को वर्गाकार जगती पर वर्गाकार योजना में निर्मित किया गया। मध्य के वर्गाकार गर्भगृह के चारों ओर गलियारे एवं महरावदार

द्वारा बुन्देली छत्री स्थापत्य का प्रारंभिक प्रयोग है। बाहृय विन्यास में आलों की पंक्तियां एवं टोड़ियों पर आधारित छज्जे हैं। यद्यपि शिखर नहीं हैं, तथापि उसकी पंचायतन योजना स्पष्ट है।

वीर सिंह के पुत्र महाराजा सिंह की छत्री मधुकर शाह की छत्री के दक्षिणी ओर स्थित है। यह छत्री १७ वीं शताब्दी की निर्मित बुन्देली स्थापत्य की महत्वपूर्ण देन है। विशाल वर्गाकार जगती पर मध्य का वर्गाकार गर्भगृह एवं चारों ओर गलियारा जिसमें महरावदार द्वारों की संरचना है। ऊर्ध्व विन्यास में त्रितलीय संरचना में नागर शैली का मध्य का शिखर एवं चारों ओर गुम्बदनुमा बुन्देली शैली के शिखर हैं। इसी प्रकार की छत्रियां प्रकार से आवृत प्रांगण में स्थित हैं। इस प्रांगण में महाराजा सुजान सिंह (ई. सन् १६५३-१६७२), महाराजा इन्द्रमणि (ई. सन् १६७२-१६७५), महाराजा यशवंत सिंह (ई. सन् १६७५-१६८४), महाराजा भगवन्त सिंह (१६८४-१६८६) एवं महाराजा सावन्त सिंह (ई. सन् १७५२-१७६५) की छत्रियां स्थित हैं। प्रथम चार की वास्तुगत विशेषतायें लगभग एक समान हैं। इस परिसर की प्राचीनतम् छत्री महाराजा सुजान सिंह (ई. सन् १६५३-१६७२) की हैं। इस छत्री का निर्माण महाराजा इन्द्रमणि (ई. सन् १६७२-१६७५) एवं महाराजा जसवंत सिंह (ई. सन् १६७५-१६८४) के शासन काल में हुआ। इस छत्री में बुन्देली छत्री स्थापत्य का विकसित स्वरूप स्पष्ट हो रहा है। तल योजना में वर्गाकार चबूतरे पर निर्मित छत्री के मध्य में वर्गाकार गर्भगृह एवं उसके चारों ओर महरावदार द्वारों युक्त बरामदे हैं, इनके कोनों पर वर्गाकार कक्षों की संरचना है। मध्य का गर्भगृह सर्वतोभद्र शैली का है, जिसमें चारों ओर प्रवेशद्वार हैं। वितान ऊँचा है, जिसका बाहृय भाग तृतीय तल पर जंघा एवं छज्जी को प्रदर्शित करता है। इसकी त्रितलीय संरचना के ऊपर नागर शैली के मंदिर स्थापत्य विधा का शिखर है। कोनों पर वर्गाकार कक्षों के ऊपर गुम्बदों की संरचना है। गुम्बद, नागर शैली के शिखर विविध अलंकरण युक्त हैं, जो समन्वित बुन्देला स्थापत्य के नमूने हैं।

महाराजा इन्द्रमणि, महाराजा यशवंत सिंह एवं भगवंत सिंह की छत्रियाँ भी इसी योजना पर निर्मित आकार एवं प्रकार में भी समान हैं। महारानी अमर कुंअरि (महाराजा इन्द्रमणि की पत्नी) की देखरेख में उक्त तीनों छत्रियों का निर्माण ई. सन् १६८६ में करवाया। इन छत्रियों के शिखर में मध्य का नागर शैली का एवं कोनों पर गुम्बदों की संरचना है, नागर शिखर के नीचे जंघा का भाग स्पष्ट है, जिसके कारण इसकी योजना पंचायन शैली के मंदिरों के समान निर्मित होती है। इस कारण इसे पंचायन शैली की संरचना कह सकते हैं।

इसी परिसर में स्थित महाराजा सावन्त सिंह की छत्री शैलीगत आधार पर अन्य छत्रियों से भिन्न है। महाराजा पृथ्वी सिंह (ई. सन् १७३६-१७५२) के पुत्र पूरन सिंह के शेर के शिकार के समय मृत्यु को प्राप्त होने के कारण उनके पुत्र सावन्त सिंह अपने पितामह पृथ्वी सिंह के ई. सन् १७५२ में उत्तराधिकारी हुए। सावन्त सिंह ने ई. सन् १७५२ से १७६५ तक ओरछा में शासन किया। ई. सन् १७६५ में निधन होने पर उनके पुत्र एवं उत्तराधिकारी हेत सिंह (ई. सन् १७६५-१७६८) ने इस छत्री का निर्माण कराया। यह छत्री आकार-प्राकार में अन्य छत्रियों से भिन्न है। तल योजना वर्गाकार है, किन्तु शिखर की संरचना, गुम्बद, लघुकाय छत्रियां एवं चित्रकारी बुन्देली कला एवं स्थापत्य की उत्कृष्ट देन है। इस छत्री में नागर शिखर के स्थान पर गुम्बद एवं कोने पर गुम्बदों के स्थान पर लघुकाय छत्रियां गुम्बदनुमा शिखर युक्त बनी हुई हैं।

अन्य दो छत्रियां कन्चन घाट के मार्ग पर स्थित

महाराजा पृथ्वी सिंह (ई. सन् १७३६-१७५२) एवं बंका उम्मेद सिंह की हैं। ओरछा रिसोर्ट की बाउण्ड्री के समीप स्थित पृथ्वी सिंह की छत्री भी शैलीगत विशेषताओं में अन्य छत्रियों से भिन्न है। भू-विन्यास में वर्गाकार गर्भगृह एवं उसके आगे पूर्वाभिमुखी आयताकार मण्डप है। बहुकोणीय महरावें, ढलवां वातायन, चैत्यनुमा वितान है। मध्य के शिखर पर गुम्बद एवं कोनों पर नागर शैली के शिखर युक्त लघुकाय छत्रियां पंचायन शैली में निर्मित हैं। पालकीनुमा छत शीर्ष बुन्देली स्थापत्य का प्रमुख लक्षण है।

अन्य छत्री लघुकाय मंदिर स्थापत्य में निर्मित बंका पहाड़ी के जमीदार उमेद सिंह की हैं, जो ओरछा के नरेश उदोत सिंह (हरदौल के वंशज) के भाई राय सिंह के पुत्र थे। बंका उमेद सिंह महाराजा उदोत सिंह एवं पृथ्वी सिंह के समय ओरछा के किलेदार थे। ई. सन् १७४२ में ओरछा में उनके निधन होने पर उनकी पत्नी सती हो गई थी। इस छत्री की पार्श्व भित्ति में संलग्न बंका उमेद सिंह व उनकी पत्नी की प्रतिमा के ऊपर तीन पंक्ति का अभिलेख है।

बेतवा तट पर स्थित उक्त छत्रियां १६ वीं शती ई. के मध्य की हैं। इनकी संरचना का वास्तुगत विभेद स्थापत्य के उद्‌भव एवं विकास का प्रमुख साक्ष्य है। १७ वीं शताब्दी में बुन्देली स्थापत्य कला परिमार्जित होकर स्थापित हुई, उसका विकास १७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से १८ वीं शताब्दी तक होकर संपूर्ण बुन्देलखण्ड में आंशिक भिन्नताओं के साथ फैल गयी। इनमें पालकीनुमा गवाक्ष शीर्ष या द्वार शीर्ष सर्वत्र उपयोग में लाया गया, जो बुन्देली स्थापत्य कला का प्रमुख लक्षण है।

भारत में मानव अधिकार : दशा एवं दिशा

❑ डॉ. किशन यादव

वर्तमान समय में पश्चिमी देश मानवाधिकार का वाहक बनने की चेष्टा कर रहे हैं, जबकि मानवाधिकार को जितनी क्षति पश्चिमी देशों ने पहुंचाई है, उतनी शायद किसी अन्य देश ने नहीं। पश्चिमी देशों द्वारा ही बमों का निर्माण किया गया, नये अस्त्र-शस्त्र बनाये गये तथा उद्योगों में मशीनरियों का प्रयोग करके मानव को बेरोजगार बनाया गया और बड़े-बड़े उद्योग लगाकर सामान्य मानव की जीविका छीन ली गयी। ये सभी कृत्य मानव एवं मान्यता के विरूद्ध ही हैं और इनसे मानव अधिकारों का पर्याप्त उल्लंघन हुआ है। आज जब कभी विश्व सम्मेलन आयोजित होता है तो पश्चिमी देशों द्वारा विशेष कर ब्रिटेन और अमेरिका द्वारा यह कहकर भारत की भर्त्सना की जाती है कि भारत में मानवाधिकार का उल्लंघन किया जा रहा है। जबकि यह कथन पूर्णतया गलत होता है। भारत प्राचीनकाल से ही मानवता और मानवाधिकारों का संवाहक रहा है। भारत में मानवाधिकार हनन ब्रिटिशों के आगमन के समय से प्रारंभ हुआ है। लेकिन अंग्रेजों के जाने के बाद भारत में मानवाधिकार के प्रति गहरा सम्मान व्यक्त किया गया, जिसका सबसे बड़ा प्रमाण भारत का संविधान है।

मानवाधिकार को कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है। जिसका अर्थ उन अधिकारों से लगाया जाता है जो मानव जाति के विकास के लिये मूलभूत है तथा मानव की गरिमा से सम्बद्ध है और मानवीय गरिमा के पोषण के लिये आवश्यक है। मानव अधिकार मानव के विशेष अस्तित्व के कारण उनसे सम्बन्धित है, इसलिये ये जन्म से ही प्राप्त होते हैं और इसकी प्राप्ति में जाति, लिंग, धर्म, भाषा, रंग तथा राष्ट्रीयता बाधक नहीं होती। मानव अधिकार को 'मूलाधिकार' आधारभूत अधिकार 'अन्तर्निहित अधिकार' तथा नैसर्गिक अधिकार भी कहा जाता है। मानव अधिकार की कोई सर्वमान्य विश्वव्यापी परिभाषा नहीं है, इसलिये राष्ट्र इसकी परिभाषा अपने सुविधानुसार देते हैं। विश्व के विकसित देश मानवाधिकार की परिभाषा को केवल मनुष्य के राजनीतिक तथा नागरिक अधिकारों को भी शामिल रखते हैं। भारत सहित अन्य विकासशील देश मानवाधिकार के अन्तर्गत राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकार को भी शामिल करते हैं। चीन तथा इस्लामी राज्य कहते हैं कि मानवाधिकार की परिभाषा सांस्कृतिक मूल्य के अंतर्गत दी जानी चाहिये अर्थात् मानवाधिकार में मनुष्यों के सांस्कृतिक अधिकार को भी शामिल किया जाना चाहिये।

मानवाधिकार तथा भारत का संविधान

भारत के संविधान में मानवाधिकार के प्रति पूर्ण सम्मान व्यक्त किया गया है। भारत के संविधान में सभी व्यक्तियों को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, रंग तथा वर्ण के बावजूद समान माना गया है तथा सभी व्यक्तियों को राजनीतिक, सिविल, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अधिकार प्रदान किया गया है। इन अधिकारों को संविधान के भाग ३ में मूलाधिकार शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है, जिसका उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता। इन अधिकारों का उल्लघंन किये जाने पर न्यायालय में कार्यवाही की जा सकती है। और अधिकार को वापस लिया जा सकता है। यहां तक कि संसद भी

❑ रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग व शोध केन्द्र अतर्रा पी. जी. कालेज, अतर्रा, बाँदा (उ. प्र.)

संविधान में संशोधन करके इन अधिकारों का अधिहरण नहीं कर सकती। हमारे संविधान के अनुच्छेद १४, १५(१), १६(१), १९(१)(क), १९(१)(ख), २०, २१, २५ ऐसे हैं। जिनमें मानवाधिकारों के संदर्भ में उल्लेख है।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर में मानवाधिकार के संबंध में प्रावधान

१. **संयुक्त राष्ट्र का प्रयोजन है** – आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या मानव कल्याण संबंधी अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिये और मूल वंश, लिंग भाषा या धर्म के आधार विभेद किये बिना सभी के लिये मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की अभिवृद्धि करने और उसे प्रोत्साहित करने के लिये अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना। अनुच्छेद १(३)

२. **महासभा** – आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की अभिवृद्धि करने और मूलवंश लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद किये बिना सभी के लिये मानव अधिकार और मूल स्वतंत्रताएं प्राप्त करने में सहायता करने के प्रयोजन के लिये अध्ययन करायेगी और सिफारिशें करेगी। (अनुच्छेद १३(ख)

३. संयुक्त राष्ट्र लोगों के समान अधिकारों और आत्म निर्णय के सिद्धान्त के प्रति आदर के आधार पर राष्ट्रों के बीच शांति और मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के लिये आवश्यक सुस्थिरता और कल्याणकारी परिस्थितियां उत्पन्न करने की दृष्टि से –

   (क) उच्चतर जीवन स्तर, पूर्णनियोजन और आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति तथा विकास की परिस्थितियों की अभिवृद्धि करेगा,

   (ख) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य विषयक और सम्बद्ध समस्याओं के हल तथा अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक और शैक्षणिक सहयोग की अभिवृद्धि करेगा और

   (ग) मूल वंश, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद किये बिना सभी के लिये मानव अधिकारों, मूल स्वतंत्रताओं के प्रति विश्वव्यापी आदर और उनके पालन की अभिवृद्धि करेगा। (अनुच्छेद ५५)

४. आर्थिक और सामाजिक परिषद सभी व्यक्तियों के लिये मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति आदर बढ़ाने के प्रयोजन के लिये और उनके पालन के लिये सिफारिशें कर सकेगी। (अनुच्छेद ६२(२))

५. अन्तर्राष्ट्रीय न्यासित प्रणाली का उद्देश्य होगा – मूल वंश, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद किये गये बिना सभी के लिये मानव अधिकारों के प्रति और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति आदर को प्रोत्साहन देना और संसार के लोगों के अन्योन्याश्रित होने की मान्यता को प्रोत्साहन देना (अनुच्छेद ७६(ग))।

भारत में मानवाधिकार

विश्व स्तर पर मानवाधिकारों के संदर्भ में बढ़ती जागरूकता को देखते हुये पिछले वर्ष देश में मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया। यह राष्ट्रीय स्तर का आयोग है। नवगठित इस आयोग को निम्न अधिकार दिये गये हैं –

१. आयोग किसी परिवाद की जांच करते समय उन सभी शक्तियों का प्रयोग करेगा, जिनका प्रयोग कोई न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता, १९०८ के अधीनवाद का परीक्षण करते समय करता

है।

२. यह साक्षियों को समन कर सकता है तथा उनको अपने समक्ष उपस्थित होने के लिये बाध्य कर सकता है। इसे किसी दस्तावेज को खोजने तथा पेश करने का आदेश देने, शपथ पर साक्ष्य लेने तथा किसी कार्यालय या न्यायालय से लोक दस्तावेज या उसकी प्रतिलिपि की अपेक्षा करने की शक्ति है।

३. आयोग को किसी व्यक्ति से ऐसी सूचना मांगने की शक्ति है, जो उसके लिये उपयोगी हो या जांच की विषयवस्तु से संगत हो।

४. आयोग स्वप्रेरणा से या पीड़ित व्यक्ति अथवा उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किये गये याचिका पर मानवाधिकार के उल्लंघन के परिवार या लोक सेवक द्वारा ऐसे अधिकारों के अतिलंघन के निवारण में उपेक्षा की जांच करेगा।

५. आयोग न्यायालय की उस कार्यवाही में हस्तक्षेप कर सकता है, जो मानवाधिकार के उल्लंघन से सम्बन्धित है, लेकिन आयोग द्वारा यह कार्य न्यायालय की अनुज्ञा से ही किया जा सकता है।

६. राज्य को सूचित करने के बाद आयोग के सदस्य किसी कारागार या किसी ऐसे संस्थान का दौरा कर सकेंगे, जहां व्यक्तियों को इलाज, सुधार या संरक्षण के लिये निरूद्ध किया गया है। आयोग का यह दौरा निरूद्ध व्यक्तियों की स्थिति का अध्ययन करने तथा सिफारिश करने के प्रयोजन से होगा।

७. आयोग मानवाधिकारों के संरक्षण के लिये संविधान या प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन प्रावधानित संरक्षण का पुनर्विलोकन करेगा तथा उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिये उपाय करेगा।

कार्यों की समीक्षा

अभी मानवाधिकार आयोग को काम करते कुछ वर्ष ही हुये हैं और अपनी सीमित स्वायत्तता के बावजूद उसने प्रगति की है। आयोग ने टाडा (TADA) कानून को वापस लेने की मुहिम छेड़ी है। क्योंकि उनका मानना है कि टाडा कानून क्रूर है। पंजाब में पुलिस राज (Police Raj) की ओर भी आयोग ने अपनी प्रतिवेदन में टिप्पणी की है। उसने भारतीय जेलों के बारे में जो रिपोर्ट दी है, उससे क्षेत्र में काम करने वाले मानवाधिकार संगठनों के निष्कर्षों की पुष्टि हुई है। आयोग ने इस रिपोर्ट में अधिकांश जेलों में अति भीड़ की स्थिति, सफाई की कमी, स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव, अपर्याप्त आहार तथा इसी तरह की अन्य भयानक स्थितियों पर चिंता जतायी है। आयोग ने कहा है कि विभिन्न कारणों से मुकदमों के निपटारे में देर और जेल के प्रशासन में कुप्रबंध से ये त्रुटियां और भी गंभीर हो जाती हैं, जिनमें सुधार किये जाने की जरूरत है।

आयोग ने स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में मानवाधिकारों की शिक्षा देने का मुद्दा भी उठाया है और इस दिशा में कुछ प्रयास भी किये हैं। यह एक महत्वपूर्ण काम है, पर विवादास्पद भी है। आखिर यह शिक्षा कैसे और किस रूप में दी जायेगी। अगर इसे औपचारिकता से अधिक कुछ बनाना है तो उसके लिये जिस इच्छाशक्ति एवं साहस की जरूरत होगी क्या वह हमारी सरकार में है। इससे अन्य कई महत्वपूर्ण प्रश्न भी जुड़े हुये हैं, पर यह अलग चर्चा का विषय है। कुल मिलाकर भारत में मानवाधिकार आंदोलन अभी अपनी शुरूआती अवस्था में है लेकिन यहां यह कहना होगा कि आम लोगों के स्तर पर इस अवधारणा के प्रति गहरी दिलचस्पी जागरूकता व आस्था है और आने वाले समय में यह आंदोलन और सशक्त होकर उभरेगा ऐसा आंदोलनकारियों का विश्वास है।

जर्मन भाषा का निराला साहित्यकार या पॉल और उसका भारत चित्र

❑ डॉ. तिलक राज चोपड़ा

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में छायावाद का विशेष महत्व है। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा के साथ कविचतुष्टयी को पूर्ण किया सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने। 'निराला' आरंभ से निराला नहीं थे। उनकी प्रारंभिक रचनाएं सूर्यकांत त्रिपाठी के नाम से प्रकाशित हुई थीं। कलकत्ता के साप्ताहिक 'मतवाला' से सम्बद्ध होने पर, जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है, 'मतवाला के अनुप्रास पर' उन्हें यह उपनाम मिला, जिसे उन्होंने बिना आनाकानी के अंगीकार कर लिया।

भारत के छायावादी निराला से लगभग सवा सौ साल पहले एक जर्मन रचनाकार को भी इस अभिधान से विभूषित किया गया था। पर उसे वह कदाचित् स्वीकार न हुआ, यद्यपि संभव यह भी है कि वह इस सन्देहास्पद गौरव से अनभिज्ञ रहा हो। याँ पॉल नाम का वह नवोदित रचनाकार समकालीनों के लिए एक अनबूझ पहेली था। जर्मन साहित्य जगत के अधिष्ठाता गोयटे ने समानधर्मा शिल्लर को एक निजी पत्र में लिखा था -

"याँ पॉल आजकल यहाँ है। उसका व्यक्तित्व ठीक वैसा ही है जैसा उसका कृतित्व। यहाँ वाइमार में लोग कभी उसे बहुत उच्च कोटि का कलाकार ठहराते हैं, कभी अवर कोटि का। समझ में नहीं आता, कैसे निपटा जाए, निराला जीव है।"

इस प्रकार यह विशेषण उसे किसी पत्रिका के अनुप्रास पर सार्वजनिक रूप से नहीं मिला था, वरन् उसकी रचनाओं का औचित्यपूर्ण मूल्यांकन करने का असमर्थता का परिणाम था, अर्थात् यथार्थ निरालेपन के कारण दिया गया था और वह भी एक निजी पत्र में। आज हम उसी निराले जर्मन रचनाकार और उसके भारत चित्र की चर्चा करने जा रहे हैं।

हाँ, उसका पूरा नाम था योहान पाउल फ्रीड्रिख रिख्टर। जब उसने लेखक बनने की ठानी तो यह नाम उसे बड़ा अनुपयुक्त लगा; यद्यपि प्रारंभिक रचनाएँ इसी नाम से प्रकाशित हुई थीं और खास बिकी नहीं। दो-एक उपनाम परखने के बाद उसने नाम का संक्षेपण और फ्रांसिसीकरण करने का निश्चय किया।

१७८६ की फ्रांसिसी राज्य क्रांति और उसके उद्देश्यों ने उसे गहराई से प्रभावित किया था। विशेष रूप से क्रांति का मार्ग प्रशस्त करने वाले दार्शनिक रचनाकार यॉयक रूसो को वह बहुत मानता था। उसकी स्मृति में श्रद्धांजलि स्वरूप उसने Johann का gean बनाया और पाउल का फ्रेंच उच्चारण पॉल करके gean Paul बन गया। एक फ्रेंच दार्शनिक से उसे नाम-परिवर्तन की प्रेरणा मिली थी और बीसवीं शताब्दी के एक दूसरे फ्रेंच दार्शनिक याँ-पॉल सार्त्र के नामकरण का वह स्वयं निमित्त बना। इस प्रकार एक फ्रेंच दार्शनिक से नाम लिया और एक को दिया।

याँ पॉल का जन्म २६ मार्च, १७६३ को बवेरिया के पूर्वोत्तर में फिख्टर-पहाड़ियों में अवस्थित एक छोटे से नगर वुन्ज़ीडल में हुआ था। पिता नगर के बाल-विद्यालय में सहायक अध्यापक थे। वेतन बहुत कम था, घर की अभावग्रस्तता और बाह्य प्रकृति का अद्‌भुत सौन्दर्य उसकी बाल्यावस्था की चिरस्थायी स्मृतियाँ थीं। किशोर-वय में पिता की छत्रछाया से वंचित हो गया। चार छोटे

❑ हाज़ल वेग १५, ५३३४० मेकन्हाईम, जर्मनी

भाइयों और माता समेत सारे परिवार का भार सिर पर पड़ा तो अकिंचनता की कचोट और गहरी हो गई। आरंभिक जीवन के इन कटु-तिक्त अनुभवों ने उसे अन्तर्मुखी और चिन्तनशील और कुछ हद तक सनकी बना दिया।

पिता की इच्छा थी कि वह ईसाई धर्मशास्त्र का अध्ययन करे और पादरी बने। लाइप्सिग विश्वविद्यालय में नाम लिखाया लेकिन धर्मशास्त्र से अधिक उसकी रूचि दर्शनशास्त्र में थी। दर्शन के आचार्य एर्न्स्ट प्लाट्नर के व्याख्यानों ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। पादरी नहीं, दार्शनिक बनेगा यह, निश्चय कर लिया। पर धनाभाव से कुछ भी आगे पढ़ना संभव न था। उधार इतना सिर पर चढ़ चुका था कि लेनदारों ने नाक में दम कर रखा था। उनसे पीछा छुड़ाने के लिए लाइप्सिग छोड़कर भागा। पढ़ाई बीच में ही छूट गई।

पढ़ने-लिखने में बचपन से ही गहरी रूचि थी। अभाव पुस्तकों का था। स्थानीय गिरजे में मार्टिन लूथर का बाइबल का जर्मन अनुवाद रखा था। बीच-बीच में जाकर उसे पढ़ाता रहता था। पर उसकी दिलचस्पी बाइबल में नहीं लूथर की पाद-टिप्पणियों में थी। जो टिप्पणी अच्छी लगी उसे एक कापी में उतार लिया। पड़ोसी शहर रेहाउ के विशाल पुस्तकालय के द्वार जब उसके लिए खुले तो कापियों पर कापियाँ भरी जाने लगीं, उद्धरणों से। ऐसी दर्जनों उद्धरण-पुस्तिकाएँ बर्लिन के राजकीय पुस्तकालय के 'प्रशियन सांस्कृतिक सम्पदा' नाम के कक्ष में आज भी सुरक्षित हैं।

१७६२ की एक उद्धरण-पुस्तिका में मोती जैसे छोटे-छोटे गोल अक्षरों में एक तथाकथित 'प्रभातदेशीय नाटक' के उद्धरण अंकित हुए हैं। ये उन दिनों प्रकाशित महाकवि कालिदास के शकुन्तला नाटक के जर्मन अनुवाद के उद्धतांश हैं।

अंग्रेजी में प्राची दिशा को, भूमध्यसागर के पूरब में स्थित देशों को ओरिएंट कहते हैं। जर्मन भाषा में इसके लिए मार्गनलैंड शब्द का प्रयोग होता है। मार्गनलैंड अर्थात् प्रभात-देश, उषाकालीन देश, सूर्योदय के देश।

प्रौढ़ावस्था में जब यॉं पॉल की लोकप्रिय रचनाकार के रूप में कीर्ति दूर-दूर तक फैल चुकी थी और उसकी पुस्तकों के नवीन संस्करणों की मांग बढ़ रही थी तो उसने अपनी जीवनगाथा शब्दबद्ध करने का निश्चय किया। दो-तीन प्रयासों के बाद उसे बीच में ही छोड़ दिया। मरणोपरान्त वह अधूरी आत्मकथा प्रकाशित हुई।

बचपन के दिन याद करते हुए उसने लिखा है -

''विश्वप्रज्ञा और साथ ही दूसरा शब्द मार्गनलैंड 'प्रभात देश' मेरे लिए स्वर्ग का खुला द्वार था, जिसमें से मैं खुली उजली आनन्दवाटिकाएँ देख सकता था, रंगारंग फूलों से भरी प्यारी-प्यारी फुलवारियाँ।''

ठंडे पथरीले पर्वतीय प्रदेश में सुख-सुविधाहीन अठाहरवीं शताब्दी के एक अभावग्रस्त घर में जन्में बालक के लिए जाड़ा, जो लगता था कभी खत्म न होगा, कैसा भयावना रहा होगा हम कल्पना कर सकते हैं और रात की समाप्ति पर सूर्योदय का स्निग्ध प्रकाश कैसा सुहावना होता होगा इसकी भी हम कल्पना कर सकते हैं। फिर उस बालक के मन में मार्गन और मार्गनलैंड-प्रभात और प्रभात देश-इन शब्दों को सुनते ही कौन-से और कैसे भाव उठते होंगे, इसकी कल्पना भी सहज ही की जा सकती है।

ज्ञान-विज्ञान की नित्य नई दिशाएं उसके सामने उद्घाटित हो रही थीं। उसका मन होता था सब कुछ आत्मसात् कर ले। सर्वज्ञाता-विश्वकोशवादी बन जाए।

अर्थाभाव से पुस्तकें खरीदने में असमर्थ, उसने स्वयं पुस्तकें लिखने का निश्चय किया, जिससे कि पुस्तकों की कमाई से पुस्तकें खरीद सके। रचनाकार बनने की लालसा थी और निश्चय भी दृढ़ था। पर क्या

लिखे ? कैसी रचना हो ? पिष्टपेषण उसे पसंद न था। लेखन के क्षेत्र में कुछ नया, कुछ अपूर्व करना चाहता था। स्वतंत्र मार्ग की खोज में निकला। पहले दार्शनिक बना फिर विद्वान् लेखक, व्यंग्यकार, विश्वकोशवादी। एक के बाद एक सब प्रयोग कर लिए। व्यंग्य की दो पुस्तकें छपी, एक प्रेमकथा भी, पर खास बिकी नहीं।

अंत में जो विधा उसने अपनाई उसे समकालीन साहित्य-महारथियों ने गोयटे और शिल्लर ने प्राचीन ग्रीस की पौराणिक गाथाओं के मिथकीय जीव ट्रागेलाफुस का नाम दिया। यह एक ऐसा विलक्षण जीव था जिसका सिर एक जन्तु का, धड़ दूसरे का और टांगें किसी और की थीं। जर्मन भाषा में यह शब्द ऐसी साहित्यिक विधा के लिए प्रयुक्त किया ज़ाता है, जिसमें कई विधाओं का सम्मिश्रण हो - अद्भुत कथा, यात्रावृत्तान्त, नाटक, कविता, शास्त्रचर्चा, दार्शनिक विवेचन आदि-आदि।

यूरोप के साहित्य में यह विधा अपूर्व नहीं थी। इंग्लैंड में हेनरी फ़ील्डिंग और विशेष रूप से लारेंस स्टर्न इसका अभ्यास कर चुके थे। जर्मन में इसका प्रवर्त्तन याँ पॉल ने किया। १७६३ में 'अदृश्य भवन' नाम से प्रकाशित इस अनिश्चित-विधा रचना ने उसे लोकप्रिय बना दिया। और दो वर्ष पश्चात् "हेस्पेरूस या हरकारे कुत्ते के पैंतालीस दिन' शीर्षक लगभग सात सौ पृष्ठ का वृहद् ग्रन्थ छपा तो उसने बिक्री के सारे रिकार्ड तोड़ दिए।

समकालीन साहित्य पारखी अचंभे में थे, क्योंकि वह सर्वसाधारण के लिए नहीं, विज्ञ स्तरीय शिक्षाप्राप्त पाठक को ध्यान में रखकर लिखी रचना थी।

इन दोनों ग्रंथों में तथाकथित प्रभातभूमि भारत के कुछ प्रसंग आए हैं, जिनमें उसे एक मोहक, आनन्द-काननसम, अभिलाषपूर्ण देश के रूप में चित्रित किया गया है। याँ पॉल के लिए सारा भारत मानो शकुन्तला के धर्मपिता कण्व ऋषि का आश्रम है, जहाँ मनुष्य और प्रकृति में पूर्ण तादात्म्य है।

साहित्य में कुत्ता अपवादस्वरूप ही प्रकट होता है। महाभारत के अंतिम पर्व में कुत्ते का एक प्रसंग है। द्रौपदी सहित पांचों पाण्डव महाप्रस्थान के पथ पर अग्रसर हैं। एक कुत्ता उनके साथ हो लेता है। ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर का अनुग्रह-पात्र बन जाता है। एक-एक करके द्रौपदी और चार पाण्डव लड़खड़ाकर रास्ते में गिर जाते हैं। उन्हें वहीं छोड़ दिया जाता है। युधिष्ठिर और वह कुत्ता आगे बढ़ते हैं। सहसा देवराज इन्द्र सामने खड़े दिखाई देते हैं। रथ लेकर आए हैं, सत्यवादी युधिष्ठिर को सदेह स्वर्ग लिवाने के लिए। परन्तु युधिष्ठिर अकेले चलने को तैयार नहीं। वह शरणागत कुत्ता भी साथ जाएगा, उसे कैसे पीछे छोड़ दें। भारी धर्मसंकट है। इन्द्र कुत्ते को साथ ले जाने को तैयार नहीं और युधिष्ठिर उसे पीछे छोड़ने को तैयार नहीं। इस दुविधा से कैसे उबरा जाए।

हमारे शास्त्र ग्रन्थ हर संकट से उबरने का मार्ग निकाल लेते हैं। यदि कुत्ता-कुत्ता है ही नहीं तो उसके स्वर्ग जाने में-संदेह स्वर्ग जाने में भी-कोई अड़चन न होगी। और स्वर्ग के द्वार पर खड़ा हुआ कुत्ता-महाभारत के शब्दों में श्वान-कुत्ता नहीं, श्वान के कलेवर में स्वयं धर्मराज हैं। इस प्रकार तीनों के लिए स्वर्ग का द्वार खोल दिया जाता है।

हिन्दी के उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द्र ने अवश्य अपनी प्रौढ़ावस्था में एक यथार्थ 'कुत्ते की कहानी' लिखी, जो कल्लू नाम के एक संवेदनशील, साहसी और परोपकारी कुत्ते की जीवन्त आत्मकथा है। उनके समकालीन जर्मन कथाकार नोबल पुरस्कार विजेता टॉमस मन ने भी 'स्वामी और कुत्ता' नाम की एक हृदयग्राही गीतात्मक गद्य रचना का प्रणयन किया था।

आज हम प्रेमचन्द्र, टामस मन या महाभारत की नहीं, अठारहवीं शताब्दी के एक निराले जर्मन साहित्यकार

और विशेषतया उसकी 'हेस्पेरूस या हरकारे कुत्ते के पैंतालीस दिन' शीर्षक गद्य रचना की चर्चा करना चाहते हैं। सन् १७६५ में प्रकाशित लगभग साढ़े सात सौ पृष्ठों की इस पुस्तक ने उसके रचयिता को रातों रात ख्याति के शिखर पर पहुंचा दिया और तब तक के बिक्री के सारे रिकार्ड तोड़ दिए।

वह साहित्यकार है याँ पॉल। यह फ्रेंच नाम उसने स्वयं चुना था, फ्रांसिसी राज्यक्रांन्ति से एकजुटता दिखाने और उसके आदर्शों का मार्ग प्रशस्त करने वाले दार्शनिक याँ-यक रूसो को श्रद्धांजलि अर्पित करने के उद्देश्य से। वह जर्मन साहित्य के क्लासिकल और रोमांटिक युग का ऐसा रचनाकार है, जो दोनों युगों की मुख्य धारा से प्रभावित तो हुआ पर किसी को अपना पूर्ण समर्थन न दे सका। शायद इसीलिए उसे 'निराला' रचनाकार कहा गया।

जहाँ तक भारत की काल्पनिक, प्रायः मिथकीय आदर्श छवि के चित्रण का प्रश्न है - विशेष रूप से आरम्भिक रचनाओं में-उसे रोमांटिक धारा का रचनाकार कहा जा सकता है। याँ पॉल जर्मन साहित्य का सबसे पहला साहित्यकार है, जिसने भारत के अयथार्थ, आदर्शीकृत कल्पना-चित्र की मौलिक सृजनात्मक साहित्य में संयोजना की है।

योहान गॉट्फ्रीड हेर्डर सर्वसम्मति से इस आदर्श छवि का आदि चितेरा माना जाता है। परन्तु हेर्डर ने-हम भारतीयों के लिए वांछनीय-इस छवि का प्रतिपादन विश्व संस्कृति के विकास के संदर्भ में एक बहुश्रुत विद्वान् के रूप में अपने शास्त्रीय ग्रन्थों में किया है। हेर्डर से आयु में १४ वर्ष छोटे और उसके परम प्रशंसक तथा आजीवन सुहृद् याँ पॉल ने उस छवि को अपनी आरम्भिक कथाकृतियों के ताने-बाने में बड़ी कुशलता से संयोजित किया है।

याँ पॉल यानी योहान पाउल फ्रीड्रिख़ रिख्टर और उसका जन्म २१ मार्च १७६३ को एक निर्धन परिवार में वुन्ज़ीडल नाम के स्थान में हुआ था। वुन्ज़ीडल बवेरिया राज्य के पूर्वोत्तर में तथाकथित फिख्टर-पर्वतीय क्षेत्र की एक छोटी-सी नगरी है। इस अंधेरे, शीतल, पहाड़ी प्रदेश के प्रति जीवन भर उसका लगाव बना रहा। दो -एक बार कुछ समय के लिए लाइप्सिग और वाइमार जैसे बड़े नगरों में जाने का अवसर मिला। पर वह फिर लौट आया। अधिकांश समय आसपास के होफ, श्वार्त्सेनबाख, कुल्मबाख आदि इस क्षेत्र के स्थानों में ही बिताया। आखिर १८०४ में जन्मस्थान वुन्जीडल के दक्षिण-पश्चिम में स्थित अपेक्षाकृत बड़े नगर बायरॉयट को उसने अपना स्थायी ठिकाना बनाया, जहां १७ नवम्बर, १८२५ को उसका निधन हुआ।

बायरॉयट आज जर्मनी के महान् संगीतकार रिखार्ड वाग्नर के व्यक्तित्व से अधिक जोड़ा जाता है, जहाँ उसने जीवन के अंतिम ग्यारह वर्ष बिताए और जहां उसका समाधि स्थल है। १८८३ में वाग्नर का देहान्त हुआ। तब से प्रतिवर्ष उसकी स्मृति में अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर एक विशाल संगीत-समारोह आयोजित किया जाता है। पर बायरॉयट अपने महान् नगरवासी और गोयटे के समकक्ष माने जाने वाले साहित्यकार याँ पॉल को भी भूला नहीं। वहाँ उसकी भव्य समाधि है और उसकी स्मृति में उसकी एक विशाल प्रस्तर प्रतिमा प्रष्ठापित की गई है।

उसकी जिस कृत ने प्रकाशित होते ही जर्मन साहित्य जगत् में हलचल मचा दी, महिला पाठकों को सम्मोहित कर लिया और जिसकी विधा को लेकर समकालीन साहित्य पारखी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए, उसका हम नामोल्लेख कर चुके हैं। अब उसकी संक्षिप्त चर्चा भी कर लें। विस्तृत का न समय है न स्थान, और विस्तृत बड़ी विस्तीर्ण करनी पड़ेगी।

'हेस्पेरूस या हरकारे कुत्ते के पैंतालीस दिन'

नाम की उस रचना को आज उपन्यास मान लिया गया है, क्योंकि दूसरी किसी विधा में उसे अंतर्भूत नहीं किया जा सकता। उपन्यास ही सबसे लचीली साहित्यिक विधा है। खगोलविधा, राजनीति, तत्त्वज्ञान और ऐसे ही दूसरे गहन-गम्भीर विषयों का शास्त्रीय विवेचन, सुभाषितों का संग्रह, पांच अंकों का एक ऐतिहासिक प्रहसन, विविध पात्रों वाली एक रहस्यात्मक आश्चर्य कथा, सब कुछ है। और इन सबको समेटे हुए है व्यंग्य और गलदश्रु भावुकता से परिपूर्ण एक बहुसूत्री कथानक।

हिन्द महासागर में जांक्ट योहान्निस नाम के एक छोटे-से एकान्त टापू पर बैठा याँ पॉल, जो स्वयं भी आश्चर्यकथा का एक पात्र है, कथामुख में पाठक को सम्बोधित करता है -

"अनुग्रही पाठक, तुम्हें अचरज तो होगा, पर देखते जाओ, यह पोथी बनती कैसे है-एक पोमेरेनियन कुत्ता मेरे संवाददाता क्नेफ़ से हस्तलिखित पन्नों के पुलिन्दे लाता है, मैं बस यदाकदा घटनाचक्र को आगे चलाने के लिए एकाध पन्ना बीच में जोड़ देता हूँ।"

इस प्रकार स्पिटिउस होफमन नाम के कुत्ते की सहायता से पैंतालीस अध्यायों, अनेक प्रक्षेपांशों और परिशिष्टों का एक वृहत् उपन्यास तैयार हो जाता है, जिसके कथानक की भूलभुलैयों में पैर रखना दलदल में धँसना है। डाक वाहक कुत्ते की भूमिका और महत्ता का बखान हम कर चुके हैं। पर शीर्षक का पहला शब्द 'हेस्पेरूस' क्या है ? इसकी व्याख्या अभी अपेक्षित है। 'हेस्पेरूस' सांझ का वह तारा है जो आकाश मण्डल में सबसे पहले दृश्यमान होता है और भोर में सबसे देर तक द्युतिमान् रहता है। प्राचीन ग्रीक भाषा का यह अभिधान पाश्चात्य संस्कृति में ऐतिहासिक और मानवीय आशाओं का प्रतीक माना जाता है।

फ्रांसिसी राज्यक्रांति के उद्देश्यों से संप्रेरित याँ पॉल एक प्रकार के रामराज्य, एक काल्पनिक स्वर्ग, राजनीतिक यूटोपिया का चित्र अंकित करना चाहता था। पर लेखन के दौरान एक तो उसने क्रान्ति के उदात्त उद्देश्य मिट्टी में मिलते देखे। दूसरे 'सेन्सर'-राजकीय नियंत्रण-इतना कठोर था कि कोई भी खुलकर अपने विचार प्रकट नहीं कर सकता था। समकालीन राजनीतिक घटनाओं पर किसी प्रकार की टिप्पणी कारागार के द्वार पहुंचा सकती थी। पर याँ पॉल पूरी तरह से हार मानने को तैयार नहीं था।

उपन्यास में उसने एमानुएल दाहौर नाम के एक ऐसे आदर्श मानव, ऐसे उदात्त चरित्र की रचना की है जो कीचड़ में कमल के समान, संसार में रहते हुए भी उससे ऊपर है। राग द्वेष से वह परे है; काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसी मानवीय अपूर्णताओं से मुक्त। मातृ जन्मभूमि भारत और माता-पिता की स्मृतियाँ कभी-कभी उसे उद्वेलित कर देती हैं।

एमानुएल दाहौर का जन्म भारत में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वह कब और कैसे पहले इंग्लैण्ड और फिर जर्मन भाषा भाषी संगम-द्वीप पर पहुंचा, इसका वृत्तान्त उपन्यास में नहीं है। यह स्मरणीय है कि उन दिनों ब्राह्मण हिन्दू का पर्यायवाची था। पर नाम विलक्षण है। दाहौर में पंजाब के प्रसिद्ध नगर लाहौर की अनुगूंज है। रचनाकार ने उसकी कहीं व्याख्या नहीं की। दाहौर पूर्ण निरामिषभोजी और कन्द-मूल-फल पर जीता है। उसका व्यक्तित्व अनायास हमें शकुन्तला के धर्म-पिता कण्व ऋषि का स्मरण दिलाता है, जिसकी जर्मन साहित्यलोचकों के मतानुसार, वह अनुकृति है।

१७९२ में जब याँ पॉल ने उपन्यास की रचना आरम्भ की तो उसके सामने कुछ यात्रावृत्तान्तों और योहान गॉट्फ्रीड हेर्डर की भारत सम्बन्धी रचनाओं के अलावा जर्मन में कालिदास के शकुन्तला नाटक का रूपान्तर मात्र था। इस सामग्री से प्राप्त उसकी भारत सम्बन्धी जानकारी पर्याप्त सीमित कही जाएगी। इस

आधार पर उसने भारत और भारत से आए ब्राह्मण शिक्षक का जो चित्र अंकित किया है वह अविस्मरणीय है। अड़तीसवें अध्याय में उसकी मृत्यु का हृदय विदारक वर्णन है, जहां वह अपने शिष्यों-अंग्रेज और जर्मन राजकुमारों से अंतिम विदा लेता है।

लेख में प्रयुक्त जर्मन शब्दों के हिन्दी उच्चारण

यॉं पॉल (१७६३-१८२५)
योहान पाउल फ्रीड्रिख रिख़्टर
यॉं-यक रूसो (१७१२-१७७८)
यॉं-पॉल सार्त्र (१८०५-१८८०)
फ़िख़्टल
वुन्ज़ीडल
एर्न्स्ट प्लाट्नर (१७४४-१८१८)
रेहाउ
ओरिएंट
मॉर्गन
मॉर्गनलण्ड
ट्रागेलाफुस
हेनरी फील्डिंग (१७०७-१७५४)
लारेंस स्टर्न (१७१३-१७६८)
हेस्पेरूस
योहान गॉट्फ्रीड हेर्डर (१७४४-१८०३)
होफ़
श्वार्त्सेनबाख
कुल्मबाख
बायरॉयट
रिखार्ड वाग्नर (१८१३-१८८३)
ज़ांक्ट योहानिस
क्नेफ
स्पिटिउस होफ़मन

आषाढ़ का एक दिन में पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व

❒ डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

मोहन राकेश समकालीन लेखकों और बुद्धजीवियों के बीच एक ऐसे लेखक थे जिन्होंने पुरानी मान्यताओं, रूढ़ियों और विचारों पर तीखा प्रहार किया है और राकेश ने हिन्दी में पहली बार मानव अस्तित्व के मूल में स्थित प्रश्न उठाए हैं एक नहीं अनेक प्रश्न नियति और स्थिति के प्रश्न; सत्ता-मोह और सृजन का प्रश्न, पार्थिव और अपार्थिव का प्रश्न, पुरूष मन की तृप्ति और नारी मन की आत्मरति का प्रश्न वह अपने नाटकों में निरंतर प्रश्नों से उलझते रहे - कहीं उत्तरों के साथ, कहीं बिल्कुल निरूत्तर। पर सब जगह एक जागरूक झेलने वाले व्यक्ति की तरह, एक चिंतक की मुद्रा में। एक ऐसे 'युग पुरूष' की तरह जिसने युग के प्रश्नों की चुनौती भरी भंगिमा को महसूस किया और जो आधुनिक मानव की पीड़ा और उलझन के प्रवक्ता बने राकेश और उनके नाटकों में भावना का संबंध इतना सीधा और सच्चा है और अंतर की आवाज इतनी तीखी और तल्ख है कि उनके तेवर मसीहाई से लगने लगते हैं।

मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में भी कोई एक कालिदास है। उसके जीवन में उसे घर से बाहर कर देने वाली कोई विद्योत्तमा नहीं आई; किंतु एक मल्लिका जरूर है जिसने अपने दरवाजे से महत्वाकांक्षी कालिदास को यश की चाह में स्वयं उज्जयिनी भिजवा दिया था। मल्लिका ने कभी उसके लिए हृदय के कपाट बंद नहीं किए। टूटा-हारा जब वह जिंदगी के उत्तरार्द्ध में उसके द्वार आया तो उसने उसका पहले की तरह स्वागत किया; पर सहसा जब नई स्थिति का उसे परिचय मिला तो जिस दरवाजे से घुसा था, उसी से बाहर भी निकल आया। नीत्से ने ठीक कहा है - ''जीवन जैसा कि तुमने जिया है या जी रहे हो, उसी को तुम्हें एक बार और अनेक बार जीना पड़ता है।''[१]

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में पात्रों में द्वन्द्व लहरियां कई स्तरों पर मिलती हैं जिसमें प्रमुख हैं - भावना बनाम यथार्थ का द्वन्द्व तो दूसरी ओर ग्रामीण परिवेश बनाम राजसत्ता का द्वन्द्व साथ ही समय बनाम इच्छा का द्वन्द्व कई रूपों में प्रकट हुआ है। सारा नाटक मल्लिका के घर में दर्शाया गया है। यह घर एक के बाद दूसरे अंक में उजड़ता जाता है और क्रमशः कमल और स्वस्तिक के भित्ति-चित्र मिटते जाते हैं। वहीं दूसरी ओर गंदे कपड़े, औंधे अन्न-पात्र समय की गति और दुरवस्था का चित्र प्रस्तुत करते हैं। सम्पूर्ण दृश्य-विधान मल्लिका के अंतर का प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार घर का बदलता विंब कालिदास के ऐश्वर्य के सामने कंट्रास्ट प्रस्तुत करता है और रंगिणी-संगिणी, प्रियंगुमंजरी के संवादों और क्रिया-व्यापार में नाटकीय व्यंग्य की सर्जना करता है। इस उजड़ते घर की पृष्ठभूमि में नाटक स्वयं उजड़ती मल्लिका की कथा बन जाता है किंतु उजड़ता घर उसी की नहीं, कालिदास, मातुल, अम्बिका सभी के उजड़ने की कहानी कहता है। यह बात दूसरी है कि कालिदास नेपथ्य से ही कथा सूत्र के साथ अधिक जुड़ा है। मंच पर वह प्रारंभ और अंत में ही आता है मध्य के कथा-सूत्र से वह परोक्ष रूप से संबद्ध है पर मल्लिका आदि से अंत तक विद्यमान है जैसा कि स्पष्ट है कि ''नाटक की कथावस्तु का संयोजन संघर्ष और द्वन्द्व के आधार पर हुआ है। प्रारंभ में यह

❒ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, डी. वी. (पी. जी.) महाविद्यालय, उरई (जालौन)

संघर्ष रोमान और यथार्थ के बीच है; बाद में निरीह प्राकृतिक जीवन की सरलता पर राजसत्ता का ऐश्वर्य एक व्यंग्यमयी छाप छोड़ जाता है और अंत में इच्छा के साथ समय का द्वन्द्व' मुख्य हो उठता है। पहला संघर्ष अंततः दूसरे में समाहित हो जाता है और फिर समन्वित रूप में मानव-नियति का संघर्ष मात्र बनकर प्रकट होता है। सच कहें तो यही नाटक का मूल संघर्ष है भी।''[२] सम्पूर्ण नाटक के पात्रों में संघर्ष मल्लिका-अम्बिका, अम्बिका-कालिदास, कालिदास-विलोम, विलोम-मल्लिका, मातुल-कालिदास, मल्लिका-प्रियंगुमंजरी में कई स्तरों पर होता है पर सभी संघर्ष एक सूत्र में बंध जाते हैं। अंत में कालिदास के पलायन में बाह्य संघर्ष जैसे लुप्त हो जाता है और उसका अंतमुर्ख होना ही एक त्रासद आत्मिक संघर्ष का अनुभव दे जाता है।

'आषाढ़ का एक दिन' की मूल संवदेना तो द्वन्द्वमूलक है ही पर उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है उसके पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व। सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक कालिदास आरम्भ से अन्त तक द्वन्द्व ग्रस्त रहता है। इसके अनेकों आयाम हैं। उसकी लड़ाई अपने आपसे है, अपने परिवेश से है, परिवेश से जुड़े व्यक्तियों से है, उसके अंदर के साहित्यकार के सुख व सत्ता से है, सौन्दर्य और सुविधा से है और इन सबके बीच खड़ा कालिदास अनचीन्हीं दिशाओं की खोज के लिए भटकता रहता है। कालिदास को कोई भी जिन्दगी रास नहीं आती - न पशुपालन की, न सम्मानित कवि की और न राज-पुरूष की। नाटक के आरम्भ से अन्त तक कहीं भी परिवेश उसकी रूचि के अनुकूल नहीं रहता। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति अपने परिवेश विशेष में जीता है और यह परिवेश व्यक्ति में विचारों, समस्याओं, क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं को जन्म देता है। इन सबमें असामंजस्य का होना ही द्वन्द्व का मूल कारण होता है। प्रारम्भिक जीवन से ही उसे गाँव का सामुदायिक परिवेश मिलता है। यह परिवेश कालिदास के लेखन के अनुकूल नहीं है। ''उस परिवेश में गाय चराना बड़ी उपलब्धि है और कविता करना दायित्व हीनता।''[३] मातुल, विलोम, अम्बिका सभी उसे और उसके कवित्व को अनुदार दृष्टि से देखते हैं। कारण केवल यही है कि ''वे मातुल की गाएँ न हॉककर बादलों में खो रहते हैं।''[४] परस्पर के महत्व को नकारकर दोनों, एक दूसरे की आकांक्षा की पूर्ति न कर विरोध में ठहरे हुए हैं, यही विरोध उन्हें टकराने को विवश कर देता है, चाहे कम समय के लिए ही सही, कालिदास मातुल से टकराता प्रतीत अवश्य होता है। जब मातुल को यह ज्ञात होता है कि राजकीय सम्मान को कालिदास स्वीकार नहीं कर रहा है तो मातुल, कालिदास को मूर्ख, लोकनीति से अनभिज्ञ, कुलद्रोही आदि अनेकों विशेषणों से सुसज्जित कर सार्वजनिक रूप से यह घोषणा करने को तैयार हो जाता है कि उसका कालिदास से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मल्लिका की बूढ़ी मां अम्बिका की धारणा है कि कालिदास आत्मकेन्द्रित है। यथार्थ की ठोस भूमि पर खड़ी अम्बिका उसके हर क्रिया-कलाप को विपरीत दृष्टि से देखती है क्योंकि कालिदास उसकी पुत्री को ''मात्र एक उपादान समझता है, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है।''[५] इसका परिणाम ''कालिदास के प्रभाव के कारण उसका घर टूट जाता है।''[६] और ''मल्लिका का आज अपने पर अधिकार नहीं रहा है।''[७] विलोम तो कालिदास के प्रत्यक्ष विरोध में ही है। उसकी मान्यता है कि कालिदास ''एक सफल विलोम''[८] है अतः वे एक दूसरे के विपरीत हैं। व्यंग्य वाणों से वह हमेशा कालिदास को आहत करता रहता है। कालिदास अपने परिवेश में बसे इन लोगों के विचारों से अनभिज्ञ नहीं है, वह इन सबके आक्षेपों को सहता रहता है। कालिदास की नियति की

यही विडम्बना है कि उसे एक ऐसे वातावरण में जीना होता है जिसे वह बिल्कुल नहीं चाहता। अपने में "कवि और पशुपालक की विसंगति को जीता हुआ और उस परिवेश से वह निरीह प्राणी की तरह जूझता रहता है।"[९] इस पूरे परिवेश में यदि उसे कहीं आत्मीयता और अपनत्व मिलता है तो ग्राम्य बाला मल्लिका से जो उसकी आस्था का विस्तारित रूप बनती है, उसके अंदर के कवि की प्रेरणा बनती है। पर यह सब कुछ भी अनेकों अपवादों का जनक बनता है। परन्तु इन सब अपवादों, विरोधी आक्षेपों के बावजूद भी कालिदास ग्राम-प्रान्तर से जुड़ा रहना चाहता है। यहाँ उसकी कविता की सराहना चाहे न हो पर एक आन्तरिकता तो है। बदली हुई स्थिति में उसके मन में संघर्ष उठता है, "नई भूमि सुखा भी सकती है।"[१०] परन्तु मल्लिका उसे राजकवि बनने के लिए उज्जयिनी भेज देती है - "वहाँ कविता की सराहना के लिए उपयुक्त भूमि मिलती है पर वह आंतरिकता नहीं जो पिछले परिवेश की देन थी।"[११] परिवेश यहाँ भी कालिदास के विरूद्ध जाता है। एक जगह सराहना है आंतरिकता नहीं, दूसरी जगह आंतरिकता थी सराहना नहीं, दोनों ही स्थितियों में पूर्णता नहीं दोनों में ही विरोध, सामंजस्य का अभाव कालिदास के मन को द्वन्द्वग्रस्त बनाता है जिसका परिणाम होता है कि सृजक कालिदास ठीक राकेश के समानांतर बन जाता है। नये जीवन की अपनी अपेक्षाएँ होती हैं।"[१२] यह अपेक्षाएँ ही उसकी आन्तरिक अपेक्षाओं से भिन्न होती हैं। संगति कहीं भी नहीं बैठ पाती, समन्वय किसी भी प्रकार नहीं हो पाता। परिवेश कभी तो उसके अनुकूल बनेगा, यह सोचता विचारता वह राजकवि के पद से राजसत्ता की ओर बढ़ जाता है। परन्तु अंदर ही अंदर कुछ रिसता रहता है जो उसे सामान्य नहीं रहने देता। यह अलगाव और विच्छिन्नता ही उसके जीवन की विडम्बना है। न चाहते हुए भी उसे अपने मूल परिवेश से उखड़कर अकेलेपन, संत्रास और सम्बन्धहीनता का जीवन जीना पड़ता है। जहाँ जुड़ाव है वहाँ गुंजाइश नहीं वहाँ जुड़ना पड़ता है वहाँ की आकांक्षा से नहीं, कहने का उद्देश्य यह है कि कालिदास में द्वन्द्व का कारण परिवेश से नहीं जुड़ पाना है, नहीं जुड़ पाना ही उसकी विवशता है।

दन्तुल वैचारिक स्तर पर कालिदास के द्वन्द्व को उकेरता है। वह राजपुरूष है, सत्ता वर्ग का प्रतिनिधि है। उसमें हिंसक वृत्ति है, अधिकार भावना है। उसकी यह अधिकार भावना टकराती है ग्राम पुरूष कालिदास की संवेदना से। दन्तुल के वाण से आहत हरिण-शावक को कालिदास जीवन दान देता है, शावक की पीड़ा को अपनी पीड़ा मानता है। पर दन्तुल कटिबद्ध है अपने आखेट को ले जाने के लिए, क्योंकि उसके वाण से आहत शावक उसकी सम्पत्ति है। वह इसके लिए तलवार निकालने को उद्धत रहता है। दोनों में टकराहट बढ़ने लगती है। अधिकार, सत्ता व शक्ति, एक साथ भाव अथवा संवेदना से टकराते हैं, संवेदना हल्की पड़ जाती है, किन्तु परिचय से प्राप्त अधिकार उसे संतुलित करता है। अगले अंक में नायक कालिदास मंच पर नहीं आता, नेपथ्य में रहता है। परन्तु सम्पूर्ण कथानक उसके, द्वन्द्व को उभारता चलता है। प्रियंगुमंजरी का मल्लिका से वार्तालाप कालिदास के द्वन्द्वों को स्पष्ट करता है जिसका आत्म स्वीकार है तृतीय अंक में। प्रियंगुमंजरी उस अन्तर्द्वन्द्व की साक्षी है जिसे कालिदास ने उज्जयिनी में झेला है। कालिदास अपने पिछले परिवेश को भूला नहीं है नया परिवेश उसके तनाव को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ है। वह अनेकों बार मल्लिका की, उसके घर की, उस ग्राम-प्रान्तर की चर्चा करता रहता है - "जिन दिनों मेघदूत लिख रहे थे, उन दिनों प्रायः यहाँ का स्मरण किया करते थे।"[१३] और "कालिदास जब तब यहाँ के जीवन की चर्चा करते हुए आत्म विस्तृत हो जाते हैं।"[१४] यह सच है कि पिछले परिवेश

का आकर्षण कालिदास को नये परिवेश से नहीं जुड़ने देता। तभी कई बार राजनीतिक कार्यों से उनका मन उखड़ने लगता है; मन का सन्तुलन डगमगाने लगता है। उन्होंने अपना कदम साहित्यिक क्षेत्र छोड़कर राजनीतिक क्षेत्र में रख लिया है, इस समय वे कश्मीर राज्य संभालने वाले हैं। पर कई बार उनकी आन्तरिक इच्छा उनके बढ़े कदम को पीछे लौटाने को बाध्य करती है और ऐसे समय में प्रियंगुमंजरी का "अधिक समय इसी आयास में बीतता है कि उनका बढ़ा हुआ कदम पीछे न हट जाये।"(१५) कालिदास के मन को राजसत्ता की ओर झुकाये रखना सहज नहीं है, "बहुत परिश्रम पड़ता है इसमें।"(१६) यही कारण है कि कालिदास के इस द्वन्द्व को समाप्त करने के उद्देश्य से ही प्रियंगुमंजरी यहाँ आई है ताकि यहाँ के वातावरण का अध्ययन कर सके और उसमें से कालिदास के लिए आवश्यक कुछ अंश अपने साथ ले जाये ताकि कालिदास को उन सब अभावों का अनुभव न हो। क्योंकि कभी-कभी वे इन सबके लिए व्यर्थ में धैर्य खो देते हैं। मल्लिका को लेकर कालिदास के मन में कोमल भावना है। कालिदास द्वारा प्रियंगुमंजरी से मल्लिका की निरंतर चर्चाओं के कारण ही अपरिचित होते हुए भी मल्लिका उसे अपरिचित नहीं लगती। कालिदस के मन में अपनी बचपन की संगिनी मल्लिका के प्रति मोह स्वाभाविक है। मल्लिका को लेकर भी वे द्वन्द्वग्रस्त रहते हैं इसका संकेत मिलता है। प्रियंगुमंजरी के इस कथन से "क्यों तुम्हारे मन में कल्पना नहीं है कि तुम्हारा अपना घर-परिवार हो।"(१७) और इसलिए वह मल्लिका के सामने प्रस्ताव रखती है कि वह किसी योग्य अधिकारी से विवाह कर ले। क्योंकि प्रियंगुमंजरी इस मनोवैज्ञानिक तथ्य से अपरिचित नहीं है कि मल्लिका का 'अकेला' जीवन कालिदास के मन में संघर्ष बनाये रखने वाला ही होगा।

अपने ग्रामीण परिवेश को जब कालिदास छोड़ते हैं तो उनका मन द्वन्द्वग्रस्त था। एक ओर है ग्राम प्रदेश का प्राकृतिक वैभव, दूर-दूर तक तक फैली पर्वत-शृंखलाएँ नित्यांज सुन्दरता और दूसरी ओर उज्जयिनी जाकर राजकवि बनने पर प्राप्त सुविधाएँ एक है सहज दूसरा आरोपित। फिर कालिदास का तो जन्म ही इस प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच हुआ था, अतः उसे छोड़ने में निश्चय ही उसे संघर्ष से गुजरना पड़ा होगा इसी से जुड़ा है लेखन और राज्याश्रय के मध्य पनपा द्वन्द्व। एक और साहित्यकार की प्रतिबद्धता का प्रश्न है तो दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक ललक है - राज्याश्रय और उससे जुड़े सुख-वैभव की। सृजन की प्रेरक मल्लिका के निकट रहकर सामान्य ही बना रहे या राज्याश्रय ग्रहण कर सम्मान का जीवन व्यतीत करे। इन परस्पर विरोधी वृत्तियों में से कालिदास को किसी एक का चयन करना है। चुनने की आवश्यकता उसे असमंजस में डालती है। कालिदास अपनी आंतरिक आवश्यकताओं को भुलाकर आत्मीयता से सम्बन्ध तोड़ देता है। मल्लिका का आग्रह हृदय को प्रभावित कर उसके अन्तर्मन की दिशा निर्धारित कर देता है, न चाहकर भी वह अधिकार व सुविधा मोह को स्वीकार कर लेता है। अपने इस गलत चयन की नियति को वह जीवन भर भोगता रहता है। उसका चयन राज्याश्रय तक ही सीमित नहीं रहता - "कालिदास इससे भी आगे जाकर राजसत्ता का फंदा अपने लिए स्वीकार कर लेता है।"(१८) परिणामस्वरूप राजपुरूष कालिदास और कवि कालिदास जीवन भर टकराते ही रहते हैं। परिवेश को, आत्मीयता से, मूल प्रेरणा से अलगाव उसके लिए घातक सिद्ध होता है और वह बन जाता है सृजनशीलता का आत्महंता व्यक्तित्व।

यह चुनाव कालिदास के व्यक्तित्व को खण्डित कर देता है और विभाजित कालिदास क्षत-विक्षत सा मल्लिका के सामने जाकर खड़ा रह जाता है। कालिदास इस तथ्य से परिचित है कि मन में निरन्तर उठते द्वन्द्वों

के कारण वह विभाजित हो गया है, पहले के कालिदास से वह भिन्न है अतः स्वयं से ही प्रश्न कर बैठता है, "सम्भवता पहचानती नहीं हो।"(१६) और फिर स्वयं ही इस नहीं पहचाने जाने का स्पष्टीकरण भी दे डालता है, "और न पहचानना ही स्वाभाविक है, क्योंकि मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसे तुम पहले पहचानती रही हो। दूसरा व्यक्ति हूँ।"(२०) कालिदास पुनः सोचता हुआ कुछ कहता है, "और सच कहूँ तो वह व्यक्ति हूँ जिसे मैं स्वयं नहीं पहचानता।"(२१) इन कथनों के द्वारा कालिदास अपने मन के अपराध भाव जन्य द्वन्द्व का विश्लेषण करता है। वह स्वीकार करता है कि उसने मातृगुप्त का मुखौटा लगा तो लिया पर उसमें छटपटाता रहा। यह सब संघर्ष उसे वर्षों से कोसते रहे और वह छटपटाता रहा कि कब मातृगुप्त के कलेवर से मुक्त होकर कालिदास के कलेवर में आकर जी सके, एक परस्पर विरोध भाव-प्रवणता उस पर छायी रही। "एक आकर्षण सदा मुझे उस सूत्र की ओर खींचता था जिसे तोड़कर मैं यहाँ से गया था।"(२२)

यक्ष प्रश्न यह है कि कालिदास अपने इस गलत चयन को दुरूस्त भी तो कर सकता था, पुनः उसी पुराने परिवेश में आ सकता था, बल्कि उसके विपरीत वह तो राज्याश्रय से भी आगे चलकर राजसत्ता तक पहुँच गया। इसका कारण था, उसमें पैदा हुई हीनता की ग्रन्थि, जो अभाव और भर्त्सना के जीवन यापन करने के कारण उत्पन्न हुई थी। स्व-आक्रमण प्रेरणा-वेग उसे जकड़ लेता है। जिन लोगों ने उसकी भर्त्सना की थी, उसका उपहास उड़ाया था उन सबसे प्रतिशोध की भावना भी उसे घेरे हुए थी और यह जानते हुए भी कि भौतिक जगत की ये ऊँचाइयाँ उसे सुख नहीं दे सकती वह गलत चयन पर ही अड़ा रहता है। "अभावपूर्ण जीवन की वह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी।"(२३) इसी कारण वह मूल परिवेश की ओर भूल से मुड़कर जाना तो दूर देखना भी नहीं चाहता। कश्मीर जाते समय वह इसी कारण ग्राम प्रान्तर में नहीं आना चाहता परन्तु कुछ पत्नी प्रियंगुमंजरी और कुछ लोभ संवरण नहीं कर सकने के कारण आया लेकिन मल्लिका से नहीं मिला, क्योकि "उसे भय था तुम्हारी आँखें मेरे अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी।"(२४) वह इन सबसे बचना चाहता था, परन्तु बच नहीं सका। उसकी इस यात्रा ने उसके मन को मुक्ति के लिए व्याकुल कर दिया। यह नये कालिदास का अहं था जो उसे पहले के कालिदास को पाने से रोकता रहा - चाहे उसका तन-मन छलनी हो जाये। इन सब द्वन्द्वों को शान्त करने का एकमात्र उपचार उसके पास यही था कि वह अपने व्यक्तित्व को विभाजित कर दे। वह सोचता रहा, अपने मन को आश्वस्त करता रहा कि अपने व्यक्तित्व को विभाजित करके उसने गलत चुनाव से उत्पन्न हुई समस्या को सुलझा दिया है। वह अपने को बराबर विश्वास दिलाता रहा कि आज नहीं तो कल वह परिस्थितियों पर विजय कर लेगा, उन्हें अपने अनुकूल बना लेगा और समान रूप से दोनों क्षेत्रों में अपने को बाँट देगा। और फिर कवि कालिदास और राज पुरूष कालिदास अलग-अलग खण्डों में निश्चिन्त होकर रह सकेंगे, जी सकेंगे और उसके तमाम द्वन्द्व समाप्त हो जायेंगे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। उसके द्वन्द्वों का भी अन्त नहीं हुआ। राज्याधिकारी के कार्य क्षेत्र और साहित्यकार के कार्यक्षेत्र की भिन्नता यथावत् बनी रही। व्यक्तित्व के ये विभाजित टुकड़े कभी एक बिन्दु पर नहीं मिले - इसके विपरीत अलग-अलग दिशाओं की ओर दौड़ते रहे। 'असली' कालिदास इन सबके बीच कसमसाता रहा - उसका मन मुक्ति के लिए व्याकुल होता रहा - लेकिन न तो वह ग्राम परिवेश की ओर मुड़ पाता है और न उज्जयिनी व कश्मीर के जीवन से जुड़ पाता है। उसके मन का द्वन्द्व निरन्तर बढ़ता रहा। कालिदास, राजकवि कालिदास, राजपुरूष

कालिदास (मातृगुप्त) उसके व्यक्तित्व के यह विभाजित टुकड़े परस्पर होड़ लगाते रहे, अपनी अलग-अलग कहानी सुनाते रहे। वह बार-बार असफल प्रयत्न करता रहा कि एक न एक दिन यह परिवर्तित परिवेश उसके अनुकूल बन जायेगा। परन्तु वह चिर प्रतीक्षित कल कभी नहीं आया। पुराने परिवेश के लिए भूख उसे सालती रही, गृह विरह की यह चेतना अपना दंश उसे निरंतर देती रही। क्योंकि निर्वासित व्यक्ति का गृह विरह सर्वथा मानवीय है और अस्तित्व की मूल प्रवृत्ति है। परिवेश के बदलाव के कारण उत्पन्न हुए द्वन्द्वों से छुटकारा पाने के लिए यह स्वाभाविक है कि "मनुष्य अपने पूर्व परिवेश की ओर मुड़े, भोगे हुए पूर्व क्षणों को पकड़ने का प्रयत्न करे ताकि उसकी अपनी निजता, अस्मिता, अस्तित्व व पूर्णता बनी रहे। परन्तु कालिदास कुछ भी न कर सका - न तो वह पुराने परिवेश की ओर मुड़ सका, न ही वह नये परिवेश को अपने अनुकूल ढाल सका, वह सुखी न हो सका उसके विपरीत खण्डित होता गया, सर्वथा टूटता गया।"[२५]

अन्तर्नारी ग्रन्थि की दृष्टि से कालिदास के मन में प्रारम्भ से ही द्वन्द्व चलता रहता है। बचपन व किशोरावस्था में कालिदास को मल्लिका का सान्निध्य प्राप्त रहा। अतः आगे चलकर चाहे वह विवाह प्रियंगुमंजरी से कर लेता है, मल्लिका का नारी मन उसके अचेतन में छुपा रहता है। अतः भावना की नारी मल्लिका तथा वास्तविक जीवन की प्रियंगुमंजरी में कोई सामंजस्य नहीं हो पाता और द्वन्द्व होता है। उसे लगता है अब मल्लिका वास्तविक जीवन में नहीं प्राप्त हो सकती, परन्तु व्यक्तित्व अचेतन में वह बनी रहती है और वही मल्लिका अब भी उसकी रचनाओं का प्रेरक है वह "कुमार सम्भव की उमा है, मेघदूत की विरह-विमर्दिता यक्षिणी है, अभिज्ञान-शाकुन्तल की शकुन्तला है। मैंने जब-जब लिखने का प्रयन्त किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर-फिर दोहराया।"[२६] यह सब द्वन्द्व कालिदास को अन्तर्मुखी बना देता है। वह आत्महीनता की भावना से पीड़ित रहता है और भविष्य के प्रति आशा लगाए बैठा रहता है।

भविष्य की आशा में वह कश्मीर में विद्रोह होने, सत्ता और प्रभुता का मोह छोड़कर, ओढ़े हुए मुखौटों को उतारकर शेष जीवन मल्लिका के साथ व्यतीत करने की इच्छा से 'घर' आता है। इस विश्वास के साथ कि वहाँ सब कुछ वैसा ही होगा जैसा कि वह छोड़कर गया है। परन्तु यहाँ भी वह निराशा ही पाता है। "अर्थ से पुनः आरम्भ करना सम्भवतः इच्छा का समय के साथ द्वन्द्व था।"[२७] समय शक्तिशाली सिद्ध होता है, वह उसकी इच्छा को पराजित कर देता है। कालचक्र द्वारा मल्लिका उससे छिन गई है, द्वार खुले होते हुए भी खुले नहीं है। मल्लिका ने कभी भी कालिदास के लिए हृदय के कपाट बन्द नहीं किये पर समय उन्हें बन्द कर चुका है। इस परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में बाह्यरूप से खुले दिखने वाले द्वार अब बेमानी हैं, उसकी इच्छाएँ, मूल्यहीन हैं उसकी अथ से आरम्भ करने की चाहना नितान्त अव्यावहारिक है। "जाहिर है जो राह गुजर चुकी है उसके पदचिन्ह आगे की राह के लिए सहायक सिद्ध नहीं होते और जीवन की शाम को जीवन की सुबह की तरह नहीं जिया जा सकता।"[२८] हृदय के अन्तर्द्वन्द्व और सघन हो जाते हैं, "उनके अम्बार को लिए वह उस 'घर' में नहीं खड़ा रह पाता, न ही खड़ा रहना चाहता। कालिदास पुनः अथ से आरम्भ करने की बात कहकर भी अपने अन्तर्द्वन्द्व से पराजित होकर कटु यथार्थ का सामना नहीं कर पाता। दरअसल उसकी भावना की मल्लिका और यहाँ मिली वास्तविक मल्लिका में कोई समानता नहीं। इसलिए वास्तविक मल्लिका का सामना उसके लिए संघात्मक सिद्ध होता है।"[२९] साथ ही मधुर अतीत और कटु वर्तमान या भावना बनाम यथार्थ का यह अन्तर, यह

संघर्ष उसे गहरी वेदना देता है। और जिस 'घर' से पहले कभी मल्लिका ने उसे भेजा था, बिदा नहीं किया था, उसकी प्रतिभा को विकसित होने का अवसर देने की इच्छा से, उसका पथ-प्रशस्त करने की चाहना से, आज वह अभिशप्त है उसी घर में हमेशा के लिए बाहर निकल पड़ने को, किन्हीं अनजानी राहों पर फिर-फिर जूझते रहने के लिए, अन्दर ही अन्दर सब कुछ भोगते रहने के लिए, संघात्मक व असह्य को सहते रहने के लिए इच्छा समय के साथ द्वन्द्व की 'विनाशकारी' परिणति उसे कहीं गहरे में झकझोर देती है।

कालिदास अपना घर छोड़ने का कारण मन में खोजना चाहता है और यही नैतिक द्वन्द्व उसे परेशान करता है। लौटने पर उसे लगता है कि सब कुछ बदल गया है। मल्लिका विलोम की भार्या बन चुकी है साथ ही एक बच्ची की माँ भी बन चुकी है। कालिदास आया था मल्लिका के संघर्ष में एक नई जिन्दगी की तलाश में जहाँ कोई बंधन नहीं, न ही कोई अपेक्षा, तथा असुरक्षा की भावना हो। इस अन्तर के मारक द्वन्द्व यहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ते। वर्तमान की यह स्थिति उसके हृदय में घोर हताशा भर देती है क्योंकि वह जहाँ अपने को देखना चाहता है वहाँ विलोम को पा रहा है।

कालिदास के अनेकों अन्तर्द्वन्द्वों से भरे जीवन का कारण बाह्य अपेक्षाएं इतनी नहीं हैं जितनी कि उसकी स्वयं की अपेक्षाएं हैं - वह अपने अंदर के लेखक की अपेक्षा करता है, अपने लेखन की मूल प्रेरणा-मल्लिका की उपेक्षा करता है। नए जीवन की नई अपेक्षाओं के कारण वह अपने को दो में बाँट देता है और यह विभाजन ही उसके अन्तर्द्वन्द्व का मूल कारण है। बाह्य द्वन्द्वों से कहीं अधिक संघातक वे द्वन्द्व सिद्ध होते हैं जो उसके दो रूपों में चलते हैं। परिभाषित शब्दों की दृष्टि से अवलोकन करें तो "कालिदास का अम्बिका, मातुल व विलोम के द्वन्द्व सामाजिक द्वन्द्व हैं, प्रियंगुमंजरी के द्वन्द्व पारिवारिक द्वन्द्व हैं। उज्जयिनी में जाकर वह अतीत के प्रति क्षुब्ध रहता है और विद्रोही बन जाता है तो व्यक्तिवादी द्वन्द्व उभरता है। प्रतिकार की भावना से जब वह कश्मीर का शासन संभालने जाता है, तो अहंवादी द्वन्द्व से ग्रस्त होता है और जब उसे लगता है कि वह अपनी पहचान ही खो बैठा है तो जो द्वन्द्व उठता है, वह अस्तित्ववादी द्वन्द्व है।"(३०)

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में इसी तरह द्वन्द्व व अन्तर्द्वन्द्व कालिदास की बचपन की साथी मल्लिका को भी घेरे रहता है। यद्यपि नाटक के अधिकांश भाग में उसका यह द्वन्द्व प्रच्छन्न रहता है - प्रत्यक्ष रूप से उतना नहीं उभरता जितना कि कालिदास में। धारा-सार वर्षा में भीगती मल्लिका अभूतपूर्व सौन्दर्य का साक्षात्कार करते हुए, कालिदास के सान्निध्य में आत्मविस्मृति के क्षणों में भी द्वन्द्व मुक्त नहीं हो पाती। उसके इस तरह कालिदास के साथ वर्षा में भीगने से अम्बिका चिन्तित होगी, यह विचार उसे घेर लेता है और घर लौटने पर तो मां की नीर भरी उदासी तथा आंखों में आंसू उसके द्वन्द्व को और उकेर देते हैं। एक ओर मां, दूसरी ओर कालिदास-मल्लिका दोनों को ही चाहती है और यह उसमें ग्राह्य-ग्राह्य द्वन्द्व उत्पन्न करता है। यदि "वह कालिदास के साथ रहती है तो मां रूष्ट है।"(३१) और कालिदास को वह छोड़ नहीं सकती घर बाहर सबसे लांछित व प्रताड़ित कालिदास का उसके अतिरिक्त और कौन आधार है, कोई भी तो उसे ठीक से नहीं समझना चाहता "पर मां को अपवाद की बहुत चिन्ता रहती हैं।"(३२) मन की ये इच्छाएं एक दूसरे के सीधे विरोध में खड़ी हो जाती हैं कालिदास को ग्राम के अन्य व्यक्ति ही नहीं, अम्बिका भी सन्देह और वितृष्णा की दृष्टि से देखती है। इन दोनों के सम्बन्ध में ग्राम अपवाद है। यह सभी बातें मल्लिका के हृदय को टीस पहुँचाने वाली हैं। मल्लिका के हृदय में कालिदास के प्रति अगाध स्नेह है

वह चाहती है कि कम से कम माँ तो उससे घृणा न करे - परन्तु न तो ऐसा होता है और न मल्लिका के द्वन्द्व का परिशमन होता है। एक द्वन्द्व हमेशा मल्लिका को घेरे रहता है कि समाज कालिदास को, उसके लेखन को मान्यता क्यों नहीं देता। मल्लिका की भावना कोमल अनीश्वर, पवित्र है, फिर भी लोक अपवाद क्यों ? इन भावनाओं पर आधारित उन दोनों के अनाम रिश्तों को अम्बिका द्वारा स्वीकृति क्यों नहीं प्राप्त होती। इन सम्बन्धों को जीने के लिए विवाह ही क्या अनिवार्य है और बाद में उज्जयिनी की राज्यसभा का प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि ऋतुसंहार का कवि कालिदास है और राज्य उन्हें राजकवि का आसन देना चाहता है, अम्बिका की निष्ठुर मुद्रा में कहीं कोई अन्तर नहीं आता। यह द्वन्द्व निरंतर मल्लिका को मथता रहता है कि मां के मन में कालिदास के प्रति कोई उदार भावना क्यों नहीं आती।

मल्लिका का प्रखर द्वन्द्व स्वयं कालिदास के अपेक्षित व्यवहार के कारण है। बाह्य संघर्ष को मल्लिका सहजता से झेल लेती है पर जब कालिदास ग्राम-प्रान्तर में आकर भी उससे मिलनें नहीं आते हैं, जिन्दगी भर विवाह न करने का आग्रह तोड़ देते हैं, तो मल्लिका अधिक हताश होती है, उसका तनाव बढ़ता जाता है। विलोम से विवाह परिणति चैन की तलाश में किया एक और गलत निर्णय है जिसे मल्लिका को झेलना पड़ता है। प्रियंगुमंजरी, मल्लिका से डरी हुई है तभी वह सीधा सवाल कर बैठती है, "क्यों ? तुम्हारें मन में कल्पना नहीं है तुम्हारा घर परिवार हो ?"[३३] और तिस पर माँ का सीधा प्रहार,"लो मेघदूत की पंक्तियां पढ़ो, इन्हीं में न कहती थी उनके अन्तर की कोमलता साकार हो उठी है...... आज वह तुम्हें तुम्हारी भावना का मूल्य देना चाहता है।"[३४] और विलोम का तीखा व्यंग्य "खेद है। वर्षो से इस दिन की प्रतीक्षा थी। अपनी मित्रता पर भरोसा था....।"[३५] मल्लिका अंदर ही अंदर बिखर जाती है। अनेक प्रश्नों को लेकर उसके मन में हाहाकार मच जाता है। कालिदास ने इस अनाम सम्बन्ध का निर्वाह क्यों नहीं किया ? उसकी उपेक्षा क्यों की ? ग्राम में आकर भी घर क्यों नहीं आए ? क्या भावना पर आधारित बिना विवाह सम्बन्ध स्थापित किया प्रेम कोई स्थिर रूप नहीं पा सकता ? हाँ इन सबके कारण उसमें आत्म पीड़क और पर पीड़क ग्रन्थियाँ अवश्य बन जाती हैं और आरम्भ में अम्बिका के यथार्थ की विरोधी मल्लिका अन्तर्द्वन्द्व के ऐसे ही क्षणों में स्वयं भी यथार्थ से जुड़ जाती है। जीवन की स्थूल आवश्यकताओं से जूझती मल्लिका को लगता है कि उसकी भावना सारहीन है। उसकी माँ का कथन ठीक ही है कि यह सब आत्म प्रवंचना है। उसके अवचेतन में बैठी यही अम्बिका उसे यथार्थ से द्वन्द्व करने को बाध्य करती है। "मल्लिका (सम्भवतः) के अवचेतन में उसका यह भाव बस जाता है कि जिसके कारण वह बाद में कालिदास से मुक्त होने के लिए अनजानें ही विलोम से बंध जाती है।"[३६] शायद उस विलोम को जिसे पूर्व में वह अपने घर में अयाचित अतिथि की संज्ञा देती थी, अब घर का अधिकार सौंप देती है। भावना और यथार्थ का यह द्वन्द्व जो पूर्व में अम्बिका और मल्लिका में था, अब अम्बिका के देह निःशेष होने के बाद मल्लिका के विभाजित व्यक्तित्व में चलता है। प्रेयसी के रूप में मन कालिदास के ही अधिकार में छोड़कर और पत्नी के रूप में तन विलोम को देकर, तन और मन का विभाजन करके, दोहरा जीवन जीने वाली मल्लिका एक लम्बे समय तक अपने द्वन्द्वों को छुपाए रखती है परन्तु राकेश पात्रों में अन्तर्निहित अन्तर्द्वन्द्वों को पकड़ने में कुशल हैं। अतीत में कालिदास के साथ नामहीन सम्बन्धों को आनन्द से निभाने वाली मल्लिका अब विलोम के साथ भार्या के रूप में जीवन का भार ढोती हुई जिन अन्तर्द्वन्द्वों को झेलती

है इन सबको शब्द दिये गए हैं मल्लिका के लम्बे स्वागत में। यह समाचार कि कालिदास ने कश्मीर छोड़कर सन्यास ले लिया है मल्लिका के अहं पर चोट करता है। अब तक वह समझती थी कि उसका जीवन सार्थक है, उसके जीवन की कुछ उपलब्धि है, परन्तु यह समाचार उसके द्वारा मनोमय संसार में स्थापित की गई विषय वासना को पराजित कर देता है। मल्लिका अनुभव करती है कि उसका जीवन निरर्थक है, सन्यास लेकर कालिदास उसे उसकी सत्ता के बोध से वंचित कर रहा है। उसके अंदर का लावा शब्दों में फूट पड़ता है। अतीत की चेतना लौटने लगती है। एक बार पुनः उसके यथार्थ पर (वर्तमान पर) भावना (अतीत) छा जाती है जिस कालिदास के लेखन के लिए वह अपना अस्तित्व तक मिटा देती है, जिसके प्रति उसका बिना शर्त समर्पण और आत्मदान है, जिसके कारण वह नाम खोकर केवल एक विशेषण बन जाती है, वही कालिदास जब लेखन के प्रति अपेक्षा बरतता हुआ सन्यास ले लेता है तो मल्लिका स्वयं को द्वन्द्वों के गहरे गर्त में धकेला हुआ पाती है। वह स्वयं का विश्लेषण करने लगती है। दो पुरूषों के बीच सम्बन्धों को जीने वाले आचरण को वह वारंगना जैसा मानती है। उसे लगता है कि उसके विलोम के साथ सम्बन्ध मुखौटा चढ़ाने जैसे हैं, आरोपित और मिथ्या हैं। मल्लिका शरीर एवं सांसरिक दृष्टि से पत्नी के रूप में विलोम के प्रति प्रतिबद्ध है, पर उसका मन, उसकी भावनाएँ सदैव कालिदास के प्रति समर्पित हैं। इस प्रकार मल्लिका मन और बुद्धि की विद्या शक्ति में विभक्त रहती है। "एक ओर उसका मन चाहता है कालिदास के साथ 'अथ' से आरम्भ करने को, दूसरी ओर बुद्धि का आग्रह है वर्तमान से समझौता करने का। कर्तव्य व भावना के इसी द्वन्द्व में उसका एक पैर बाहर व एक पैर अन्दर रह जाता है। अन्तर्द्वन्द्व उसे जकड़ लेता है और वह टूटी-सी आकर आसन पर बैठ जाती है, वर्तमान को चिपकाए रोते रहने की अनिवार्य नियति को भोगने के लिए।"[३७]

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में मोहन राकेश ने एक अन्य पात्र सृष्टि के रूप में अम्बिका को किया है ऐसा प्रतीत होता है कि आज के युग के उभरते द्वन्द्व को नाटक में भरने के लिए ही उन्होंने अम्बिका की व्यावहारिक दृष्टि को प्रस्तुत किया है। मां की सम्पूर्ण ममता और संवेदनशील हृदय लिए हुए भी वह मल्लिका के भावनामय, समर्पणमय व्यक्तित्व के विरोध में पड़ती है और इन दोनों पात्रों की आपसी टकराहट नाटक में तीखापन और द्वन्द्व पैदा करती है। मल्लिका और अम्बिका के मध्य का द्वन्द्व भावना और यथार्थ का है। एक काव्यमयी कल्पनाओं में खोई रहती है। तो दूसरी अपना जीवन भावना नहीं कर्म मानकर उनकी कल्पित विडम्बनाओं से परिचित होने के कारण दुःखी बनी रहती है। भौतिकवादी और भावनावादी दृष्टि की यह टकराहट नाटक में तनाव का वातावरण उत्पन्न करती है। मल्लिका में भावना में भावना का वरण करने वाली स्वच्छन्द धारा है तो अम्बिका रूढ़िवादी विचारधारा से ग्रस्त है जो समाज को महत्व देती है, अपवाद की चिन्ता करती है, वह भावना के सम्बन्ध का भी एक नाम चाहती है - 'विवाह'। यही विरोधी विचारधाराओं की टकराहट से द्वन्द्व छा जाता है। अम्बिका का संघर्ष नाटक में आदि से अंत तक मल्लिका को भावनाओं के कल्पित लोक से मुक्त कराने का है। यह द्वन्द्व अम्बिका के अन्तर में भी घुमड़ते रहते हैं। तनाव तथा उससे उत्पन्न पीड़ाओं को झेलते रहने के कारण निरन्तर एक सा बना रहने वाला ज्वर उसे जकड़ लेता है। अम्बिका के तनाव का मूल कारण है कालिदास। कालिदास के प्रभाव से उसकी पुत्री का जीवन, उसका घर नष्ट हो रहा है। वह मल्लिका को एक सजीव व्यक्ति न मानकर एक उपादान मानती है। अतः एक आशंका अम्बिका को

घेरे रहती है कि उसकी मृत्यु के बाद मल्लिका का क्या होगा ? भावनाएँ जीवन की स्थूल समस्याओं का समाधान नहीं हैं। उसकी यह कल्पित चिन्ताएँ सत्य सिद्ध होती हैं। "धीरे-धीरे घर की हालत गिरी टूटी हो जाती है, माँ-बेटी उसमें टूटी सी पड़ी रहती हैं।[३८] और किसी तरह जीवन बीत रहा है। ऐसे में प्रियंगुमंजरी का प्रश्न "क्यों ? तुम्हारे मन में कल्पना नहीं है कि तुम्हारा अपना घर परिवार हो।"[३९] यह कथन मल्लिका के साथ-साथ अम्बिका को भी हिला कर रख देता है। शब्द-कार्पण्य से घिरी अम्बिका सहसा फूट पड़ती है। 'इसके मन में यह कल्पना नहीं है क्योंकि यह भावना के स्तर पर जीती है।'...... तड़प इतनी अधिक है तथा द्वन्द्व इतना गहरा है कि वह पूरी बात बोल भी तो नहीं पाती। शब्द गले में अटक जाते हैं। प्रियंगुमंजरी के जाने के बाद फिर एक बार अम्बिका व मल्लिका में टकराहट होती है। उनके बीच के तीखे, उत्तेजनापूर्ण संवाद नाटकीय संघर्ष की सृष्टि करते हैं और परिणामस्वरूप एक दिन वह आता है जब वाह्य द्वन्द्वों से तो उसे छुटकारा नहीं मिलता है, हाँ मन से छुटकारा पा लेती है।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक का सबसे रोचक पात्र विलोम है। यथार्थ और भावना की जो टकराहट अम्बिका और मल्लिका में स्थूल रूप में होती है वही विलोम और कालिदास में सूक्ष्म स्तर पर मिलती है। विलोम की दृष्टि अधिक व्यावहारिक है, वह चतुर है, वाक्पटु है। वह कालिदास का विलोम है, कालिदास के विपरीत है, एक असफल कालिदास है। उसकी अम्बिका और कालिदास दोनों से ही टकराहट होती है उसका आना नाटक में बढ़ते हुए तनाव का आभास देता है। वह इन दोनों पर भारी बना रहना चाहता है। यहाँ तक कि जो बात अम्बिका के मन में रहती है, वह मुँह से कह देता है। कालिदास और विलोम एक दूसरे के सीधे विरोध में हैं। उनकी जय पराजय की निर्णायिका है मल्लिका दोनों ही ओर से अपनी विजय के प्रति सचेष्ट है। कालिदास के उज्जयिनी जाने का समाचार सुनते ही वह तुरन्त मल्लिका के घर पहुँच जाता है इस बात की पुष्टि करने की कहीं कालिदास मल्लिका को तो अपने साथ नहीं ले जा रहा है। तीनों अंकों में जब भी कालिदास मल्लिका के घर आता है या उसके आने की संभावना होती है विलोम वहाँ उपस्थित हो जाता है व्यंग्य वाणों का प्रहार करने के लिए। उसकी यह विरूद्ध ध र्मिता नाटक में द्वन्द्व की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। राकेश की सारी कुशलता विरोधी मनःस्थिति वाले पात्रों को आमने-सामने रखकर द्वन्द्व को उभारने में है। या यूँ कहा जा सकता है कि कालिदास अम्बिका और मल्लिका में द्वन्द्व की वृद्धि करने वाला यह पात्र अपने समस्त अन्तर्द्वन्द्व को खो चुका है, परन्तु वास्तविकता भिन्न है। मल्लिका विलोम की पत्नी है उसमें इस प्राप्ति का, इस जय का उन्माद है। इच्छा के समय के साथ द्वन्द्व में जहाँ कालिदास पराजित हुआ है विलोम अपने को विजेता मानता है "क्योंकि समय उसके प्रति क्रूर नहीं है, उसने विलोम को भी अवसर दिया है, निर्माण किया है, अधिकार दिये हैं।"[४०] परन्तु इसी के विरोध में आता है विलोम द्वारा घर के बन्द द्वार खटखटाने का दृश्य। वे द्वार जो हर समय उसके लिए बन्द हैं जब आओ तब द्वार बन्द ही मिलते हैं। क्या हर समय के यह बन्द द्वार उसकी पराजय के सूचक नहीं और वे भी विशेष रूप से तब जब कि कालिदास घर के अंदर है। क्या इस बन्द द्वार से उसका बार-बार लौट जाना उसके अन्दर व्याप्त हताशा का घोतक नहीं है ? असामान्य पात्र विलोम पूरे नाटक में इसी आकांक्षा और यथार्थ, असफलता और सफलता के मध्य झूलता रहता है। घर पाकर भी जो भ्रम ग्रस्त हो जाता है, घर वाला होकर भी जिसके लिए द्वार बंद हैं।

सम्पूर्ण नाटक में विलोम की उपस्थिति द्वन्द्वमूलक

है। आरम्भ का अयाचित अतिथि अन्त में घर का स्वामी बन जाता है। एक ही व्यक्ति को इन दो परिस्थितियों में देखना भी अपने आपमें एक विचित्र व अनोखा अनुभव है। यह अनचाहा अतिथि नाटक में आरम्भ से अन्त तक कहीं भी मल्लिका को सहन नहीं है, पर अन्त तक पहुँचते स्थितियाँ बदल जाती हैं। द्वितीय अंक में प्रियंगुमंजरी के जाने के बाद जब वह मल्लिका के घर पहुँचता है तो मल्लिका उसे चले जाने का अनुरोध करती है उसके वहीं डटे रहने के हठ पर झुंझला उठती है, और अन्त में उसी विलोम को सहन करती है जो उसका इच्छित नहीं उसे झेलना मल्लिका की विवशता है। यद्यपि कालिदास की उपस्थिति के कारण मल्लिका के मन में यह द्वन्द्व बना रहता है कि विलोम के कारण कोई अयाचित स्थिति उत्पन्न न हो जाए। कहने का अभिप्राय यही है कि नाटक में विलोम की उपस्थिति मात्र भी तनाव को जन्म देने वाली है, उसकी दुर्द्धषता भावुक मल्लिका पर निरन्तर चोट करती है, कालिदास की हार उसे जीत लगती है और मल्लिका का अपनी ओर आ जाना कालिदास की पराजय से जुड़ जाता है। इस सबसे जुड़ कर भी टूटन कहीं है तो मल्लिका में जीत को परिभाषित करने वाले एक व्यक्तित्व में।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में राजपुरूष, सत्तावर्ग प्रतिनिधि, नागरिक संस्कृति का सूचक दन्तुल भी इसी प्रकार ग्राम-पुरूष, ग्रामीण-संस्कृति के सूचक कालिदास के सामने रखा जाने वाला एक विरोधी पात्र है। इन दोनों के मध्य द्वन्द्व है अधिकार और संवेदना का। एक हरिणशावक को आहत करता है और इस कारण अपने आखेट को अपनी सम्पत्ति मानता है। आहत-शावक को लेकर कालिदास और दन्तुल के बीच की बातचीत भी तनाव पैदा करती है। वैसे दन्तुल स्वयं किसी भी द्वन्द्व से पीड़ित नहीं है पर नाटक के मूल द्वन्द्व की, कालिदास के आन्तरिक संघर्ष की शुरूआत यहीं से होती है।

'आषाढ़ का एक दिन' में मोहन राकेश ने दो नारी पात्रों को भी आमने-सामने रखा है। वह है मल्लिका और प्रियंगुमंजरी। इन दोनों पात्रों को आमने-सामने लाकर इनके व्यक्तित्व का अन्तर, संघर्ष व द्वन्द्व उभारा है। इनमें नागरिक सभ्यता की कृत्रिमता तथा ग्रामीण सादगी और स्वाभाविकता की टकराहट है। इसमें पत्नी और प्रेमिका की भी टकराहट है। प्रियंगुमंजरी की टकराहट कालिदास से भी है, आकांक्षाओं में अंतर होने के कारण। पहले में यह लगाव कालिदास के लेखन की ओर झुकाव तथा प्रियंगुमंजरी के राजसत्ता की ओर झुकाव परिणाम है। प्रियंगुमंजरी को यही इच्छा सताती है कि कालिदास को राजसत्ता की ओर किस प्रकार उन्मुख किया जाये। द्वितीय में यह संघर्ष कालिदास के राजनीति की ओर बढ़े हुए चरण कहीं लौट न जाएँ इससे जुड़ता है। प्रियंगुमंजरी निरन्तर इस जुड़ाव को मजबूत करने के प्रयास में लगी रहती है। वह ग्राम में इसीलिए आती है कि यहाँ का सब कुछ वातावरण अपने साथ ले जाये ताकि "कालिदास को परिवेश का अभाव न खटके, उनके बढ़े हुए चरण पीछे न हट जाये।"[४१]

मोहन राकेश ने एक निर्क्षेप पात्र के जरिए एक ऐसे पात्र का सृजन किया है जो अपने ही क्रिया-कलापों से निर्मित किया द्वन्द्व झेलता है। यह पीड़क द्वन्द्व गहरा होता जाता है मल्लिका के दिन प्रतिदिन के विघटन के साथ-साथ। मल्लिका की इस स्थिति के लिए वह अपने को दोषी ठहराता है। यह भावना उसे कचोटती रहती है कि यदि उसके कहने से मल्लिका कालिदास को उज्जयिनी नहीं भेजती तो उसके जीवन का यह रूप नहीं होता। कभी-कभी यह द्वन्द्व भी उसके मन में आता है कि क्यों न वह उज्जयिनी जाकर कालिदास से मिले और कालिदास की स्थिति से उसे अवगत कराए। उसे यह अनुमान कदापि न था कि कालिदास को सम्मान दिलाने

हेतु उसके द्वारा किये गए प्रयत्न मल्लिका के लिए वेदनाकारी सिद्ध होंगे। यह वही निक्षेप था जिसने मल्लिका को प्रेरित किया था कि वह कालिदास की कटुता को दूर करे तथा उन्हें उज्जयिनी भेजे क्योंकि उसकी दृष्टि में अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता तथा "योग्यता एक चौथाई व्यक्तित्व का निर्माण करती है, शेष पूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा होती है।"[४२] परन्तु अब उसे कालिदास में आए परिवर्तन व उसके कारण मल्लिका की टूटन देखकर दुःख होता है, ग्लानि होती है। उसके हृदय में निरन्तर संघर्ष चलता रहता है।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में सम्बन्धों की विसंगतियां भी नाटक में द्वन्द्व को उभारती हैं। "आषाढ़ का एक दिन में कालिदास सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है और उसकी आस्था का विस्तारित रूप है मल्लिका।"[४३] विलोम समसामयिक जीवन की अनास्था का स्वर है। आस्था (मल्लिका) और अनास्था (विलोम) का सम्बन्ध निश्चय ही द्वन्द्व उत्पन्न करता है। अपनी आस्था को खोकर कालिदास भी अपनी आत्मा से निर्वासित हो अन्तर्द्वन्द्व ग्रस्त हो जाता है। सम्बन्धों की विरूद्धता का एक अन्य उदाहरण है मल्लिका और अम्बिका। अपने वैचारिक मतभेद के कारण ये माँ-पुत्री के सम्बन्धों को भली-भाँति नहीं जी पाती। प्रियंगुमंजरी और कालिदास के सम्बन्ध भी भौतिक धरातल से ऊपर नहीं उठ पाते, उनमें अपेक्षित भावमयता का अभाव ही रहता है। उधर कालिदास मल्लिका के साथ एक लम्बे समय तक भावनामय सम्बन्धों में डूबा रहता है, परन्तु बाद में वह मल्लिका की उपेक्षा कर देता है जिसके कारण मल्लिका विलोम की पत्नी बन जाती है। नाटक के अन्त में कालिदास का 'दूसरा व्यक्ति' बनकर विलोम की 'भार्या' के पास आना तो इन सबके हृदय में उबलते द्वन्द्व में ईधन का काम कर देता है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि 'आषाढ़ का एक दिन' में राकेश ने सृजन प्रक्रिया के दौरान परिस्थितियां, पात्र, सम्बन्ध, संवेदना सभी स्तरों पर द्वन्द्व की अनिवार्यता को समझा, उसे शक्ल प्रदान की, ऐसी स्थिति में शिल्प भी तनाव निर्माण में सहायक सिद्ध हुआ शिल्प के स्तर पर भी राकेश ने द्वन्द्व का बखूबी प्रयोग किया। नाटक में दो प्रकार के त्रिकोणात्मक संघर्ष उभरे हैं - एक है पात्रों के स्तर, पर वह है प्रेम का संघर्ष-कालिदास, मल्लिका व विलोम के मध्य, दूसरा है चयन के स्तर पर कला, सत्ता व प्रेयसी के मध्य। ये त्रिकोणात्मक संघर्ष कुछ समस्याओं को जन्म देते हैं यही समस्याएँ द्वन्द्व का कारण बनती हैं। राकेश ने इन समस्याओं से उत्पन्न द्वन्द्व को खोजा है।

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. जॉयफुल विजडम, नीत्से, पृ.१००
२. आधुनिक नाटक का मसीहा, डॉ. गोविन्द चातक, पृ. ५५
३. आधुनिक नाटक का मसीहा, डॉ. गोविन्द चातक, पृ. ३६
४. आषाढ़ का एक दिन, मोहन राकेश, पृ. २३
५. वही, पृ. २४
६. वही, पृ. १४
७. वही, पृ. १२
८. वही, पृ. २२
६. आधुनिक नाटक का मसीहा, डॉ. गोविन्द चातक, पृ. ३६
१०. आषाढ़ का एक दिन, पृ. ४५
११. आधुनिक नाटक का मसीहा, डॉ. गोविन्द चातक, पृ. ४०
१२. आषाढ़ का एक दिन, पृ. ४६
१३. वही, पृ. ६७
१४. वही, पृ. ७०
१५. वही, पृ. ७०

१६. वही, पृ. ७४
१७. वही, पृ. ७४
१८. आधुनिक नाटक का मसीहा, डॉ. गोविन्द चातक, पृ. ४४
१६. आषाढ़ का एक दिन, पृ. ६५
२०. वही, पृ. ६५
२१. वही, पृ. ६५
२२. वही, पृ. ६८
२३. वही, पृ. १००
२४. वही, पृ. १०१
२५. मोहन राकेश : नाट्य सृजन और द्वन्द्व - डॉ. उषा भार्गव, पृ. ५६
२६. आषाढ़ का एक दिन, पृ. १०३
२७. वही, पृ. ११०
२८. आधुनिक नाटक का मसीहा - डॉ. गोविन्द चातक, पृ. ३८
२६. वही, पृ. ४८
३०. मोहन राकेश : नाट्य सृजन और द्वन्द्व - डॉ. उषा भार्गव, पृ. ६१
३१. आषाढ़ का एक दिन, पृ. १६
३२. वही, पृ. १६
३३. वही, पृ. ७४
३४. वही, पृ. ७७
३५. वही, पृ. ८४
३६. आधुनिक नाटक का मसीहा, डॉ. गोविन्द चातक, पृ. ५०
३७. मोहन राकेश : नाट्य-सृजन और द्वन्द्व, पृ. ६४
३८. आषाढ़ का एक दिन, पृ. ७५
३६. वही, पृ. ७४
४०. वही, पृ. १०६
४१. वही, पृ. ७०
४२. वही, पृ. ३२
४३. लहरों के राजहंस (भूमिका), पृ. ५

बिहार में भोजपुरी आन्दोलन की शुरूआत

❑ डॉ. प्रभा कुमारी

भारत एक बहुभाषा तथा बहु-संस्कृति वाला देश है। भाषा को समाज बनाता है और समाज को भाषा। किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी भाषा और संस्कृति होती है। भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है और अनेक लोकभाषाएँ तथा लोकथाएँ है जिनका योगदान हिन्दी की श्रीवृध्दि में काफी रहा है। बिहार में मुख्यरूप से भोजपुरी भाषी लोगों का क्षेत्र है भोजपुर, शाहाबाद, पूर्वी सारण, पश्चिमी सारण, मोतीहारी, सिवान, गोपालगंज, पूर्वी चंपारण, पश्चिमी चंपारण, आरा, बक्सर, छपरा तथा भागलपुर, मुंगेर में बसे हुए भोजपुरी भाषी बिहार और उत्तर प्रदेश के हैं जो भोजपुरी भाषा बोलते हैं। बिहार की राजधानी पटना में भी भोजपुरी प्रदेशों के लाखों लोग हैं। उत्तर प्रदेश में भोजपुरी भाषा क्षेत्र मुख्य रूप से हैं बलिया, गाजीपुर, बनारस, जौनपुर, मिर्जापुर, गोरखपुर, देवरिया तथा आज़मगढ़ जहाँ लोग भोजपुरी में ज्यादातर बातें करते हैं। वैसे तो भोजपुरी भाषा भारत के कई क्षेत्रों में बोली जाती है।

इतना ही नहीं भोजपुरी भाषा में अनेक फिल्में भी बनी हैं, जो इस भाषा के भविष्य को विश्व के पटल पर प्रकाशमान होने का संकेत है। विश्व के कई देशों में मुख्यतः भोजपुरी बोली जाती है जिसमें मॉरीशस, फीजी, गुआना, सूरीनाम, अफ्रीका इत्यादि देश हैं जहाँ भारत के प्रवासी लोग बसे हुए हैं। मारीशस में लगभग ७०% बिहारी मूल के लोग हैं जिनकी मातृभाषा भोजपुरी है। भारत के राज्य बिहार के कुँअर सिंह विश्वविद्यालय आरा में भोजपुरी भाषा में स्नातकोत्तर तक की पढ़ाई होती है तथा अन्य विश्वविद्यालयों में मात्र स्नातक तक की पढ़ाई हो रही है। स्कूल के भी पाठयक्रमों में भाषा-समूह में भोजपुरी भाषा वैकल्पिक रूप से लागू की गयी है। जिसे अनिवार्य करना चाहिये ताकि भोजपुरी भाषा आन्दोलन पूर्णरूप से सफल हो सके। इस भाषा में बिहार के सिवान से भगवान सिंह 'भास्कर' जी के संपादन में वयार और उड़ान पत्रिका निकल रही हैं। भोजपुरी साहित्य सम्मेलन, पटना (बिहार) से पत्रिका ब्रजकिशोर और पाण्डेय कपिल जी के संपादन में निकल रही है जिसके संपादक मंडल में भगवान सिंह भी हैं।

बिहार में भोजपुरी आन्दोलन की शुरूआत तो १६६१ ई. में हुई थी, पर १६७१-७२ से इस आन्दोलन ने गति पकड़ी है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद जी जीरादेई, सिवान, बिहार के भोजपुरी भाषी थे, उन्होंने भी भोजपुरी के विकास के लिये काफी काम किया था। डा. राजेन्द्र प्रसाद राजभवन में भी भोजपुरी में बातें किया करते थे। आज विश्व भोजपुरी भाषा सम्मेलन के तत्वाधान में इस भाषा में काफी गति आ गई है। लखनऊ, उत्तर प्रदेश से भोजपुरी लोक, मासिक पत्रिका, संपादक-राजेश्वरी शांडिल्य जी द्वारा निकल रही है। भोजपुरी भाषा में खासकर बिहार में नियमित रूप से सभा-सम्मेलन, गोष्ठियां, चर्चा-परिचर्चाएँ होती रही हैं। मारीशस में भी भोजपुरी भाषा के विकास के लिये कार्यक्रम होते रहते हैं महात्मा गाँधी भोजपुरी भाषा संस्थाने मौका में। भोजपुरी बोलने वाले लोग हर जगह दिखाई पड़ते हैं। जहाँ भारत के कोलकाता में बहुत ज्यादा संख्या में लोग भोजपुरी में बातें करते नजर आते हैं। भोजपुरी लोकगीत में इसका अनुभव किया जा

❑ अध्यक्ष, अर्थशास्त्र, मुरारका कालेज, सुलतानगंज टी. एम. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

सकता है। कोलकाता भारत के पूरब में पड़ता है जहाँ लोग सदियों से कमाने जाते रहे हैं .....

" पिया मोरे गइले हो, पुरूबी बनिजिया
के हो जेइहें, उजे हमरो जेवनवा....."

इस तरह से इस पूरबी भारत का नाम भोजपुरी के कई लोक गीतों में पाया जाता है.........

" कहीने ए पिया टीकवा गढ़ा दऽ
टीकवा के आसेपासे हरे राम लिख दऽ
तेरे दिन के छुट्टी लेके हावड़ा देखा दऽ..."

कोलकाता (बंगाल) का मुख्य स्टेशन का नाम हावड़ा है। बिहार में भोजपुरी भाषा का अतीत सृजन की दृष्टि से निराशामय था। लेकिन आज साहित्य सृजन के क्षेत्र में अग्रणी राज्यों में एक है। अतीत में भोजपुरी भाषा का आदान-प्रदान मौखिक था। लेकिन वर्तमान समय में भोजपुरी भी साहित्य की रचनाधर्मिता में काफी वृद्धि हो रही है जिसे विभिन्न विधाओं के भोजपुरी लोक साहित्य में देखा जा सकता है। भोजपुरी लोकगीत, लोककथा, मिथक का भी संकलन किया गया है, पर भोजपुरी भाषा की अपनी लिपि नहीं है इसलिये देवनागरी लिपि में लिखी जाती है, वैसे हिन्दी और भोजपुरी सगी बहनें हैं। सदियों से भोजपुरी लोकगीत, लोककथा, लोकनाट्य, मिथक लोककंठ से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही थी, पर आज किताबों में संकलित है।

१९९१ ई. की जनगणना के अनुसार भारत में १६५२ लोकभाषाएँ हैं जबकि बोलियाँ मिलाकर ३३७२ भाषाएँ हैं। इन लोकभाषाओं में से मात्र एक सौ भाषाओं में सक्रिय रूप से निरंतर साहित्य सृजन हो रहा है। लगभग २२ भाषाएँ भारत के संविधान के अष्टम अनुसूची में डालने के लिये केन्द्र सरकार के पास भेजी जा चुकी हैं।

वर्तमान समय में शहरीकरण की तेजगति, भूमंडलीकरण और बाजारीकरण के कारण क्षेत्र विशेष की लोकभाषा में अंग्रेजी तथा अन्य लोकभाषाओं के शब्द भोजपुरी भाषा में घुसने लगे हैं। इतना ही नहीं मारीशस के भोजपुरी में भी फ्रेंच भाषा के शब्द उड़-उड़ कर आ चुके हैं। अब भोजपुरी भाषा-सेवी के द्वारा ही भोजपुरी भाषा की शुद्धता को बनाए रखना मुख्य कर्त्तव्य होगा। लोकभाषा भोजपुरी को बाजारीकरण की अंधी दौड़ से बचाने के लिये दृढ़ संकल्प लेना होगा ताकि बाहरी शब्द भाषा के सुमधुर मिठास में तीतापन ना डाल पायें।

अगर भोजपुरी शब्दों का आदान-प्रदान होता रहेगा तब भाषा-प्रदूषण नहीं होगा और भविष्य प्रकाशमय होता चला जायेगा। अगर वैश्वीकरण के तूफान में भोजपुरी भाषा प्रदूषित हो जायेगी तब कहाँ-कहाँ इसके प्यारे-प्यारे शब्दों को दुनियाँ की भीड़ में खोजा जायेगा। यह भाषा.... यह संस्कृति तो विरासत से मिली है जिसके मिटने पर फिर मिलना मुश्किल होगा।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन की किताब 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' में उन्होंने कहा है कि लोकसाहित्य के संरक्षण के प्रति अगर जनता उदास होगी तब वे भाषा के महत्व को खो देंगे।'

भारत-मॉरीशस की बहुमूल्य लोकभाषा भोजपुरी की विरासत, सदियों की परम्पराओं, अनुभवसिद्ध तथ्य और लोकमनोरंजन तत्व से प्राप्त हुई है। अगर भोजपुरी भाषा को सुरक्षित नहीं किया गया तब यह भाषा दूषित होने के कगार पर पहुँचेगी जिसे अपनी अवस्था में पुनः लाना मुश्किल होगा।

भारत में अंग्रेजी शासनकाल में सभी स्कूल-कालेजों में अंग्रेजों ने अंग्रेजी मीडियम अनिवार्य रूप से लागू किया था कि भारत की भाषा और संस्कृति को खत्म करके सब में अंग्रेजियत की बीज रोप देना है। भला भाषा एवं संस्कृति कोई एक दिन की उपज नहीं कि जो जैसे चाहे वैसा कर ले, लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति थी कि भारत की संस्कृति और भाषा को खत्म करना।

लेकिन लार्ड मैकाले अपनी नीति में सफल नहीं हो पाये। आज भोजपुरी भाषा पुष्पित और फलित हो रही है हिन्दी के साथ-साथ अपनी मधुरता के कारण। भारत में भोजपुरी भाषी की हिन्दी में अधिकांश भोजपुरी के शब्द मिलते हैं।[१]

आज भोजपुरी के साहित्यकार भोजपुरी के प्रति मुग्ध होकर उसके अतीत की क्षति से अवगत होकर भोजपुरी साहित्य में विभिन्न विधाओं में जैसे निबंध, संस्मरण, नाटक, उपन्यास, कविता, गज़ल, दोहे, कहानी, गीत, पटकथा इत्यादि की रचना कर रहे हैं। बिहार में बहुत से भोजपुरी साहित्यकार इस भाषा की रचना से जुड़े हुए हैं।

थोड़ी सी चिंता की बात यह है कि हिन्दी फिल्म के गाने भोजपुरी भाषा में घुसने लगे हैं। इसलिये इससे उबरने के लिए समय-समय पर सम्मेलन करवाये जाना चाहिए ताकि इस भाषा की ओर लोग उन्मुख हो सकें।

भारतेन्दु जी ने कहा है.......

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति के मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय के शूल।"

भोजपुरी जन जीवन में लोकगीतों का अक्षय भंडार है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कारों के गीत होते हैं जिसे गाँव-गाँव घूमकर भोजपुरी के लेखकों ने संकलित किये हैं जिनमें बिहार के सिवान के भगवान सिंह 'भास्कर' जी भी एक हैं। भोजपुरी भाषा में ऋतु के अनुसार गीत, पर्व के अनुसार गीत और मनोरंजन के भी लोकगीत पाये जाते हैं। वैसे तो भोजपुरी भाषा के लोकगीतों की लम्बी शृंखलाएँ हैं। भोजपुरी गीत के संकलन करने का मतलब है कि भूमंडलीकरण और शहरीकरण के बढ़ते कदम की विषैली हवा में लोकगीत दूषित ना हो जायें या लुप्त ना हो जायें। क्योंकि लोकगीतों और लोककथाओं में जनमानस की आत्मा वास करती है। भोजपुरी लोकगीत भी अन्य लोकगीतों की तरह कुछ छंदबद्ध नहीं हैं पर इनमें असीम गेयता है। गीतों में लोकजीवन की मार्मिकता भी है। भिखारी ठाकुर के नाटकों में नारियों की पीड़ाएँ ज्यादा से ज्यादा अभिव्यक्त हुई हैं। इस तरह से लोकजीवन में लोकगीत की अनंत शृंखलाएँ हैं जो संप्रेषण की भाषा है और भोजपुरी भाषा का विकास जिसे हिन्दी ने आत्मसात किया है जिससे हिन्दी की संवृद्धि हुई है। भोजपुरी संस्कृति के साथ-साथ भोजपुरी भाषा भी सभ्यता के साथ-साथ चली आ रही है।

लेकिन प्राचीन काल से जो विभिन्न संस्कारों के गीतों तथा लोककथाओं की रचनाएँ हुई हैं जिनके लेखक-लेखिका के नाम अज्ञात हैं। ऐसा इसलिए हुआ की पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में भाषा मिलती चली गई। वैसे हर युग में सर्जक के सामने चुनौतियों और भाषाई-प्रवाह रहा होगा जिनका मुकाबला करना पड़ा होगा। हो सकता है कि अति प्राचीन समय में लिपि नहीं रहने के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी लोकगीत मौखिक आता रहा है। आज दृश्य साधन जैसे टी.वी., सिनेमा, विज्ञापन, धारावाहिक तथा साहित्य में संगीत के रूप में कैसेट में सब कुछ कैद होने लगे हैं जिससे जहाँ-तहाँ लोग बजा लेते हैं चाहे सफर, चाहे घर में। इसलिये आज रागात्मक आवेगों को आसानी से देखा सुना जा सकता है। लेकिन इससें ज्यादा सशक्त सृजन की भाषा होती है।

भोजपुरी भाषाओं में साहित्य सृजन इतने हुए हैं और हो रहे हैं कि भविष्य में असीम संभावनाएँ बनने लगी हैं। क्योंकि लोकभाषा में रूप, रस, गंध, ध्वनि और स्पर्श होता है जिसमें अपनी-अपनी संस्कृति की झलक और पहचान होती है। लोकभाषा में अभिव्यक्ति की असीम क्षमता होती है।[२]

हमारा शरीर भी पंचतत्वों से बना है और हमारे विधि-विधान में इन पंच तत्वों का काम आता है। जैसे

आग, जल, माटी पूजा के काम में, हवा जीने के लिये तथा आकाश को भी दिखाया जाता है शादी के समय । इतना ही नहीं आकाश की छाँव में पलते-फलते, फूलते तथा विश्राम करते हैं। यही पंचतत्व हमारे जीवन का उद्‌गम और अंत है। शादी के समय माटी कोड़ने के गीत गाये जाते हैं .....

माटी कोड़े गइले रे ...

ओही मट कोड़वा ...

हो बाजार बसेला ...

इस तरह से 'हल्दी' का गीत गाया जाता है ....

बाबा हो कवन बाबा

हरदिया दऽना बेसाही ...।

हरदी हो तू तऽ बड़ी सोहावन

सुरतिया दऽ ना चढ़ाय ...।

इस तरह से भारतीय संस्कृति के भोजपुरी लोकजीवन में पित्तर नेवतनी की परम्परा रही है।

किसी भी शुभ काम करने से पहले पित्तर नेउता जाता है और गीत गाया जाता है ......

अरगन नेवतनी, परगन नेवतनी

नेवतनी कुल परिवार ....।

छप्पन कोटि देवतन नवतनी

रंथ चढ़ल भगवान ....।

इस तरह से भोजपुरी लोकगीत, लोककथा और संस्कृति में अध्यात्म के तत्व पाये जाते हैं। लेकिन आज आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण और बाजारीकरण में शहर-गाँव में हमारी भाषा में कितनी मिलावटें हुई हैं। क्या इसका अंदाजा लगाया जा सकता है ? आज का युवा-वर्ग अपनी पीढ़ी के लिये इस सांस्कृतिक ह्रास को कैसे जीवित रख पायेंगे ? यह तो वे ही बतला सकते हैं।

आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हिन्दी और अपने क्षेत्र की क्षेत्रीय भाषाओं पर पकड़ मजबूत करके अपनी मँहगी वस्तुएँ बेचने में काबयाब हो रही हैं। जिससे उनकी आय बढ़ रही है और हमारी लोकभाषा में उसके शब्द घुस रहे हैं।[3]

भिखारी ठाकुर हज्जाम थे जिसके कारण नाई का काम और संवदिया का काम करते हुए अनेक अमीर-गरीब और संभ्रांत घरों के लोगों को बहुत नजदीक से देखते थे और नारियों पर विशेष निगाहें थी कि नारियों के साथ दुःख-दर्द का लहराता सागर रहता है। इन दुःखों को भोजपुरी भाषा के जरिये भिखारी ठाकुर ने अपने गीतों में उतारा था। वे प्रगतिशील गीतकार थे।

भगवान सिंह भास्कर भी भोजपुरी भाषा के समर्पित लेखक-अनुवादक हैं जिन्होंने भगवद्-गीता को भोजपुरी लोकधुन में अनुवाद किया है। वे भोजपुरी भाषा में कई किताबें भी लिखे हैं जैसे पद्मावती (भोजपुरी उपन्यास), शकुन्तला (भोजपुरी-गाथा काव्य), अड़हुल के फूल (भोजपुरी कहानी संग्रह), आइल बसंत बहार (भोजपुरी गीत), डुमरी कतेक दूर (भोजपुरी निबंध संग्रह), लोकलहरी (फगुआ, चइता, छठ, पीड़िया, सोहर, झूमर, धनरोपनी, कजरी) इत्यादि। वे मंगल गीत, विवाह गीत, उपनयन गीत, और सहाना के गीत भी संकलित किये हैं। भावी पीढ़ी की धरोहर के रूप में, भोजपुरी भाषा के विकास के लिये अखिल भारतीय... भोजपुरी साहित्य सम्मेलन सिवान, बिहार में स्थापित किया गया है। भागलपुर (घोघा) के डॉ. प्रेमचंद पाण्डेय जी भी "नवका अँजोर" भोजपुरी पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। एक कहावत है कि अपनी मातृभाषा महतारी बराबर होती है यानी जे भाषा महतारी बराबर होला, एहे से लोगन के आपन भाषा से स्नेह उपजेला। लेकिन तब ल उजागर होखी जब भाषा के विकास के खातिर कुछ करे के कोशिश करल जाय।

४-५ नवम्बर २००६ को सासाराम बिहार में अ.भा. भोजपुरी सम्मेलन का इक्कीसवाँ अधिवेशन हुआ था जिसमें माँग की गई थी कि जल्दी से जल्दी भोजपुरी भाषा को संविधान की अष्ट्म अनुसूची में स्थान दिया जाय। आज भोजपुरी भाषी लोग बिहार में काफी जग गये हैं और उत्तर प्रदेश में भी जगे हैं।

इसलिये भोजपुरी भाषा का भविष्य उज्जवलमय दिखता है। मारीशस के राष्ट्र कवि ब्रजेन्द्र भगत मधुकर ने भी कहा था कि भोजपुरी भाषा का भविष्य प्रकाशमय होगा। वैसे भी आज की गतिविधियों से जैसे भोजपुरी फिल्म की भरमार तथा भोजपुरी गीत के कैसेट की अधिकता के कारण भविष्य में इस भाषा की असीम संभावनाएँ बन रही हैं।

भोजपुरी भाषा के विकास से हिन्दी का काफी विकास होने की संभावना है, क्योंकि दोनों भाषा सगी बहनें हैं। अगर दूर-दराज में दो अनजान लोग अपनी भाषा के मिलते हैं तो कितना अपनापन होता है। अपनी भाषा से लोग एक दूसरे के नजदीक पहुँचते हैं।

भोजपुरी तथा अन्य भाषाओं में श्रम संबंधी गीत गाये जाते हैं जैसे धनरोपनी के गीत गाये जाते हैं गाँवों में, खेतों में .....

कह्लेली धनरोपनी हे इनरदेव हमार खेतवा में बरसीं हाली-२
खेतवा सूखल हई, सूखी गइले रे अहरा हो रामा
पानी बिन सून रे भइले खेतऽ आर नदियानवाँ
चारों ओर ऽ झाँकेला अकाल के सूरत हो रामा
हाली-हाली बरसीं हे इनरदेव गरम दोपहरिया भर
धान रोपी ऽ हाली लमहर डग से घरवा जइव हो रामा
सूखल बा ताल-सततालवा और कुँआ, गढैया हो रामा
वर्षा बिनू सून रे भइले चारों दिश वहियारवा से
दरिया बहा दऽ आर चुनरिया भींगा द हो रामा

भोजपुरी लोकभाषा को सुरक्षित रखने के लिये हमेशा सम्मेलन, गोष्ठियों की गतिविधियाँ होती रहनी चाहिये ताकि इस भाषा का आदान-प्रदान होता रहे और शब्दों में मिलावट नहीं हो पाये। साहित्य-सृजन तो भाषा को लुप्त होने से बचाये रखता है।

मॉरीशस के साहित्यकारों ने भोजपुरी भाषा को अपनी रचना में प्रयोग किया है। क्योंकि उनके पूर्वजों का इतिहास बोध उनके साहित्य की सबसे प्रबल अस्मिता है। उनके पूर्वजों को दी गई यातनाएँ आज भी उन्हें झकझोरती हैं। जिससे खूब इतिहास-परक साहित्य सृजन हो रहा है। मॉरीशस के साहित्य में भोजपुरी और हिन्दी प्रतिबिम्बित होते हैं।[४]

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने नारियों के दुःख से पीड़ित होकर अपनी मातृभाषा भोजपुरी में नाटक "मेहारून दुरदसा" लिखे हैं जिसमें उन्होंने कई सवाल उठाये हैं।

एक माई-बाप से एक ही उदरवा से,
दूनो के जनमवा भइले रे पुरूखवा।।
पुत्र के जनमवा में नाच आ सोहर होला,
बेटी के जनम पर सोग रे पुरूखवा।।
धमना-धतरिया पर बेटवा के हक होला,
बेटिया के किछुवो ना हक रे पुरूखवा,

इतना ही नहीं भिखारी ठाकुर ने भी भोजपुरिया समाज के भीतर को विहंगम दृष्टि से देखा है। क्योंकि हज्जाम का काम घूम-घूमकर करने वाला और चिट्ठी पहुँचाने वाला संवदिया से कुछ भी नहीं छिप सकता था समाज का। भिखारी ठाकुर लांगट आँसू से पैनी दृष्टि डालकर देखले रहलन समाज के। ऊहाँ के बँधुआ मजदूर के से जिन्दगी विरासत में पाउले रहलन। बे रोक-रोक सामंत के हर घर में उन्हुकर पइसार रहे। ऐहे ले गइल-गुजल हालत में समाज में स्त्री के देखले रहलन। तब भिखारी के जन्मजात कवि हिरदय पिघिल उठल आ काव्य-रूपकन के रूप में उन्हुकर संवेदना निकले लागत। भिखारी ठाकुर पाँच दशक ले आपन

नाटकन के लेखन और मंचन कऽ जरिये घूमकेतु नियर भोजपुरिया समाज पर छा गइले रहलने आ ओही दौरान ऊ मेहारून के बदहाली के अपना प्रभावोत्पादक गीत बनइलन।

बिहार के नाटककार भिखारी ठाकुर ने बेटियों के बेचने और बुढ़वा संग बियाह के मार्मिक दुःखों का बखान अपने नाटक में किया है। वे जन्मजात संवेदशील कवि थे और समाज सुधारक जो हर तबके के लोगों के दुःखों को भोजपुरी गीत-कथा में उकेरा है। वे भोजपुरी के प्रगतिशील गीतकार थे। जिन्होंने अशिक्षित, अंधविश्वास और कुरीति से भरे समाज को गीतों और नाटकों के जरिये सुधारने का प्रयत्न किया था, भिखारी ठाकुर के 'विदेशिया' में अचानक नायिका के नायक के परदेश जाने पर नायिका लोगों के साजिश के जड़ में जाना चाहती है .....

" कई हमरा जरिया में
भिखल बाटे अरिया हो
चकरिया दरिके ना
दुःख में होत बा जतसरिया हो
चकरिया दरि के ना ....।"

भिखारी ठाकुर के गीत में हँसाने-रूलाने की असीम क्षमता है। उन्होंने भोजपुरी भाषा में जनता का साहित्य रचा है। उनके संबंध में प्रो. हरिशंकर पाण्डेय ने कहा है .....

"उन्हु करा शब्द का घुंघरून में बोलल गाँव के पीड़ा इहा के उर्मिलन के लाज भोजपुरिये में रह गइल अनेत का गोड़खुल के नाटक के नहरनी से बड़ा बारीक उसकवलन, जे देख हँस के सह गइल ऊ एक आँख से हँसलन, मगर एक से रोवलन राजा भाव भिखारी नाम गाँवें-गाँव रह गइलन"

इस तरह से धीरे-धीरे भोजपुरी भाषा, साहित्य सृजन होता चला गया ताकि भोजपुरी भाषा का सशक्त दस्तावेज रहे पीढ़ियों को ज्ञात कराने। क्योंकि यह भावी पीढ़ियों की अमानत है जिसे लौटाया जाता है और साथ-साथ साहित्य का विकास होता है।[५]

लोकगीतों में लोगों के चाल-चलन, रहन-सहन तथा आत्मा बसती है। दुःख वाले समय में भी लोकगीत गाकर समय बिताया जाता और सुख के समय भी गाया जाता है। हमारे लोकजीवन में अध्यात्म के तत्व पाये जाते हैं। हमारे जितने भी संस्कार के लोकगीत हैं, सभी में ईश्वर के नाम आते हैं उसमें भोजपुरी भाषा भी अपवाद नहीं है बल्कि आध्यात्मिक गीतों की भरमार है .....

कथिये चढ़ल शिवशंकर अइनी
कथिये चढ़ल गणेश ?
कथिये चढल सब देवता अइनी
बरम्हा, विसुन, महेश।
बँसहा चढ़ल शिवशंकर अइनी
मुसहा चढ़ल गणेश
रथ चढ़ल सब देवता अइनी
बरम्हा, विसुन, महेश।

हमारे लोक जीवन में भोजपुरी गीतों की माधुर्य का अनुभव किया जा सकता है। भोजपुरी लोकगीत के मुख्य चार प्रकार होते हैं जैसे :- धर्म संबंधी गीत, संस्कार संबंधी गीत, ऋतु संबंधी गीत तथा कार्य संबंधी गीत या श्रम संबंधी गीत।

इतना ही नहीं महिलाएँ चूड़ियों की शौकीन होती हैं, उनके गीत गाये गये हैं जैसे ननद-भाभी के वार्तालाप के गीत .....

केनिये से आवेला हर चुनिहरवा
ननदिया मोरी रे।
केनिये से अइले रंगरेज
ननदिया मोरी रे।
पूरूब से आवेला हर चुनिहरवा

ननदिया मोरी रे।
पच्छिम से अइले रंगरेज
ननदिया मोरी रे।

भोजपुरी भाषा में बहुत सारे प्रेमगीत, सहाना, गुड़हथी, इमलीघोटावन, परीक्षण, चूमावन, सिन्दूरदान, कोहवर, हल्दी, मटकोड़, जवना, पीड़िया और ना कितने गीत हैं। मंगल गीत शुभ मुर्हत में गाये जाते हैं .....

"कईसन बा मंगल आज के दिनवा
धरती गगनवा के होता मिलना"

भोजपुरी भाषा के मधुर गीत जन-जन को मोह लेता है। कविवर जगन्नाथ भोजपुरी ग़ज़ल की विकास-यात्रा में आधुनिक भोजपुरी ग़ज़ल के पहिल डेग १६६१ ई. ले दोसर डेग १६७६ से आज ले मनले वानी। नतीजा ई भइल कि गजल लिखनहार के बात आ गइल आ शोहरत का लोभ में जेही सेही जोर आजमाइश करे लागल। जगन्नाथ जी भोजपुरी के हल्का में एगो इतिहास रचले वाणी।

रामेश्वर प्र. सिन्हा भी कई किताबें भोजपुरी में लिखलन उँनकरा रेत की परछाही १६६५ में प्रकाशित भइल और चर्चित भी भइल।

सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और राजनीतिक मूल्यन-अवमूल्यन के अंतर्विरोध तिमाही 'पाती' समकालीन भोजपुरी ग़ज़ल छापने वाली पत्रिका है जिसमें इस भाषा के विकास को अच्छा अवसर मिला है। डा. ब्रजभूषण मिश्र को भोजपुरी ग़ज़ल में महारथ हासिल है। उनकी १६६२ में भोजपुरी ग़ज़ल संग्रह "अचके कहाँ गइल" छपी है जो पाठक को अपनी ओर खींचती है। बहुप्रतिभा के धनी युवा-कवि मनोज कुमार सिंह की ग़ज़ल में जिन्दगी का दर्शन झलकता है। उसी तरह 'मिथिलेश गहमरी' के ग़ज़ल में भी निष्ठुर समाज की विसंगति, विद्रूपता देखने को मिलती है।

बहु-आयामी प्रतिभा के धनी भगवान सिंह 'भास्कर' जी की ग़ज़ल में मन की व्यथा-कथा अनाचार-अत्याचार के चित्र देखने को मिलते हैं। वे जागरूक-संवेदनशील कवि, उपन्यासकार और निबंधकार हैं।

लोकधुन के संगीत और छंद में दिलचस्पी रखने वाले गहवर गोवर्द्धन जी भी समाज में दबे कुचले की दयनीय स्थिति को अपने साहित्य में उजागर किये हैं। आँसू जी भी भोजपुरी के वैसे कवि हैं, जिनकी रचना में जनपीर देखी जा सकती है।

"उहें जीवन-सुख के भोगी, जे विपदा से रगरी-झगरी"

१६६२ में जौहर शफियावादी की गजल छपी, जिसमें आज के समय का चित्रण मिलता है जिन्दगी की कथा-व्यथा के साथ .....

"कबो झील, तितली, कमल बन के आइल
दृश्य जिन्दगी के गजल बन के आइल "

इस तरह से भोजपुरी भाषा में सभी विधाओं में समकालीन समस्याओं पर साहित्य सृजन हो रहा है। अतीत जिसका अंधकारमय था उसका वर्तमान आशाजनक है और भविष्य में असीम संभावनाएँ है। भोजपुरी का प्रचार-प्रसार फिल्मों के द्वारा भी काफी हो चुका है। आज भोजपुरी भाषा के बहुत साहित्यकार हैं बिहार में और कुछ उत्तर प्रदेश में भी हैं। भोजपुरी साहित्य का भविष्य उज्जवलमय है।[६]

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने लोकभाषा के बारे में कहा था... लोकभाषा बोली के रूप में अगर नहीं होती तो कोमल, मधुर, सरल और भावव्यंजक नहीं होती क्योंकि लोकभाषा की जड़ धरती से होती है। सांकृत्यायन जी का साहित्य-सृजन का क्षेत्र बिहार भी लम्बे समय तक रहा है।

भारत में स्कूलों, विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी भोजपुरी भाषा की पढ़ाई हो रही है। जिससे इस भाषा को खूब पनपने का अवसर मिला है। भोजपुरी को विदेशों के स्कूल, कॉलेजों के पाठ्यक्रमों में भी लागू करवाना चाहिए प्रचार-प्रसार करके ताकि इस भाषा को

विकास का और सुनहला अवसर मिलें।

संदर्भ-सूची

१. विश्वभाषा हिन्दी, संपादक राजकेसरवानी, राष्ट्रीय हिन्दी सेवी महासंघ इंदौर, संस्करण-२००६, पृ. ८६,६०

२. नया ज्ञानोदय, मासिक पत्रिका, सितम्बर २००३, अंक-७ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृष्ठ- ७,८

३. यू.एस.एम. पत्रिका, मई २००६, अंक-१०, गाजियाबाद, पृष्ठ-७

४. वागर्थ, मासिक पत्रिका, अंक-६६, जुलाई २००३, पृष्ठ-४४

५. नवका अँजोर, त्रैमासिक पत्रिका, दिसम्बर-२००६, भागलपुर, घोघा, भोजपुरी परिषद एवं वाणी, पृष्ठ-१५,१६,१७

६. मंगलगीत, विवाह गीत, संपादक भगवान सिंह 'भास्कर', साहित्य भारती सिवान, बिहार, पृष्ठ-१६,६०

लोक संस्कृति के आइने में अरूणाचल प्रदेश का लोक साहित्य

❐ डॉ. हरि निवास पाण्डेय

लोकसंस्कृति और लोक साहित्य की सत्ता सदैव पृथक रही है। शिष्ट साहित्य व शिष्ट संस्कृति का लोक संस्कृति से पार्थक्य प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। फलस्वरूप साहित्य में शिष्ट साहित्य और लोक संस्कृति की दो अलग-अलग धाराएं आरम्भिक काल से ही प्रवहमान रही है। शिष्ट साहित्य के अन्तर्गत अभिजात वर्ग का वह साहित्य आता है, जो बौद्धिक दृष्टि से काफी आगे निकल चुका था तथा जिसने अपनी प्रतिभा एवं कुशाग्र बुद्धि के द्वारा समाज का मार्ग निर्देशन किया। उस वर्ग की संस्कृति का प्रेरणास्त्रोत वेद व शास्त्र थे। लोक साहित्य अर्थात् साधारण जनता का साहित्य और जनता की संस्कृति का जिसमें परिचय मिलता है उसका उत्स लोक था, जिसकी प्रेरणा भूमि सामान्य जनता थी जो बौद्धिक विकास की दृष्टि से निम्न धरातल पर अवस्थित थी। लोक साहित्य में सामान्य जन का समग्र जीवन प्रतिबिंबित रहता है। यदि युग विशेष के सामान्य जन का साक्षात्कार करना हो तो इसका एक मात्र साधन लोक साहित्य का अन्वेषण ही है। लोक साहित्य जनता के हृदय का उद्गार होता है। सामान्य प्राणी जो कुछ सोचता व अनुभव करता है उसी की अभिव्यक्ति उसके साहित्य में होती है। ग्रामीण स्त्री-पुरूष बड़े ही सीधे-सादे, भोले-भाले होते हैं। ये अपने उत्सवों के अवसर पर तथा विभिन्न ऋतुओं के लोक-गीतों के माध्यम से समय-समय पर अपना मनोरंजन करते हैं। यहाँ तक कि कहानियाँ सुनाना और सुनना उनके दैनिक जीवन का एक अनिवार्य अंग रहा है। कभी-कभी कम शब्दों में बहुत कुछ कह देने के लिए यथावसर ये लोग लोकोक्तियां व मुहावरे का प्रयोग करने में भी पीछे नहीं रहते। जिसे सुनकर पढ़े लिखे लोग भी स्तब्ध रह जायें।

प्रायः लोकगीतों में श्रृंगार करूणा और वीररस की अधिकता देखने को मिलती है। ये लोकगीत न तो व्यक्ति द्वारा रचित होते हैं और न हीं सामान्य जन मानस की एकदम अज्ञान रचना ही हैं। इनका उद्गम किस प्रकार होता है इस सन्दर्भ में देवेन्द्र सत्यार्थी का अभिमत बड़ा ही उत्तम लगता है।

"कहाँ से आते हैं इतने गीत ? स्मरण-विस्मरण की आँख मिचौनी से कुछ अट्टहास से कुछ उदास हृदय से। कहाँ से आते हैं इतने गीत ? जीवन के खेत में उगते हैं ये गीत। कल्पना भी अपना काम करती है, रसवृत्ति और भावना का हिलोरा भी - पर ये सब हैं खाद। जीवन के सुख जीवन के दुःख ये हैं लोकगीत के बीज।" लोकगीतों के इतिहास का सम्बन्ध मानव विकास से है जिसमें जन साधारण की आशाएं-आकांक्षाएं, सुख-दुख विजय पराजय सब कुछ एकत्रित रहता है। इनकी रचना खेत-खलिहान और गांव की अमराइयों में होती है। इसका रचनाकार अज्ञात होता है। इसीलिए सामान्य लोक समूह आज इसे अपना ही मानता है, जिसका प्रत्येक शब्द स्वर लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोक का अपना है। इसमें उनके दिल की धड़कन होती है। लोकगीतों में बौद्धिकता की अपेक्षा भावना का प्राबल्य होता है। दुनियादारी और छल-प्रपंच से दूर भोले-भाले, सीधे-सादे नादान जीवन जीने वाली जनता ईर्ष्या-द्वेष से आहत होने पर भी सरल तथा स्वच्छ और नदी के निर्मल जल के समान अपना जीवन जीती है।

❐ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, रंगफ्राह राजकीय महाविद्यालय, चांगलांग, अरूणाचल प्रदेश (अरूणाचल प्रदेश)

भारत के उत्तरपूर्वी छोर पर पर्वतों-घाटियों की हरी-भरी भूमि के उस अंचल का नाम अरूणाचल है जिस पर सर्वप्रथम भारत में प्रातः कालीन सूर्य की स्निग्ध, कोमल और सुरम्य किरणें पड़ती हैं। बहुरंगी संस्कृति तथा समृद्ध परम्पराओं एवं प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न यहाँ का लोक साहित्य अपने अन्दर काफी वैविध्य लिए हुए है। यहाँ के लोकगीत, लोककथाएं, लोकनृत्य और लोकोक्तियाँ या कहावतों की कोई शानी नहीं है। अरूणाचल के लोकनृत्यों और लोकगीतों को सामूहिक रूप में स्त्री और पुरूष साथ मिलकर गाते हुए नृत्य करते हैं। नृत्य इन्हें बहुत पसन्द हैं। ये लोग हर नये कार्य का प्रारंभ नृत्य और गाने के बाद ही करते हैं। फसल बोते समय, काटते समय घर बनाते समय सामूहिक रूप से अपने पारंपरिक गीत गाते हैं। यहाँ के निवासी बड़े ही भावुक होते हैं। इनकी भावुकता को शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता। यहाँ पर्वत और उसकी घाटियों में विभिन्न जनजातियाँ निवास करती हैं। प्रत्येक जनजाति की अपनी-अपनी बोली होती है। उसी अनुसार गीत नृत्य और लोककथाएं भी अलग-अलग हैं। इस प्रदेश में कुल ११० (एक सौ दस) जनजातियाँ रहती हैं जिसमें २४ (चौबीस) जनजातियाँ मोंपा, शेरदुक्पने, एका, बुगन, मिजी, सुलंग, तागिन, हिलमिरी, खंबा, निशी, बैगनी, आपातानी, आदी, मिशमी, खोमती, सिंहपो, फकियल, त्युत्सा, तांग्सा, वांच, नोक्टे, मिरी, देवरी और लीसू ही मुख्य मानी जाती हैं। शेष को इन्हीं की शाखा-प्रसाखा के रूप में स्वीकार किया जाता है।

अरूणाचल का लोक-साहित्य वन्य जीवन से सम्बन्धित है। सूर्य-चन्द्रमा धरती-आकाश की उत्पत्ति से लेकर विभिन्न जीव-जन्तुओं की उत्पत्ति की कथा वाचिक (मौखिक) परंपरा में मिलती है। विस्तृत अध्ययन के लिए यहाँ के लोक साहित्य को मुख्यतः ४ भागों में विभक्त किया जा सकता है - १. लोकगीत २. लोकनृत्य ३. लोककथा एवं मिथक ४. लोकोक्तियाँ और कहावतें।

१. **लोकगीत** - ग्रामीण जनता द्वारा रसोद्रेक में गाए जाने वाले गीतों को लोकगीत के नाम से जाना जाता है। हर जनजाति का लोकगीत अलग-अलग होता है। इन गीतों में प्राचीन घटनाएं और संदेश भी छिपे रहते हैं। ये लोकगीत सदियों से यहाँ के निवासियों का मनोरंजन और दिशा-निर्देश करते आ रहे हैं। वन्य-जीवन से सम्बन्धित गीतों में प्रकृति का घूपछांही सौष्ठव दृष्टिगोचर होता है। अरूणाचली लोकगीतों में मुख्यतः उपासना-गीत, संस्कार-गीत, प्रणय-गीत, मनोरंजन-गीत, लोरी-गीत, श्रम-गीत और शोक-गीत की प्रधानता रहती है। अरूणाचल के निवासियों के जीवन में धर्म को बड़ा महत्व प्राप्त है। यहाँ की जनजाति दोन्यी-पोलो की अवधारणा में आस्था रखती है। दोन्यी-पोलो सूर्य और चन्द्रमा का प्रतीक है। इनके उपासना गीतों मनुष्य के दैन्य रूप और इष्टदेव की सर्वोच्चता का वर्णन है। सोलुंग, मोपिन, मौल, लोसर जैसे पर्वों पर गाये जाने वाले बलि गीतों का उद्देश्य सुख शान्ति व समृद्धि होती है। यहाँ के लोगों का ऐसा विश्वास है कि उपासना गीत गाने से इष्टदेव प्रसन्न होते हैं। पूजा के अवसरों पर ये बलि देते हैं और गीत गाते हैं। वस्तुतः अरूणाचल के लोकगीतों में वहाँ की संस्कृति और परंपरा का बड़ा ही अनूठा संगम है। इनके गीतों में प्राकृतिक जीवन का राग-रंग भावनाओं का उत्कर्ष व अलौकिक शक्तियों के प्रति अटूट आस्था एवं श्रद्धा देखने को मिलती है।

२. **लोकनृत्य** - लोकनृत्य वस्तुतः प्राकृतिक नृत्य है। लोकजीवन में जहाँ भी भावुकता का क्षण आता है उसी के अनुकूल नृत्य का रूप देखने को

मिलता है। इन नृत्यों में कलात्मकता का सर्वथा अभाव रहता है ऐसा नहीं है। मेरी दृष्टि में इन आदिम और जंगली जातियों का नृत्य बड़ा ही सशक्त होता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसे निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है -

(क) सांस्कारिक नृत्य -

इस नृत्य के अंतर्गत सामाजिक सुरक्षा सुख शान्ति और उत्तम स्वास्थ्य की भावना छिपी रहती है। विवाह के अवसर पर भी यह नृत्य वहाँ के निवासी करते हैं। फसल की सुरक्षा हेतु ये लोग खेती प्रारंभ करने से पहले भूमि की पूजा तथा नृत्य करते हैं। पालतू जानवरों के उत्तम स्वास्थ्य और निरोग रहने के लिए भी इस समाज में नृत्य की परंपरा मिलती है। किसी भी जनजाति के प्रधान (गाँव बूढ़ा) की मृत्यु होने पर सांस्कारिक नृत्य यहाँ के निवासी करते हैं। यहाँ आज भी युद्ध नृत्य की परंपरा देखने को मिलती है। जो पुरानी याद को ताजा करती है। जब कबीलों में प्रायः युद्ध होता था उस समय शत्रुओं को मारकर विजयोल्लास के रूप में ये लोग नृत्य करते थे। वह आज भी विद्यमान है। मृतक के कपाल को कुछ विशेष रासायनिक पदार्थ मिलाकर अपने घरों में विजय के प्रतीक रूप में रखते हैं।

(ख) त्यौहार नृत्य -

अरूणाचल प्रदेश में सैकड़ों त्यौहार मनाये जाते हैं। इस अवसर पर यहाँ की जनता अपने उल्लास को नृत्य के रूप में प्रकट करती है। यह परंपरा काफी प्राचीन है। चावल द्वारा बनाई गई घरेलू शराब जिसे स्थानीय बोली में कही 'लाव-पानी' कही 'अपोंग' कहा जाता है। उसे पीकर नृत्य करते हैं उस दौरान अपने पारंपरिक वस्त्रों और आभूषणों से अपने को सुसज्जित रखते हैं।

(ग) मनोरंजन नृत्य -

इस नृत्य का उद्देश्य सिर्फ मनोरंजन करना होता है। इसका कोई समय निश्चित नहीं होता। इसे कभी भी और कहीं भी प्रस्तुत किया जा सकता है। अपने अतिथि के सत्कार में सर्वप्रथम स्थानीय शराब पिलाते हैं और नृत्य भी प्रस्तुत करते हैं। इस नृत्य में सभी आयु वर्ग के लोग साथ-साथ नृत्य करते हैं।

(घ) मुखौटा नृत्य -

यह नृत्य चेहरे पर मुखौटा लगाकर पौराणिक आख्यानों के धार्मिक अथवा नैतिक संदेश को प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने के लिए किया जाता है। ये लोग बहुधा जानवर पशु-पक्षी राक्षस मानव और देवी शक्तियों के मुखोटे धारण करते हैं। यह नृत्य काफी प्रभावशाली होता है। बौद्ध जनजातियों में मुखौटा नृत्य की परंपरा बड़ी ही सुन्दर है। मुखौटा नृत्य के समय किसी पौराणिक कथा का वाचन पहले करते हैं, बाद में नृत्य और अभिनय के द्वारा उसे व्यक्त किया जाता है।

३. लोककथा एवं मिथक -

अरूणाचल के जनजातीय समाज में असंख्य लोककथाएं एवं मिथक सुनने को मिलते हैं। ये कथाएं बड़ी ही रोचक होती हैं, जिनमें नैतिक संदेश भी छिपा रहता है। वन्य जीवन और वन्य प्राणियों से सम्बन्धित लोककथा भूतप्रेत, अलौकिक पत्थर, वृक्ष, नदी, वर्षा, अलौकिक शक्ति सम्पन्न मानव और जंगली जानवर इत्यादि से सम्बन्धित कथाएं रोचक के साथ-साथ ज्ञानवर्धक भी होती हैं। प्रस्तुत है 'तागसा' जनजाति में 'पशुओं की

बलि' से सम्बन्धित लोककथा - ''प्राचीनकाल में मनुष्य और पशु अलग-अलग रहते थे लेकिन उनके रहन-सहन में कोई खास अन्तर नहीं था। बीमार होने पर जानवर और मनुष्य एक ही दवा का उपयोग करते थे। उस समय की औषधि जादू की तरह अपना असर दिखाती थी। इससे मृतक प्राणी भी जीवित हो जाते थे। इस प्रकार किसी भी जानवर या मनुष्य की मृत्यु नहीं होती थी। धीरे-धीरे धरती पर जानवरों और मनुष्यों की संख्या बढ़ने लगी। अधिक मनुष्यों के लिए अधिक अन्न चाहिए इसलिए खेती की जमीन भी बढ़ती जा रही थी और उसी अनुपात में चारावाली जमीन घटती जा रही थी। जानवरों के लिए चारे का अभाव होने लगा। अतः जानवर मानव की फसलों को खाने लगे। मनुष्यों ने जानवरों को रोका लेकिन जानवरों ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। निराश होकर वैद्यराज के पास अपनी इस समस्या को लेकर पहुँचे। लोग वैद्यराज जानवरों पर बहुत नाराज हुए और उन्होंने फैसला किया कि अब से जानवरों का न तो इलाज करेंगे और न ही कोई दवा देंगे। जानवर, दया और इलाज के अभाव में मरने लगे और मनुष्यों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने लगी। सभी जानवर क्रोधित होकर बदला लेने के लिए तैयार हो गये। सभी जानवरों ने फैसला किया कि मानव इलाज में काम आने वाली औषधियों को नष्ट कर दिया जाए। जानवरों ने सभी प्रकार की वनौषधियों व जड़ी बूटियों को रौंद दिया। दवा के अभाव में मनुष्यों की चिकित्सा करना सम्भव नहीं था। अतः मनुष्य मरने लगे वैद्यराज उनकी चिकित्सा करने में असमर्थ थे। सभी जीवित मानव उस पहाड़ी को छोड़कर दूसरी पहाड़ी पर रहने के लिए चले गये। तब वैद्यराज को अपना जीवन निरर्थक लगने लगा, निराशा के कारण उन्होंने आत्महत्या कर ली। उनकी मृत्यु के बाद मनुष्यों ने एक मत से यह निर्णय लिया कि वनौषधियों को खाकर जानवर अमर हो गये हैं इसलिए यदि हम लोग जानवरों को मारकर उनका मांस बीमार मनुष्यों को खिलाएं तो वे स्वस्थ हो सकते है। उसके बाद जब भी कोई व्यक्ति बीमार पड़ता तो जानवरों को मारकर उसका मांस उसे दिया जाता। उसी समय से पशुबलि की प्रथा आरम्भ हुई।

४. **लोकोक्तियाँ और कहावतें :-**

अरूणाचल प्रदेश के गावों में बसे जनजातीय समाज के लोगों के मुख से अनायास ही लोकोक्तियाँ या कहावतें बातचीत के क्रम में निकल पड़ती हैं। इनके मूल में कोई गम्भीर अनुभव कोई घटना अथवा प्रचलित कोई कथा रहती है। कम शब्दों में अधिक भावों को अपने अंदर रखने वाली ये कहावतें लोगों को दिशा निर्देश भी करती हैं। उन्हें बुरे कर्मों से रोकती हैं तथा सत्कर्म की प्रेरणा देती हैं। इनमें पूर्वजों के जीवन की ज्ञानराशि निहित रहती है। फुर्सत के समय जब-जब कुछ बड़े-बूढ़े इकट्ठा होते हैं तो बातचीत के दौरान लोकोक्तियों द्वारा अपनी बात को पुष्ट करते हैं। उदाहरण स्वरूप 'ईदु मिशमी' जनजाति में प्रचलित कहावतों का नमूना इस प्रकार है :-

(क) एक्को बे सम्बु आगु यागो लापरामी।
हिन्दी अनुवाद - पत्नी और बच्चों से गुप्त बात बताना अच्छा नहीं है।

(ख) इकुरू गा इत्तो अतरा गादे अहरू भी।

हिन्दी अनुवाद - कुत्ते के भौंकने अथवा मुर्गी के बांग देने पर ध्यान नहीं देना चाहिए अर्थात् अफवाहों पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

(ग) इक्क में थु अंदोगा गा उगी।
हिन्दी अनुवाद - गरीब लोग यदि कुत्ते की तरह झगड़ा करें तो उसका कोई महत्व नहीं होता है।

(घ) इक्की पी इक्कोबे बिगेया लाही बाबा येयी।
हिन्दी अनुवाद - पाखंडी व्यक्ति एक बार ही किसी को मूर्ख बना सकता है।

(ड़) ताजी आ में कापा बाबा येयी ताज, कापा आमें ताजी बाबाव येयी।
हिन्दी अनुवाद - हमेशा चालाक के पुत्र ही चालाक नहीं होते, कभी-कभी मूर्ख व्यक्ति के पुत्र भी चालाक निकल जाते हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अरूणाचल प्रदेश का लोक साहित्य अपने अंदर विविधता को समेटे हुए बड़े [illegible] रूप में मिलता है, जो अगामी पीढ़ी को दिशा निर्देश भी करता है। यहाँ के लोग स्वयं को राष्ट्र की मुख्य धारा में जोड़े रखे हैं। फलतः हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार अन्य सभी राज्यों की अपेक्षा पूर्वोत्तर भारत में ज्यादा है।

बीच बहस में

अंतर्जातीय, अंतर्धर्मीय व अंतर्क्षेत्रीय विवाहों की सामाजिक समरसता में कारगर भूमिका

❒ डॉ. प्रदीप शर्मा "स्नेही"

भगवान (या प्रकृति) ने जब पहले पहल पृथ्वी पर मानव जीवन की रचना की होगी तो निश्चय ही उन्होंने पहला कार्य मानव हृदय में प्रेम का बीजारोपण का किया होगा। कलान्तर में सामाजिक ढाँचें के क्रमबद्ध विकास में प्रेम के तरू ने कब घृणा के वट वृक्ष के रूप में पोषित एवम् पल्लवित होकर दानवीय आकार ग्रहण कर लिया पता ही नहीं चला। स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर आज तक निरन्तर बढ़ रही साक्षरता के बावजूद घृणा के इस वटवृक्ष की जड़ों में मट्ठा डालने की अपेक्षा इसे जातिवाद व विद्वेष के विष से सींचा जाता रहा। इसका दुष्परिणाम राष्ट्रीय विकास की गति में कमी और दिनोंदिन खंडित होती धार्मिक सहिष्णुता व बढ़ती जातीय वैमनस्यता के रूप में सामने आया।

कभी धार्मिक व जातिगत सौहार्द्रता का शिरोमणि रहे इस देश को पुनः उसी ऊँचाई पर ले जाने के लिए अंतर्जातीय, अंतर्धर्मीय व अंतर्क्षेत्रीय (या अंतर्प्रान्तीय) विवाह निःसन्देह उल्लेखनीय भूमिका निभा सकते हैं। दहेज व जातीयता के कोढ़ को समाप्त करने का यह सबसे कारगर उपाय है।

वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण और उदारीकरण के इस युग में भी देश के ग्रामीण क्षेत्रों विशेषकर उत्तरीभारत के हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान व पंजाब में तो अंतर्जातीय विवाहों को आज भी अपराध की संज्ञा दी जाती है। प्रेम विवाह को भी इसी श्रेणी में रखा जाता है। भले ही प्रेमी-प्रेमिका एक ही जाति से सम्बंध रखते हों। साहसी प्रेमी युगलों को इन प्रदेशों में अनेक अवसरों पर नृशंसतापूर्वक मौत के घाट उतार देने के सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं। हमारे राजनीतिक रहनुमाओं को इन घटनाओं से कोई लेना- देना नहीं। वे कोई प्रतिक्रिया न देकर अपने वोट बैंक को सुरक्षित रखना अधिक श्रेयस्कर समझते हैं।

'विवाह' नामक संस्था बहुत प्राचीन है। वेदों में भी विवाह का उल्लेख मिलता है। विवाह एक पवित्र बंधन है। दो आत्माओं का मिलन है। अलग-अलग जाति-धर्मों में इसे अलग-अलग नाम से जाना जाता है। प्राच्य ग्रन्थों में कई प्रकार (लगभग ८) के विवाहों का सन्दर्भ दिया गया है। अंतर्जातीय, अंतर्धमीय व अंतर्क्षेत्रीय विवाह हमारे देश में प्राचीन काल से होते रहे हैं। न ही प्रेम-विवाह की परम्परा ही नई है। लेकिन समय के साथ-साथ इन परम्पराओं पर ग्रहण लग गया। भारतीय समाज जातीयता के दायरे में सिमटता गया। जातिगत असहिष्णुता पैर पसारती गई। जातिगत बंधनों को तोड़कर विवाह करने वाले युवक-युवतियाँ कौन-सा अनुशासन तोड़ते हैं, समझ से परे है। धर्म व समाज के स्यंम्भू ठेकेदार यथासंभव इन विवाहों का विरोध करते हैं। प्रतिवर्ष हमारे देश में अनेक युवतियाँ दहेज की भेंट चढ़ा दी जाती हैं। नारी अस्मिता के साथ खिलवाड़ करने के अनेक मामले प्रकाश में आते हैं लेकिन धर्म के ये अलंबरदार उस समय जाने कहाँ मुंह छिपा लेते है। आज देश में दहेज के नाम पर होने वाली हत्याओं में से ६६ प्रतिशत शादियाँ परिवारजन अपनी ही जाति बिरादरी में पूरी तरह तहकीकात के बाद करते हैं

❒ वरिष्ठ व्याख्याता एवं विभागाध्यक्ष भौतिकी, श्री आत्माराम जैन कालेज, अम्बाला शहर (हरियाणा)

जबकि अंतर्जातीय विवाहों में उपरोक्त घटनाओं की संख्या नगण्य है।

पंजाब, हरियाणा व पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में अंतर्जातीय प्रेम विवाहों को तोड़ने व प्रेमी युगल या विवाहित दम्पति व उनके परिवारजनों को सजा देने के पंचायती फरमान जारी करने के अनेक मामले प्रकाश में आते रहे हैं। परिवारजनों को जाति बिरादरी से बाहर करने और कभी-कभार उनके गाँवों में प्रवेश तक पर पाबंदी लगा देने की घटनाएं भी होती रही हैं। अगर अन्तर्जातीय विवाह करने वाले दम्पति में से एक तथाकथित 'ऊँची' और दूसरी तथाकथित 'नीची' जाति से सम्बंध रखता तो स्थिति कठिनतर हो जाती है। पंचायतें ऐसी स्थिति में विवाह को रद्द करने के साथ-साथ दम्पति को मारने तक का ग़ैरकानूनी 'फतवा' दे डालती हैं। कई अवसरों पर ऐसी स्थिति में नव विवाहित दम्पतियों के परिवार वालों ने ही मिलकर उनकी हत्यायें कर दी हैं। पंजाब, हरियाणा, व पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हुई ऐसी ही कुछ हत्याएं मध्ययुगीन बर्बरता की याद दिलाती हैं। अनेक घटनाएं तो प्रकाश में ही नहीं आतीं व सामूहिक सहमति से उन्हें दबा दिया जाता है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में रूढ़िवादिता और जातियता की गहरी पैठ है। बालिग युवक-युवतियों को स्वयं अपने जीवन साथी चुनने का अधिकार आज भी यहां नहीं है। आर्थिक विकास की बुलंदियों को छूने का दम भरने वाले ये प्रदेश अभी भी पिछड़े हैं। उल्लेखनीय है, केरल, महाराष्ट्र, गुजरात सहित अन्य दक्षिणी राज्यों में अन्तर्जातीय विवाहों पर बवाल नहीं मचता। हत्याएं तो होती ही नहीं। उल्लेखनीय है पश्चिम बंगाल में देश में सर्वाधिक अंतर्जातीय विवाह होते हैं।

विशेषकर हरियाणा में शताब्दियों पूर्व उस समय की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखकर बनाए गए पंचायती नियमानुसार कतिपय गोत्रों में पारस्परिक विवाह वर्जित हैं। आज के प्रगतिशील युग में, लड़कियों की घटती संख्या को दृष्टिगत रखते हुए ये वर्जनायें कितनी प्रांसगिक हैं, इन पर गहन विचार किए जाने की आवश्यकता है।

हरियाणा, पंजाब व उत्तर प्रदेश के शहरी व अपेक्षाकृत शिक्षित क्षेत्रों में अवश्य स्थिति में थोड़ा परिवर्तन आया है। शिक्षित युवक-युवतियाँ अंतर्जातीय प्रेम विवाह कर रहे हैं। माता-पिता भी अपने शिक्षित बेटे-बेटियों के सही चयन को मान्यता दे रहे हैं। हरियाणा व पंजाब के विश्वविद्यालयों के सैकड़ों विद्यार्थी व शोधार्थी अंतर्जातीय, अंतधर्मीय व अंतर्प्रान्तीय विवाह कर चुके हैं व सफलतापूर्वक विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत रहते हुए सुखमय दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

इसी वर्ष, सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक महत्वपूर्ण व क्रांतिकारी फैसले में अंतर्जातीय विवाह करने वालों को एक सुरक्षा कवच प्रदान किया है। इस फैसले के अनुसार देश के किसी भी स्त्री-पुरूष को अंतर्जातीय या अन्तर्धर्मीय विवाह करने पर पुलिस व प्रशासन को उन्हें सुरक्षा देनी होगी। साथ ही पुलिस व प्रशासन को उन्हें प्रताड़ित करने, धमकी देने व हिंसात्मक कार्यवाही करने का कोई अधिकार नहीं है। न्यायमूर्ति अशोक भान व न्यायमूर्ति मार्कण्डेय काटजू की खंडपीठ ने अंतर्जातीय विवाह करने वाले दम्पतियों को प्रताड़ित करने व यातना देने वालों के विरूद्ध कड़ी कार्यवाही का निर्देश दिया है। माननीय न्यायालय ने जाति-प्रथा को राष्ट्र के लिए अभिशाप बताया।

सर्वोच्च न्यायालय का यह तर्कसंगत फैसला न केवल अंतर्जातीय व अंतर्धर्मीय विवाह करने वाले साहसी दंपतियों को राहत प्रदान करेगा, बल्कि जातीय संकीर्णता को पोषित व पल्लवित करने वाली संस्थाओं पर भी लगाम कसेगा। साथ ही इस फैसले से उन निरंकुश अधिकारियों (पुलिस व गैर-पुलिस) की आँखें खुल जानी

चाहिए जो अनेक अवसरों पर राजनीतिक व आर्थिक दबावों के चलते अंतर्जातीय विवाह करने वाले दम्पतियों के साथ अपराधी का सा व्यवहार करते रहे हैं। २१वीं सदी में भी आदियुगीन बर्बर परम्पराओं का निर्वाह करने के नाम पर मारने तक के फतवे देने वाली पंचायतों को अब नए सिरे से अपनी भूमिका पर पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है।

यद्यपि हमारे देश की जनता को सर्वोच्च न्यायालय ने एक श्रेष्ठ विचार व साहसिक फैसले के रूप में एक बहुमूल्य उपहार दिया है। यह सार्थक पहल तभी अपना असर दिखाएगी जब सरकार, राजनैतिक पार्टियाँ और आम जनता धार्मिक व जातिगत पूर्वाग्रहों को धता बताकर पारस्परिक सद्भावना को सुदृढ़ करने की दिशा में काम करेंगे। निःसन्देह इसमे अंतर्जातीय व अंतर्धमीय विवाह उल्लेखनीय भूमिका निभा सकते हैं। ये विवाह दहेज रूपी दानव का सक्षमता से मुकाबला करने के साथ-साथ भावनात्मक सुरक्षाबोध भी कराते हैं। साथ ही बेमेल विवाहों की त्रासदी से भी मुक्ति दिलाते हैं ये विवाह।

हाल ही में केन्द्र सरकार ने सभी राज्य सरकारों से अंतर्जातीय विवाह करने वालों को ५०००० रूपये की प्रोत्साहन राशि देने का आग्रह किया है। अंतरजातीय विवाहों को बढ़ावा देने की दिशा में यह एक सही कदम है लेकिन जातिगत संकीर्णता की गहराई तक पैठी जड़ों को उखाड़ने के लिए प्रगतिशील लोगों को सामाजिक अभियान चलाने होंगे और राजनीतिक पार्टियों व सरकार को इसमें सहयोग देना होगा। तभी परिदृश्य बदल सकता है। आज की बदली हुई परिस्थितियों और दिनोदिन संकुचित होती दुनिया को दृष्टिगत रखते हुए, अंतरजातीय व अंतरधर्मीय विवाहों को अधिकाधिक स्वीकृति देना समाज व राष्ट्रहित में होगा। प्रेम और विवाह प्रत्येक व्यक्ति का नैसर्गिक अधिकार है। इस अधिकार के अपहरण का अधिकार आज के सभ्य व विकासोन्मुख समाज में किसी को भी नहीं - यहाँ तक कि माँ-बाप को भी नहीं। परिवार व खानदान की झूठी शान के नाम पर अंतर्जातीय विवाहों को निरूत्साहित नहीं करना चाहिए। पारम्परिक शादियों में भी माता-पिता को अपने बच्चों पर अपनी इच्छा न थोपकर उनकी सहमति प्राप्त करनी चाहिए।

इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए कि अंतर्जातीय विवाह सामाजिक कुरीतियों से लड़ने की न केवल शक्ति प्रदान करते हैं। बल्कि राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने में भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। शिक्षित युवाओं ने विगत कुछ दशकों में अंतर्जातीय विवाहों के साहसिक फैसले लिए भी हैं। सर्वोच्च न्यायालय के फैसले व सरकार के प्रोत्साहन से अन्य युवाओं को बल मिलेगा ऐसी आशा की जा सकती है।

बच्चों में सृजन-शक्ति का विकास

❒ डॉ. निर्मल कौशिक

शिक्षा ज्ञानार्जन का माध्यम है। शिक्षा भले ही औपचारिक हो अथवा अनौपचारिक इसमें शिक्षा प्रदान करने वाले को इस बात पर ध्यान देना अनिवार्य है कि जिसे शिक्षा दी जा रही है वह इसके योग्य भी है या नहीं। मगर आज शिक्षा का व्यवसायीकरण हो जाने से शिक्षा के इन मूल्यों का अवमूल्यन हो गया है। आज शिक्षा धन से अर्जित की जाती है और बाद में शिक्षा से धन अर्जित किया जाता है।

शिक्षाविदों ने शिक्षा का उद्देश्य सर्वांगीण विकास बताया है। सर्वांगीण विकास तभी संभव है जब बच्चों को सुचारू रूपेण शिक्षित किया जाए। उनके व्यक्तित्व की पहचान परख करके उनकी अभिरूचि के अनुकूल उन्हें वातावरण प्रदान किया जाए। बच्चों की प्रतिभा की परख की जाए और उन्हें विकसित करने के लिए अवसर प्रदान किए जाएं। हम देखते हैं कि बच्चे कागज पर तिनके पत्थर आदि से कई कुछ निर्मित कर बड़ों को बड़े उत्साह से दिखाते हैं कि हमे शाबाशी मिलेगी लेकिन कई बार उनकी भावनाओं को न समझने वाले माता पिता और अध्यापक उन्हें केवल डांट फटकार देकर उनकी सृजन क्षमता का गला घोंट देते हैं। ऐसे बालकों को उत्साहित करना चाहिए और उनका मार्गदर्शन करना चाहिए क्योंकि होनहार विरवान के होत चीकने पात-

बच्चो में सृजन क्षमता होती है मगर उचित दिशा निर्देश के अभाव में उनका विकास नहीं हो पाता है। हम देखते हैं कि छोटे-छोटे बच्चे भी विद्यालय के सांस्कृतिक समारोह में कितनी कुशलता से अपने अध्यापकों के निर्देशन में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करते हैं। कविता गायन, निबन्ध लेखन आदि प्रतिस्पर्धाओं में भी अपनी मौलिकता की स्थापना करते हैं।

संस्कृत में एक उक्ति है 'मन्दोडपि निष्प्रयोजनम् न प्रवर्तते' अर्थात् मन्द बुद्धि भी बिना (प्रयोजन) उद्देश्य के किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है। अतः फिर सुबुद्धि जीव किसी न किसी प्रयोजन से ही किसी कार्य से सलंग्न होता है। किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए विद्वानों ने तीन तत्त्वों को प्रमुख माना है प्रतिभा, अभ्यास और निपुणता। प्रतिभा प्रत्येक बच्चे में न्यूनाधिक अवश्य होता है। कोई भी बच्चा अपनी प्रतिभा के अनुसार ही कार्य करता है। यही कारण है कि एक ही परिवार के सभी विद्यार्थी एक समान अंक प्राप्त नहीं करते। इससे प्रमाणित होता है कि प्रतिभा का स्तर भिन्न भले ही हो तो भी सभी बच्चों में प्रतिभा अवश्य होती है। इसी प्रतिभा के विद्यमान रहने पर बच्चे अपनी अन्तर्निहित रचनात्मकता को साकार अभिव्यक्ति प्रदान करने में सक्षम होते हैं। जैसे एक बीज में वृक्ष बनने की क्षमता होती है। ठीक वैसे ही बच्चे के अन्दर रचनात्मक प्रवृत्ति के माध्यम से विकसित होने की क्षमता होती है। मगर ध्यान रहे बीज से वृक्ष बनने की क्षमता तभी सार्थक होती है जब उसे अनुकूल परिवेश और जलवायु उपलब्ध होता है। ठीक इसी प्रकार बच्चों की रचनात्मक रूचियों को भी विकसित करने के लिए घर में, विद्यालय में और समाज में अनुकूल परिवेश का होना अति अनिवार्य है। तभी बच्चों का सर्वांगीण विकास सम्भव है।

प्रायः कहा जाता है कि बच्चे गीली मिट्टी की

❒ विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सरकारी बृजेन्द्र कालेज, फरीदकोट (पंजाब)

तरह होते हैं उनके व्यक्तित्व को बचपन में किसी भी रूप में ढाला जा सकता है, लेकिन यह मिट्टी की क्षमता और कलाकार की कला पर निर्भर करता है। इसके साथ-साथ कुम्हार बर्तन के अन्दर एक हाथ से टूटने से बचाता है तो दूसरे हाथ से उसे आकार प्रदान करता है। ऐसा ही बच्चों की सृजनात्मक क्षमता को विकसित करते समय माता-पिता और अध्यापकों को ध्यान रखना चाहिए और बुरी आदतों से बचाते हुए उसे अच्छे संस्कार प्रदान करने चाहिए। यह बात सत्य है कि बच्चे का मन कोरी स्लेट की तरह होता है उस पर कुछ भी लिखा जा सकता है। मगर सकारात्मक और स्पष्ट लिखा जाने पर ही उसे पढ़ा जा सकेगा। अच्छे संस्कार परिवेश और अच्छी संगति ही उसकी सृजनात्मक क्षमता के विकास में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। अन्यथा सेबों की टोकरी में एक गन्दे सेब के रखने की तरह एक बुरी आदत भी उसकी इस सृजनात्मकता को तहस-नहस कर सकती है।

अभ्यास से एक ही क्रिया को बार बार करने से बच्चा उस क्रिया में पारंगत हो जाता है। इसीलिए बचपन में बच्चों को पढ़ाने के लिए बार बार दोहराने के बाद वर्णमाला और संख्या कंठस्थ क़राई जाती है जो बच्चा आजीवन नहीं भूलता। कहा भी गया है :

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात के सिल पर परत निसान।।

अंग्रेजी में प्रायः कहा जाता है :

Practice makes a man perfect.

अर्थात अभ्यास व्यक्ति को निपुण बनाता है। अतः निपुणता ग्रहण करने के लिए निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। यही कारण है कि गायक, नृत्यकार, नाटककार अथवा सभी काव्यकार लोग निरन्तर अभ्यास करते रहते हैं तभी वे अपनी कला में निपुण होते हैं।

रचनात्मकता में मौलिकता का बहुत बड़ा योगदान होता है। बच्चों में यह प्रवृत्ति सामान्य रूप से पाई जाती है। हम देखते हैं कि जब उसे पढ़ना-लिखना नहीं आता है बच्चा पैन या पैन्सिल से अपनी कापी पर कुछ भी उल्टा सीधा लिखकर अपने माता-पिता के सामने लाकर कहता है देखो मैंने क्या बनाया है। व्यस्त माता-पिता उसकी ओर कोई ध्यान न देकर उसे फटकार देते हैं। कापी पेन की बर्बादी पर उसे कोसने लगते हैं। उसके अन्दर की कला और कलाकार बाहर किस रूप में निकला है। अगर हम उसे शाबाशी देकर उसकी बनाई आकृति में सुधार करें तो वह आगे चलकर और अधिक रूचि लेकर अपनी मंजिल को पा सकेगा।

छोटे बच्चों को अक्सर हम मिट्टी से या रेत से खेलते देखते हैं। वे भी कल्पना का संसार बसाकर बड़े खुश होते हैं। एक साथी द्वारा मिट्टी का घर तोड़े जाने पर फूट-२ कर रोने लगता है। कभी सोचा है क्यों...? आपके लिए मात्र मिट्टी का घर, मगर उसके लिए एक भरा पूरा संसार था जो ध्वंस्त हो गया। मानो उसकी सृष्टि में प्रलय आ गई हो।

छोटी लड़कियां जब बचपन में गुड्डे-गुड़ियों का ब्याह रचाती हैं तो उनके लिये खिलौने सजीव पात्र ही होते हैं। यही उनका रचना संसार है। यही उनके अन्दर की अनुभूति को अभिव्यक्त करने का बेहतर माध्यम है। अगर बच्चे के अन्दर की भावनाएँ मुखरित हो जाएं तो ही उसका सर्वांगीण विकास संभव है। मगर ऐसा तभी हो सकता है अगर घर में, गली में, मोहल्ले मे, विद्यालय में, समाज में उसे अनुकूल परिवेश प्रदान किया जाएं। उसकी कलात्मक रूचियों को सही दिश निर्देश और प्रोत्साहन प्रदान किया जाए।

विद्यालयों में छोटे बच्चों के लिए आज कल खेल द्वारा शिक्षा (Playway Method) प्रणाली द्वारा बच्चों की अभिरूचियों का आकलन कर उनकी रचनात्मकता को प्रोत्साहित किया जाने लगा है। इसी प्रकार अनेक

विद्यालयों में ग्रीष्मकालीन अवकाश के दौरान कला शिविर आयोजित कर कलात्मक, रचनात्मक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा तथा पाठान्तर क्रियाओं के माध्यम से बच्चों में नीरसता और निठल्लापन आ जाता है। बच्चों के अन्दर खेलकूद की भावना, कलात्मकता, नृत्य, संगीत, चित्रकला जैसी गुणवत्ता की अभिव्यक्ति का कोई तो माध्यम होना चाहिए। लड़कियों में रसोई कला, साज-सज्जा, कढ़ाई-बुनाई आदि को सहज ही विकसित किया जा सकता है। आज २१वीं सदी के प्रगतिशील युग में कोई ऐसा कार्य क्षेत्र विभाजित नहीं है। पुरूषों को दूरदर्शन पर रसोई के बढ़िया पकवान तैयार करते और स्त्रियों को खेतों में हल चलाते देखा जा सकता है। यह सब रूचियों के विकसित करने की ही बात है आज बेरोजगारी क्यों है ? कारण यह है कि सभी बच्चे पढ़कर अफसर ही बनना चाहते हैं। दस्तकारी कोई नहीं करना चाहता। पैतृक कार्य कोई नहीं अपनाना चाहता। अपनी रूचियों का विकास न कर पाने के कारण कुंठा का शिकार हुए आज के बच्चे असन्तोष की भावना से ग्रस्त हो रहे हैं। बच्चों में सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने के लिए उनमें स्पर्धाएँ आयोजित की जानी चाहिए। बच्चों में दूसरे की रचना प्रक्रिया के प्रति स्पर्धा की भावना हो ईर्ष्या नहीं। प्रत्येक बच्चा अपनी रचना को श्रेष्ठ भले ही माने मगर उसमें दूसरे की अच्छी रचना की प्रसंशा करने का साहस भी होना चाहिए और असफलता को सहन करने की शक्ति भी। उसे यह बता दिया जाना चाहिए कि कई बार असफलता सफलता की सीढ़ी बन जाती है। सृजनात्मकता में परिश्रम का बहुत बड़ा योगदान है। मेहनत से किया गया काम मन को सुख और शान्ति प्रदान करता है। मौलिक रचना सदैव प्रोत्साहित करती है। कला का कोई अन्त नहीं होता। अतः कला का निरन्तर विकास ही कलाकार का उद्देश्य होना चाहिए। अपनी अनुभूति की सार्थक एवं रचनात्मक अभिव्यक्ति ही कलाकार की सच्ची साधना होती है। इन सब बातों का बच्चों को ज्ञान होना चाहिए।

अगर हम बच्चों की रचनात्मक रूचियों को प्रोत्साहित करें तो आज के नादान बच्चे कल के कलाकार हो सकते हैं और अपनी नैसर्गिक प्रतिभा का विकास कर अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सकते हैं। अपनी रूचि को निपुणता के शिखर पर पाकर वे भी अपने जीवन को सफल बना सकते हैं। हो सकता है उनकी रचनात्मकता उनके जीवन में व्यवसाय के रूप में उनके लिए सहायक सिद्ध हो। आइए हम सब अपने बच्चों के सर्वांगीण विकास व उनके जीवन के लिए उनकी छिपी गुणवत्ता व प्रतिभा को विकसित करने हेतु उनके अन्तर्निहित रचनात्मक संसार को प्रफुल्लित करने के लिए यथासम्भव योगदान दें।

शोधार्थी

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में स्वयंसेवी संगठन और उनकी भूमिका

(दलित स्वयंसेवी संगठनों के विशेष सन्दर्भ में)

❐ मुकेश भूषण
❐❐ सहदेव सिंह

विश्व बैंक की पहल पर सरकार के अलावा समाज की भलाई के काम में लगी संस्थाएं जो सामान्य जनता के लोगों से ही बनी होती हैं। स्वयंसेवी संस्थाएं कहलाती हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं का कार्य सरकार एवं जनता के बीच ताल मेल बैठाकर विकास करना होता है। अर्थात ये स्वयंसेवी संस्थाएं सरकारों से तालमेल बिठाकर उनकी योजनाओं को आम जनता तक पहुँचाती हैं। इसके साथ ही जनता की प्रतिक्रियाएं, आकांक्षाएं और अपेक्षाओं को सरकार के पास तक ले जाती हैं। वास्तव में देखा जाये तो ये स्वयंसेवी संस्थाएं सरकार एवं आम जनता के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी हैं क्योंकि इन संस्थाओं में समाज के ऐसे व्यक्ति जुड़े होते हैं। जो निःस्वार्थ सेवा भावी, त्यागी और निष्ठावान होने के साथ-साथ उनका अन्तिम लक्ष्य समाज अथवा देश की सेवावृत्त से जुड़ा होता है। डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव के शब्दों में कहे तो "इतिहास में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं मिलती है। बिनोवा भावे जी ने गाँधी जी के समय में भंगी मुक्ति से लेकर चर्खा और खादी संघों की स्थापना कर इन्हें निष्ठापूर्वक चलाया। लेकिन सेवा और राहत के इन कामों में लगे रहने के बावजूद इन समाज समाजसेवियों को यह एहसास तो होता ही था कि अपने समाज के दलितों, गरीबों की सेवा करके परिस्थितियों को बदला नहीं जा सकता है। तब इन्हीं स्वयंसेवी संस्थाओं से जुड़े कुछ लोगों ने समाज के विकास का जिम्मा उठाया था क्योंकि यह भारत के नवनिर्माण का दौर था और हमारे यहाँ विकास के नाम पर सरकारें भी तरह-तरह के उपक्रम करने में लगी थीं।"[1]

सरकार से इतर (गैर सरकारी) लोगों ने स्वयंसेवक के रूप में, कृषि, शिक्षा, साक्षरता आदि को लेकर महत्वपूर्ण संस्थाएं खड़ी कीं। और नेकनेयती एवं ईमानदारी से जुड़कर कार्य करते रहे और देखते-देखते अपने कार्यों एवं विकास के बल पर इनकी स्वतंत्र पहचान बननी शुरू हो गई। इसी दौर में ये और सरकारी समूह समाज को बदलने के लिए संघर्षरत जुझारू समूहों में तब्दील होते गये यही दौर था कि जब देश में बाढ़, सूखा, महामारी में ऐसे अनेक स्वयंसेवी संगठनों ने इनके विकास के साथ-साथ अपनी निजी जिन्दगी में भी सादगी, शुचिता और संयम के सिद्धान्तों का कड़ाई से पालन करते रहे।

गैर सरकारी स्वयंसेवी संस्थाओं में कार्य करने वाले लोग विभिन्न समाजों से भिन्न-भिन्न लोग आते हैं। जिसमें सामान्य शिक्षा स्तर के लोगों के समूह से लेकर उच्च शिक्षित एवं अपने क्षेत्र में दक्ष तथा (तकनीशियन, डाक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, विधिवेत्ता, आर्कीटेक्ट आदि।) सम्भ्रांत लोग इन संस्थाओं से जुड़े रहते हैं। ये संस्थायें केन्द्र तथा राज्य सरकारों से मान्यता प्राप्त (रजि०) होती हैं। साथ ही उनके

❐ *शोध छात्र, (इतिहास) बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)*
❐❐ *शोध छात्र, (इतिहास) बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)*

नियमों से प्रतिबंधित भी होती हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना महत्वपूर्ण है कि जब हम अराजकीय संस्थाओं की बात करते हैं तब हमारा आशय उन संस्थाओं से नहीं है जो निजी तौर पर बनती हैं अथवा बनी होती हैं और जिनको कोई धन लाभ कमाने का लालच है। हमारा स्पष्ट आशय ऐसी संस्थाओं से है जो निजी गैर सरकारी तो हैं पर स्वयंसेवी भी हैं और जिनका शोषित दलित एवं गरीब जनता के कष्ट दूर करना तथा देश के विकास में सहायक होना होता है।

अपने कार्यों की विस्तृत रूप रेखा बनाकर यह स्वयंसेवी संस्थाएं छोटे बड़े आफिस के रूप में अपने को स्थापित करती हैं और धनराशि एकत्रित करने का उनका आधार कुछ समाज के दानी लोगों के साथ-साथ कुछ विदेशी संस्थाएं भी सहायता देती हैं। धन की कमी होने पर ये संस्थाएं किसी भी गैर सरकारी स्रोतों से धन एकत्रित करती हैं इसका प्रमुख कारण यह है कि समाज में इनकी साफ-सुथरी छबि होती है और लोग जानते हैं कि वास्तव में ये संस्थाएं समाज की भलाई ही करती हैं। वर्तमान में भारत, कनाडा, फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी एवं संयुक्त राष्ट्र अमेरिका सहित विश्व में अनेक ऐसी संस्थाएं कार्य कर रही हैं जिनका कार्य केवल समाज कल्याण से सम्बन्धित है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में जब हम स्वयंसेवी संस्थाओं की बात करते हैं तो विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा यहाँ पर इनकी संख्या बहुत कम है। इसके पीछे सरकार की नीतियों एवं विश्वास की कमी ही स्पष्ट दिखती है ? वहीं दूसरी ओर कुछ इन संस्थाओं में भी कमियां दिखती हैं। क्योंकि "इन संस्थाओं के आका सरकार को झूठा झांसा देते हैं और समाज सेवा की मीठी-मीठी बातें देकर प्रदेश सरकार व केन्द्र सरकार से करोड़ों रूपये वसूल किया करते हैं और सरकारी नुमांददे भी इनकी बातों में फंसकर इन्हें रूपया दे देते हैं। जबकि यह संस्थायें सौ प्रतिशत में केवल एक प्रतिशत नगर की जनता व सरकार के दिखावे के लिए कार्य करवाती हैं बाकी ९९ प्रतिशत का पैसा ये संस्थाएं अपने कर्मचारियों को बांटती हैं जिसका जीता जागता उदाहरण आज सामने है कि कल तक जिनके पास खाने को कुछ भी न था और आज वही संस्था से जुड़े कर्मचारी व आला अधिकारियों के बड़े ठाट बांट हैं आज इन संस्था के कर्मचारियों के पास रहने के लिए आलीशान मकान व एसी लग्जरी गाड़ियां देखी जा सकती हैं।

अब सवाल यह खड़ा हो रहा है कि कल तक जिन संस्था कर्मचारियों व अधिकारियों के पास खाने के लाले पड़े थे लेकिन अब इनके पास इतनी सम्पत्ति कहां से आ गयी इससे साफ स्पष्ट हो रहा है कि यह सम्पत्ति सरकारी है। जो कि प्रदेश सरकार व केन्द्र सरकार इन संस्थाओं को जनता की सेवा के लिए अर्पित करती है। लेकिन यह संस्थाए जनता की सेवा के नाम पर अपना पेट भरने में लगी हैं।"[२]

स्पष्ट है कि जो पैसा देश के गरीब एवं पद दलित एवं जरूरत मंद लोगों को मिलना चाहिए वह नहीं मिल पा रहा है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में स्वैच्छिक स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका

बीसवीं सदी के आखिरी दशक में उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू होने के साथ पूरी दुनिया में एन०जी०ओ० की संख्या में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई है। कहीं यह संख्या सौ फीसदी है, तो कहीं दो सौ फीसदी तक बढ़ी है। विश्व में यह दशक विचारधारा के अंत और किसी तरह कमाई करने के दशक के रूप में जाना जाता है इसीलिए समाज सेवा के नाम पर भी कमाई करने को अब बुरा नहीं माना जाता।

न ही उसे भ्रष्टाचार कहा जाता है।

१. बीसवीं सदी में साठ के दशक से गैर-सरकारी संगठनों ने विकास के कामों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग देने का काम शुरू किया। पर तीसरी दुनिया में एन०जी०ओ० का आगमन सत्तर के दशक में हुआ।[३]

२. बौद्धिक चर्चाओं में इन पर ध्यान सत्तर के दशक के अंत और अस्सी के दशक के आरम्भ में शुरू हुआ। विशेष तौर पर इन्दिरा गांधी ने गुजरात हाईकोर्ट के न्यायधीश एम०डी० कुंदाल की अध्यक्षता में आयोग बिठा कर इन संगठनों की भूमिका पर विवाद खड़ा किया।[४]

३. इस समय ओ०ई०सी०डी० सदस्य देशों के ४००० एन०जी०ओ० दक्षिण के देशों के करीब २००० गैर-सरकारी संगठनों के साथ मिलकर विकास का काम कर रहे हैं। इस काम में वे अरबों डालर की सहायता दे रहे हैं।[५]

४. कहा जाता है कि इस समय सिर्फ दक्षिण एशियाई देशों में ८५ हजार से ज्यादा एन०जी०ओ० सक्रिय हैं।[६]

५. इस दौरान ओ०ई०सी०डी० देशों द्वारा विकास संबंधी कार्य करने वाले गैर-सरकारी संगठनों को मिलने वाली पब्लिक फंडिंग में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई। ओ०ई०सी०डी० देशों द्वारा सन् १९७५ में अन्य देशों एन०जी०ओ० के मार्फत दी जाने वाली विकास संबंधी सहायता का जी०एन०पी० प्रतिशत ०.७ फीसदी था। पर १९९३-९४ में यह बढ़कर ५ फीसदी हो गया।[७]

६. इसी तरह फिनलैंड से दी जाने वाली यह राशि ०.३ फीसदी से बढ़कर अब ६ फीसदी हो गई है।[८]

७. भारत में १९९० में पचास हजार एन०जी०ओ० होने का अनुमान था। लेकिन छह साल बाद यह संख्या बढ़कर डेढ़ लाख हो गई। हालांकि इसमें सभी संस्थाएं विदेशी सहायता पर निर्भर नहीं हैं।[९]

८. उत्तराखंड में तेरह हजार गांव हैं और लगभग उतने ही एन०जी०ओ० वहां सक्रिय हैं।[१०]

९. स्वीडन के पर्यावरण संघ के एक अनुमान के अनुसार १९९२ में ब्राजील में पर्यावरण संबंधी काम करने वाली तीन हजार संस्थाएं थी। जबकि सम्पूर्ण लैटिन अमेरिका में ऐसी संस्थाओं की संख्या १५ हजार थी।[११]

१०. जिम्बाबें में बहुदलीय प्रणाली लागू होने के पहले एन०जी०ओ० की संख्या बहुत कम थी। पर उसके बाद इस संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई। १९९६ के एक अनुमान के अनुसार वहां २ हजार एन०जी०ओ० खड़े हो गए थे और रोजाना नए एन०जी०ओ० का पंजीकरण हो रहा था।[१२]

११. नेपाल में १९९५ में ६ हजार एन०जी०ओ० पंजीकृत थे, लेकिन १९९६ मेंयह संख्या १८ हजार तक पहुंच गई थी।[१३]

१२. केन्या में १९८८ में महिला स्वयंसेवी संगठनों की संख्या २५ हजार थी।

१३. पेरू में १९८९ में ६१५ एन०जी०ओ० थे, जो १९९४ में बढ़कर ८०० हो गए। लेकिन १९९७ में उनकी संख्या घट कर ७३८ पर आ गई, इसकी बजह पेरू के लिए मिलने वाली अंतर्राष्ट्रीय सहायता में कटौती बताई जाती है जिसके लिए उत्तरी देशों की संस्थाओं की घरेलू मंदी जिम्मेदार है।[१४]

१४. घाना में प्रारम्भ में समाज कल्याण विभाग में पंजीकृत एन०जी०ओ० की संख्या सिर्फ आठ थी, पर १९८० के दशक में वह संख्या ३५० हो गई। अन्तर्राष्ट्रीय सहायता बढ़ने के साथ यह संख्या अब ६ सौ हो गई है।[१५]

१५. आस्ट्रेलिया में देश के कल्याण कार्यक्रमों में आधे से ज्यादा कार्यक्रम ११ हजार चैरिटी संगठनों द्वारा चलाए जाते हैं। जिनका सालाना टर्नओवर ४४ करोड़ डालर है।[१६]

१६. ब्रिटेन में करीब एक लाख पंजीकृत चैरिटी संगठनों का सालाना टर्न ओवर २७० करोड़ डालर है।[१७]

१७. श्रीलंका में सिर्फ एक ग्रामीण विकास एन०जी०ओ० के तहत ५० हजार कार्यकर्ता हैं, जो दस हजार गांवों में फैले हुए है।[१८]

दलित स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका

आजादी के ६१ साल के बाद भी दलित समुदाय का विकास सिर्फ कागजों में सिमट कर रह गया है जिसे हम विकास की उपमा दे रहे हैं। वह विकास नहीं सिर्फ परिवर्तन हुआ है आज भी दलितों के नाम पर सरकारी योजनाओं का बंदरबाट (लूट-खसोट) हो रहा है। इसमें अफसर से लेकर छोटे-बड़े कर्मचारी शामिल हैं। इनका हक उन तक पहुंचने नहीं पाता है। इसका कारण उनमें शिक्षा, एवं जानकारी का अभाव है। हमें यह भी कहने में संकोच नहीं है कि आज तक दलितों के नाम पर होने वाले विकास कार्यों एवं सहायता पर राजनेता या स्वयंसेवी संगठनों ने केवल अपनी-अपनी राजनीतिक रोटियां ही सेंकने का काम किया है।

हकीकत यह है कि भारत की जनसंख्या की लगभग ५५ प्रतिशत दलितों की आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही है। कुछ अपवादों को छोड़कर निरपेक्ष रूप से देखें तो दलितों के आर्थिक, सामाजिक उत्थान के लिये स्वयंसेवी संगठनों ने महती भूमिका का निर्वहन किया। अगर दलितों के लिए दलितों के द्वारा गठित ये स्वयंसेवी संगठन न होते तो पता नहीं वर्तमान में दलितों की स्थिति और कितनी दयनीय होती। सोचने पर ऐसा अहसास होता है। फिर भी जिस प्रकार दलितों की समस्याओं को चिन्हित करना चाहिये था, उस प्रकार से इन स्वयंसेवी संगठनों ने पहचान नहीं की। कारण कि स्वयंसेवी संगठन भी बड़े लोगों के हाथों में ही काम कर रहे थे। वर्तमान में जब सामाजिक, राजनैतिक जागृत दलितों में आई है, तो दलित वर्ग के लोगों ने भी गैर सरकारी संस्थाओं का गठन कर दलितों के लिए काम करना शुरू कर दिया है। जिसका कुछ हद तक दलितों को अवश्य लाभ मिल रहा है। जैसा कि कहा गया है कि माँ अपने बच्चों की जितनी अच्छी प्रकार से समस्या का निराकरण करने में सक्षम होती है। उतना पिता नहीं कर सकता है। ठीक इसी प्रकार दलित स्वयंसेवी संगठन माँ का काम कर रही हैं। और गैरदलित संगठन पिता के रूप में काम कर रहे है। इस प्रकार देखा जाए तो दलित संगठनों की भूमिका माँ जैसी है।

इस समय दलितों की समस्याओं के निराकरण के लिये दलित स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका इस प्रकार होनी चाहिए।

१. दलित स्वयंसेवी संगठनों को एकदम पारदर्शिता अपनानी होगी।[१९]

२. दलितों के सम्मान की रक्षा के लिये उनमें आत्मबल, आत्मसम्मान जगाने का काम करना चाहिये।[२०]

३. शिक्षा के प्रति उनमें एक लालसा बनानी होगी क्योकि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दलितों के लिए

शिक्षा ही जीवन है।

४. रोजगार एवं आय संसाधनों की खोज करनी होगी। स्थाई रूप से आय अर्जित करने के लिये सम्भावनाओं की तलाश करनी होगी।[२१]

५. सरकार द्वारा संचालित दलित समुदाय के विकास के लिये चलाए जा रहे कार्यक्रमों की जानकारी दलित स्वयंसेवी संगठनों को पूर्णरूप से देने के लिये समर्पित रूप से काम करना होगा।[२२]

६. आज तक आजादी का मतलब दलितों को मालूम नहीं है। उन्हें आजादी का मतलब समझाने के लिये दलित संगठनों को मां की भूमिका का निर्वाह करना होगा।[२३]

७. पंचायतों द्वारा स्वराज की कामना की गई है। इसकी भी जानकारी स्वयंसेवी संगठनों को दलितों में निष्पक्ष रूप से देने का काम करना होगा।

८. महिलाओं में अनिवार्य शिक्षा, लिंग भेद का खात्मां और दलित समुदाय को जन जागरण के माध्यम से इनमें जागरूकता लानी होगी।[२४]

पिछले दो दशकों में भारत में एन०जी०ओ० यानी गैर-सरकारी संगठन का जाल बहुत तेजी से बढ़ा है। शिक्षा, स्वास्थ्य और विकास से जुड़े कई क्षेत्र ऐसे हैं। जहां सरकारी उपक्रम अधूरे हैं और एन०जी०ओ० ने महत्वपूर्ण रचनात्मक भूमिका निभाई है फिर भी देश भर में इन संगठनों से जुड़ी कई बुनियादी बहसें जारी हैं। उनके कामकाज के ढंग को लेकर इसके साथ ही साधन और स्रोत जुटाने के तरीकों पर प्रश्न उठते रहे हैं। सामाजिक परिवर्तन के लिहाज से एन०जी०ओ० की कितनी उपयोगिता है और उनकी सीमाएं कहां से शुरू होती हैं? आज यह बहस का प्रमुख मुद्दा हो गया है।

पिछले ६१ वर्षों में देश की स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता, शिक्षा, आतंकवाद, सामाजिक न्याय, धर्म निरपेक्ष सरकार, समता मूलक समाज आदि बनाने के लिए भारत में अनेक राजनीतिज्ञों एवं समाजसेवी लोगों ने अपने-अपने स्तर से आन्दोलन आदि शुरू करके भारत को नई दिशा देने में लगे रहे। इस कार्य को आजादी के बाद करीब-करीब देश के हर वर्ग के जागरूक लोगों ने किया और अनेक लोगों ने कागजी खानापूर्ति और लम्बे-चौड़े भाषण देकर मददगारों में अपना नाम दर्ज करवाने में कोई कसर नहीं रखी। लेकिन देश में वास्तविक रूप में जिस कार्य को करना चाहिए था, वह नहीं हुआ।

शिक्षा रोजगार एवं विकास की दृष्टि से देखा जाय तो देश की अब तक कि सरकारों ने दलितों के लिए, जो कुछ भी किया वह सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। इसका हमें कोई गिला शिकवा नहीं लेकिन ६१ वर्षों से लगातार इस दलित समाज की राजनीति कर उन पर हुकुमत और शासन किया, इसमें हमारा हस्तक्षेप अवश्य है। क्योंकि इतिहास इस बात का साक्षी है कि दलितों ने सदैव सच्ची निष्ठा और लगन के साथ सेवा करके इस देश को ऊंचे शिखर पर पहुँचाने का कार्य किया है और इसके बदले में सरकार ने दलित बहुजन समाज के लिए लगातार सिर्फ पंगु कमीशन और आयोग ही बनाये।

वर्तमान में दलित समाज की बात करें तो अभी भी यह समाज पूर्णरूप से न तो शिक्षित हुआ है और न ही जागरूक तथा संगठित। हर दलित स्वयंसेवी संगठन को यह चाहिये कि वो दलितों को एवं उनकी समस्याओं को सर्वोपरि दर्जा प्रदान करे और दलितों के दुःख -सुःख और उनको रचनात्मक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करे इसके साथ ही हर दलित संगठन एक-दूसरे दलित संगठन से हमेशा

स्वस्थ तालुकात बनाये रखे और जब भी कोई दलित समस्या उत्पन्न हो तो मिल-जुलकर उसका निदान करें। और यदि समस्या राष्ट्रीय स्तर की है तो सभी दलित स्वयंसेवी संगठनों को मिलाकर एक राष्ट्रीय मोर्चा या संगठन बनाकर सरकार की गलत नीतियों का विरोध करें। वर्तमान की यह एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है जिसमें दलित स्वयंसेवी संगठनों की जिम्मेदारी एवं भूमिका बढ़ जाती है और ऐसे में हर दलित स्वयंसेवी संगठन का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह एक ऐसा रचनात्मक आन्दोलन चलाये जिसमें दलित समाज के हर वर्ग (हर स्तर) के लोगों का पूर्णरूप से व्यक्तित्व निर्माण हो सके।

आज की अनेक दलित समस्याओं को मद्दे नजर रखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारत के दलित स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका दलित हितों में संतोषजनक नहीं है इसके लिए एक व्यापक सुधार की आवश्यकता है। यह सुधार तभी हो सकता है जब दलित आपसी भाई चारे बधुत्व तथा एकजुट होकर कार्य करेंगें।

सुझाव

दलित समाज को विकासोन्मुखी एवं गत्यात्मक बनाने के लिए प्रत्येक दलित शिक्षित युवक एवं युवतियों को अग्रसारी बनना चाहिए जिससे समाज की गरीबी, बेरोजगारी, दरिद्रता एवं असन्तोष व पिछड़ापन को दूर किया जा सके। परन्तु इस कार्य को समग्रता देने के लिए सभी दलित समाज के प्रत्येक स्वंयसेवी संगठनों को प्रयत्नशील एवं जुझारू होना पड़ेगा जिससे आगे आने वाली पीढ़ी को सही एवं उचित मार्गदर्शन मिल सके।

१. दलित समाज को विज्ञान और प्रौद्योगिकी का अधिक से अधिक ज्ञान दिलाने के लिए स्वयं सेवी संगठनों को प्रयासरत होना चाहिए जिससे विश्व के बहुत से पिछड़े क्षेत्रों में रहने वाले दलितों को अपने जीवन को विकसित करने का अवसर मिल सके।
२. स्वयंसेवी संगठनों के द्वारा शिक्षा की गुणवत्ता एवं नैतिक मूल्यों को अधिक से अधिक बढ़ाकर दलित समाज को सतत एवं प्रयत्नशील बनाए रखना होगा। जिससे प्रत्येक दलित का सही तरीके से (उसका और उसके परिवार का) विकास हो सके।
३. स्वयंसेवी संगठनों के द्वारा शिक्षा के साथ-साथ स्वास्थ्य पर भी अधिक ध्यान देना चाहिए जिससे दलित समाज के प्रत्येक व्यक्ति का जीवन स्वच्छ, स्वच्छंद एवं निरोगी रहे तथा उसमें प्रतिरोधक क्षमता का विकास हो जिससे प्रत्येक घातक बीमारी से लड़ सके। परन्तु उसके पहले उसे अपने जीवन को व्यवस्थित करना पड़ेगा।
४. दलित स्वंयसेवी संगठनों का प्रमुख उत्तरदायित्व यह भी है कि वह दलितों को जागरूक एवं चैतन्य बनाये जिससे वह अधिक से अधिक समाज एवं राष्ट्र की उत्कृष्ट विकास की धारा में आ सकें।
५. स्वयंसेवी संगठनों को चाहिए कि वह ग्रामीण अंचल में निवास कर रहे दलितों के लिये ऐसे कार्यक्रम निश्चित करे जिससे यह वर्ग अपनी कुरीतियों, बुरी आदतों (मद्यपान, जुंआ, आदि) से छुटकारा पाकर अपना तथा अपने परिवार का विकास कर सके।
६. प्रत्येक दलित संगठन अपने समाज में व्याप्त बुराईयों पर पूरी निगरानी रखें और उन्हें दूर करने का पूरा प्रयास करें। अपने समाज को शिक्षा के प्रति जाग्रत करें।

७. प्रत्येक दलित संगठन का कर्तव्य है कि वे अपने समाज में स्वाभिमान पैदा करें ताकि दलित अपने को हीन भावना से ऊपर उठा सके। उन्हें समझायें की गरीबी, भुखमरी, गन्दगी, अशिक्षा, हीनता, बेईज्जती आदि किसी ईश्वर ने उनकी किस्मत में नहीं लिखी है। यह तो एक व्यवस्था का दुष्परिणाम है। इस व्यवस्था को बदलने के लिए सही दिशा में पुरूषार्थ और अपने अधिकारों को समझें और उनकी प्राप्ति के लिए संघर्ष करें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. पर्यावरणः वर्तमान और भविष्य, डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ०-७३, लोक कल्याण संस्थान, उरई, जालौन २००६, प्रथम संस्करण
२. राष्ट्रीय सहारा कानपुर, २० जनवरी २००८, समाज सेवा के नाम पर संस्थाएं कर रहीं करोड़ों का घोटाला, पृ० १२
३. नयी सदी भी तोड़ नहीं पायी उत्तर प्रदेश में अछूतपन को, प्रेम कपाड़िया, डॉ० प्रकाश लुईस) पृ०-१११
४. वही, पृ. १११
५. वही, पृ. १११
६. वही, पृ. १११
७. नयी सदी भी तोड़ नहीं पायी उत्तर प्रदेश में अछूतपन को, प्रेम कपाड़िया एवं डॉ० प्रकाश लुईस, पृ०-११२
८. वही, पृ. ११२
९. वही, पृ. ११२
१०. वही, पृ. ११२
११. वही, पृ. ११२
१२. वही, पृ. ११२
१३. वही, पृ. ११२
१४. वही, पृ. ११२
१५. वही, पृ. ११२
१६. नयी सदी भी तोड़ नहीं पायी उत्तर प्रदेश में अछूतपन को, प्रेम कपाड़िया, डॉ० प्रकाश लुईस, पृ०-११३
१७. वही
१८. वही
१९. वही
२०. नई सदी भी तोड़ नहीं पायी उ०प्र० में अछूतपन को, प्रेम कपाड़िया, डॉ० प्रकाश एवं लुईस, पृ०-१२६
२१. वही
२२. वही
२३. वही
२४. नई सदी भी तोड़ नहीं पायी उ०प्र० में अछूतपन को, दलित स्वयं सेवी संगठनों की भूमिका कैसी है ? प्रेम कपाड़िया, डॉ. प्रकाश लुईस, पृ०-१२७

पुस्तक मंच

आधी दुनिया के यथार्थ का संकल्प

❑ डॉ. मधुरबाला यादव

पुस्तक : संकल्प (उपन्यास)
लेखिका : कश्मीरी देवी
प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य : रु० १२५.००

कश्मीरी देवी लेखन के क्षेत्र में एक जाना पहचाना नाम है। राजकीय महाविद्यालय, महम (रोहतक) में हिन्दी प्राध्यापिका पद पर कार्यरत कश्मीरी जी देश की समस्त लब्धप्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करवाती रही हैं। कहानियों, लघु-कथाओं के अतिरिक्त उनकी लेखनी से संस्मरण तथा आलेख भी हिन्दी साहित्य-जगत को प्राप्त होते रहते हैं। पिछले कई वर्षों से [illegible] पत्रिका का सम्पादन कार्य कर रही कश्मीरी जी अपनी प्रथम औपन्यासिक कृति 'संकल्प' के माध्यम से नारी-व्यथा की मार्मिक एवं संवेदनशील प्रस्तुति देने में सफल सिद्ध रही हैं।

स्त्री-समस्याओं की मार्मिकता एवं संजीदगी को अपने पहले ही उपन्यास 'संकल्प' के माध्यम से सामने लाने का साहसपूर्ण कार्य कश्मीरी देवी द्वारा नितांत गम्भीरता से किया गया है। साहसपूर्ण इस रूप में कहा जा सकता है कि वास्तविक घटनाओं, पात्रों आदि को लेकर रचे-बुने ताने-बाने के प्रकटन में लेखिका के मन में मान-हानि जैसा भोला सा डर कौंध रहा था। यह डर अस्वाभाविक भी नहीं है, स्त्री व्यथा-कथा के यथार्थ को सामने लाने, उसकी परेशानियों, तकलीफों को प्रस्तुत करने की स्थिति में अनचाहे रूप में नारी छवि के विकृत चित्रण का आरोप भी जन्म लेता दिखता है। लेखिका ने अपने भीतर उपजे डर को कथा की नायिका की ऊर्जा 'जब ओखली में सिर दिया तो मूसलों से क्या डरना' से सम्बल प्राप्त कर को उघाड़ने का संकल्प लिया।

वर्तमान में जहाँ समाज स्वयं को आधुनिकता एवं नारी समर्थक के रूप में 'एक्सपोज' कर रहा है वहीं समाज के भीतर ही इस प्रकार की स्थितियाँ निर्मित हो रहीं हैं अथवा की जा रहीं हैं कि स्त्री का स्वरूप किसी गुलाम की तरह ही दिखाई देता है। उपन्यास की मुख्य पात्र 'संतरो' है जिसका चित्रण बचपन की उछलकूद से लेकर स्त्री-जीवन के कटु अनुभवों को भोगने के रूप में पाठकों के सामने आता है। पति के सामने एक देह रूप में प्रस्तुत होती, सास-ससुर, घर के लिए चौबीसों घंटे काम को तत्पर रहने वाले गुलाम सी भूमिका में, किसी की भी किसी प्रकार की गलती पर दण्ड भोगने को अभिशप्त संतरो के रूप में लेखिका ने भारतीय नारी के कटु सत्य को उभारा है।

भारतीय समाज में संतरो अकेले ही अपने स्त्री होने का दण्ड नहीं भोग रही है। उसके बहते आँसुओं के साथ तमाम सारी स्त्रियाँ अपने आँसू बहाती दिखती हैं। पारिवारिक यंत्रणा को सहते हुए, अपने ही बेटों की अकाल मृत्यु के पश्चात डायन कहलाये जाने का त्रास भोगते हुए, पति के अवैध सम्बन्धों के ज्ञात होने के बाद भी पारिवारिक सामंजस्य बनाये रखने को विवश होती है। ग्रामीण समाज के यथार्थ चित्रांकन के साथ ग्रामीण नारी के चित्रांकन में लेखिका सफलसिद्ध रही हैं।

ग्रामीण स्त्री की घर परिवार में भागीदारी के साथ-साथ श्रम-साध्य कार्यों में भी सहभागिता दिखती है। इस हाड़तोड़ श्रम के बदले में सहानुभूति अथवा प्यार के दो बोल न मिल कर गालियों, लात-घूँसों की सौगात प्राप्त होती है। संतरो सास, ससुर, पति और बाद में अपने देवर-देवरानियों से भी अपमान, शारीरिक यंत्रणा पाती है। लेखिका द्वारा नारी को आधार बनाकर सृजित उपन्यास में विविध नारी पात्रों द्वारा ही स्त्री-संसार को उद्घाटित किया है। शारीरिक यंत्रणाओं, आर्थिक अभावों, पारिवारिक परेशानियों को अपनी नियति मानकर आजीवन अपने अस्तित्व को स्थापित करने के लिए कर्मक्षेत्र में डटी संतरो है तो उसके पीछे उसकी हिम्मत, विश्वास बनकर खड़ी छोटी बहिन भोली है।

देखा जाये तो लेखिका ने ग्रामीण नारी समाज के सत्य को जिस प्रकार से प्रस्तुत किया है वह वाकई सिरहन पैदा करता है। २१वीं सदी में प्रवेश कर चुकने के बाद भी आधी दुनिया का यथार्थ 'संतरो' के रूप में प्रकट होता है। इस सामाजिक विद्रूपता के प्रकटन में लेखिका ने वास्तविक जीवन को आधार बनाया है। सामाजिक मर्यादाओं, परम्पराओं की विवशता में कुछ न कर पाने का अपराधबोध लेखिका को संकल्प की आधारभूत जमीन दे सका। प्रथम प्रयास में नारी-व्यथा को आवाज़ देने का कार्य कश्मीरी जी सफलता से करती नज़र आयी हैं।

❑ *प्रवक्ता-हिन्दी विभाग, पी. पी. एन. कालेज, कानपुर (उ. प्र.)*

प्रकृति से प्रकृति का सनातन मिलन

पुस्तक मंच

❒ डॉ० कुमुदिनी एम पाटील

पुस्तक : धरती का बुखार
विधा : (कविता संग्रह)
लेखिका : मीरा यादव 'आनन्द'
प्रकाशन : प्रयोग प्रकाशन, [illegible]
[illegible]

[illegible] किसी स्त्री द्वारा पहली बार श्री कृष्ण [illegible] प्रकाशन करने से [illegible] मीरा यादव 'आनन्द' हिन्दी के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराती रही है। [illegible] भोपाल एवं नारी कल्याण संगठन जैसी संस्थाओं में सक्रिय भागीदारी करने से [illegible] सामाजिक कार्यों के प्रति विशेष रुचि रखती है। राजभाषा [illegible] समिति द्वारा [illegible] अनेक संस्थाओं द्वारा [illegible] मीरा जी की रचनाएँ विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित होती [illegible] प्रसारित होती रहती है।

कवि मन की आकुलता, संवेदनशीलता का परिणाम उसकी कविताओं में मानवीय संघर्षों, सामाजिक परिवेश में होने वाले परिवर्तन का यथार्थपरक चित्रण होता है। कल्पना के विशाल फलक पर जब वह वास्तविकता का उद्‌देलन, भावोद्‌गार प्रकट करता है तो 'धरती का बुखार' जैसी काव्य-कृति की सर्जना होती है। शब्दों का मायाजाल बुने बगैर भाव-संवेदनाओं की अभिव्यक्ति कर कवयित्री ने पर्यावरण संकट की आकुलता को अपनी कविताओं में दर्शाया है। *'इन्द्रलोक में है परिजात हँसता/भूलोक में क्यों पर्यावरण सिसकता', 'बुझा-बुझा सा बसन्त का आगमन होगा/वृक्षों के पास न सावन का मेला होगा'* जैसी अभिव्यक्ति अन्तस का दर्द ही प्रकट करती है।

'वनस्पति के टुकड़े, सिर से जुदा धड़ पड़े/वृक्षों का देख हाल, मेघदूत रो पड़े' कवयित्री की कल्पना मात्र नहीं है। कवयित्री ने प्रकृति के अन्तस में झाँक कर उसकी विपदा को शब्दों के द्वारा उकेरने का प्रयास किया है। दिव्य प्रवाह की अभिव्यक्ति में वृक्षों की अभिलाषा *'तुम मेरे वजूद को विशालतम बना दो/मुझे खुले आसमाँ की ऊँचाइयाँ छूने दो'* का प्रकटन है तो पॉलीथीन के अतिशय उपयोग से प्रदूषित होती धरती की चिन्ता भी है- *'सीधे-सीधे जमीं, खेत, खलिहान निगल रही/चौपायों के कंठ और आँतें उमेठ रही।'* लेखिका ने बड़ी गम्भीरता से अपने आसपास के वातावरण को देखा-परखा है, प्रकृति के दर्द का स्वयं एहसास किया है और उसके विविध रूपों के माध्यम से अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है।

कवयित्री एक ओर 'नव नीर नर्मदे' के द्वारा नर्मदा नदी के विहंगम दृश्य देखने को लालायित है तो दूसरी ओर नदियों के प्रदूषित होने, उनकी पावनता-क्षरण होने को भी *'इस वर्ष/शिव नहीं पधारे/सच है/तुम्हारी गंगा/मैली जो हो गई....'* के द्वारा दर्शाती जाती है। निरंतर गिरते पिघलते हिमखण्ड प्रकृति के अतिशय दोहन का दुःखद परिणाम है।

पर्यावरण के भयावह स्वरूप की कल्पना मात्र से ही कवयित्री को सिरहन मच जाती है। इस विभीषिका से बचाने वाला जब कोई नजर नहीं आता तब वह *'पार्थ उठो/अभिमन्यु उठो/विज्ञान के सारथी उठो'* के द्वारा प्रदूषित होते वातावरण, सिसक रहे पर्यावरण को बचाने की पुकार कर बैठती हैं। *'न काटो कदम्ब की डार/कान्हा बिराजे कौन सी डार'* के द्वारा लोगों को वृक्षों के अनावश्यक कटान से वह रोकने का प्रयास भी करती हैं तो *'भूल से न भूलना ओसारे के दरख्त को/अन्तिम बेला में उनसे भी विदा लेना/श्रद्धा के सुमन तुम यहाँ चढ़ा देना'* के द्वारा वृक्षों के प्रति सम्मान भी प्रकट करती हैं।

'रति की भ्रूण हत्या', 'धूप ने चश्मा पहना', 'वेदना से व्याकुल/धरा कैंसर ग्रस्त', 'धरती का बुखार' जैसे नवीन बिम्बों और भाषा का सरल, सहज, अनुभूतिपरक प्रवाह पाठकों के हृदय को गहरे तक स्पंदित कर देता है। निःसंकोच प्रदूषण वर्तमान में प्रकृति विनाश का प्रमुख कारण है जिस कारण मानव, धरती, आकाश, जल, वायु, ध्वनि आदि सभी कुछ प्रभावित हैं। जीवनदायी शक्तियाँ, जीवनरक्षक संसाधन दिनों-दिन क्षीण अथवा समाप्त हो रहे हैं। ऐसे में मीरा यादव की कृति 'धरती का बुखार' सोचने को विवश करती है। 'प्रकृति में परमात्मा' के द्वारा मीरा जी ने जिस प्रकार सरिताओं, झरनों, वृक्षों, हरियाली, आकाश आदि में ईश्वर के दर्शन की अभिलाषा की है यदि इन्सान इसे आत्मसात कर ले, समझ ले तो कवयित्री का सृजन लोक-मंगलकारी सिद्ध हो सकता है।

❒ *हिन्दी-विभागाध्यक्ष एवं निदेशक, हिन्दी अनुसंधान केन्द्र, नासिक रोड, महाराष्ट्र (महाराष्ट्र)*

पुस्तक मंच

पर्यावरण के बहाने समाज को कुछ समझाने का प्रयास

❒ डॉ० अजीत सिंह राही

पुस्तक : पर्यावरण : वर्तमान और भविष्य
लेखक : डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक : लोक कल्याण संस्थान, उरई
मूल्य : रु० २५०.००

युवा साहित्यकार के रूप में ख्याति प्राप्त डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव ने [illegible] स्तरीय [illegible] यू. जी. सी. द्वारा दी गयी मानव फेलोशिप, [illegible] और सामाजिक परिप्रेक्ष्य विषय पर शोधरत हैं।

युवा रचनाकार डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव साहित्य के क्षेत्र में अपनी कृतियों के माध्यम से अपनी सशक्त उपस्थिति को दर्ज कराते रहते हैं। उनकी वर्तमान कृति 'पर्यावरण : वर्तमान और भविष्य' समाज को आईना दिखाने का कार्य करती है। पृथ्वी पर संतुलित जीवन के लिए आवश्यक है कि वहाँ पर्यावरण का संतुलन स्थापित रहे। आज जब जनसंख्या विस्फोट के कारण पर्यावरण विनाश तेजी से हो रहा है तब इस बात की नितांत आवश्यकता है कि हम स्वार्थगत् लाभों को त्यागकर समाज हित के कार्य करें।

डॉ० वीरेन्द्र की यह पुस्तक पर्यावरण के विविध आयामों से परिचय करवाती हुई वास्तविकता को सामने लाने का प्रयास करती है। जीवन जीने की आपाधापी में मानव सही गलत की पहचान करना ही भूल गया है। उसने अपने प्रत्येक कदम को स्वार्थपूर्ति हेतु उठाना प्रारम्भ कर दिया है। बिना सोचे समझे कार्य करने की मानवगत् शैली के कारण समाज को पर्यावरण संकट का सामना करना पड़ रहा है। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण सहित तमाम तरह के प्रदूषण मानव प्रदत्त ही कहे जा सकते हैं।

पर्यावरण के बारे में विस्तार से बताती यह पुस्तक पर्यावरण के एक-एक पहलू पर प्रकाश डालती है। पर्यावरणीय समस्याओं की उत्पत्ति के पीछे छिपे कारणों को डॉ० वीरेन्द्र किसी सिद्धहस्त पर्यावरणविद् की तरह प्रकट करते हैं। प्रदूषण की उत्पत्ति हो अथवा उसकी वातावरण में मात्रात्मक उपस्थिति; पर्यावरण प्रदूषक हों अथवा प्रदूषण के स्रोत; मानव स्वास्थ्य पर प्रदूषण का प्रभाव हो अथवा प्रदूषण रोकथाम के उपाय सभी को विस्तार से चित्रों, तालिकाओं के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

पुस्तक पढ़ते समय कई बार यह बड़ा ही भयावह सा प्रतीत होता है जबकि विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों के कारण पृथ्वी पर मानव जीवन ही खतरे में पड़ जायेगा। यह कृति अपने आपमें इस कारण भी अनूठी कही जा सकती है क्योंकि पर्यावरण से सम्बन्धित तमाम सारी जानकारियाँ देने के साथ ही साथ यह पर्यावरण और मानव का आपसी सम्बन्ध भी स्थापित करती दिखती है।

यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये तो इस पुस्तक के द्वारा ज्ञान भण्डार में वृद्धि ही की जा सकती है। पर्यावरण कानून क्या है? इसकी आवश्यकता क्यों पड़ी? भारतीय संविधान के अनुसार राज्य एवं समवर्ती सूची में पर्यावरण कानून किस प्रकार का है? विभिन्न प्रदूषणों से सम्बन्धित कानून क्या-क्या हैं? विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं की पर्यावरण-संरक्षण के प्रति क्या भूमिका है? विश्व स्तर पर पर्यावरण-संरक्षण के क्या उपाय किये जा रहे हैं? आदि-आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनकी जिज्ञासा प्रत्येक मन में होती है। इन प्रश्नों के अतिरिक्त भी अनेक प्रकार की जिज्ञासाओं का समाधान लेखक ने बड़ी ही सहजता से किया है।

पर्यावरण सम्बन्धी विविध जानकारी उपलब्ध कराने के साथ ही डॉ० वीरेन्द्र ने एक प्रकार का अनूठा प्रयोग किया है। पुस्तक के अन्त में लेखक ने देश के प्रमुख समाचार-पत्रों में प्रकाशित गम्भीर पर्यावरणीय समाचारों को भी स्थान दिया है। लेखक के इस प्रयास से वे अछूते संदर्भ भी सामने आ सके हैं जो समाचार-पत्रों की सुर्खियाँ मात्र बन कर रह जाते थे। निःसंदेह डॉ० वीरेन्द्र की यह कृति पर्यावरण संकट से उपजी पीढ़ा का प्रतिबिम्ब है जो समाज को कुछ बताने का, समझाने का एक प्रयास समझा जा सकता है।

❒ पो. बा. ११६, हानउड २६८०, एन. एस. डब्ल्यु, आस्ट्रेलिया

पुस्तक मंच

मुखौटे में छिपा सत्य

❑ डॉ० कुमारेन्द्र सिंह सेंगर

पुस्तक : मुखौटे (कहानी संग्रह)
लेखिका : प्रतिभा जौहरी
प्रकाशक : समय प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य : रु० १५०.००

कथाकार के रूप में प्रतिभा जौहरी किसी परिचय की मोहताज नहीं हैं। पाँच उपन्यास एवं चार कहानी संग्रहों के साहित्य-संसार के अतिरिक्त उनकी अनेक कहानियाँ, लेखों, अन्य रचनाओं का प्रकाशन देश की समस्त स्तरीय पत्रिकाओं में होता रहता है। प्रकाशन के साथ-साथ उनकी कहानियों का प्रसारण भी आकाशवाणी से होता रहता है। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा महादेवी वर्मा पुरस्कार २००६, हिन्दी अकादमी द्वारा साहित्यिक कृति सम्मान, अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन द्वारा संस्कृति सम्मान सम्मान से सम्मानित प्रतिभा जी वर्तमान में रमणी पत्रिका की सह-सम्पादक भी हैं।

सुप्रसिद्ध कथा-लेखिका प्रतिभा जौहरी का नया कहानी संग्रह मुखौटे अपने छोटे से फलक में विस्तृत संसार समेटे है। कहानियों की बुनावट में सरलता की अद्‌भुत बानगी दिखायी देती है। शहरी जीवन के पात्रों को केन्द्र में रख कर कहानियों को विविधता प्रदान की गयी है। प्रतिभा जी की कहानियाँ सरलता से प्रवाहपूर्ण रेखांकन कर जीवन-जगत के तमाम मुखौटों को प्रदर्शित करती हुई उनके पीछे छिपी सच्चाई को उजागर करतीं हैं।

'मुखौटे' कहानी वर्तमान समाज की वास्तविकता को सुन्दरता से बयान करती है। हकीकत को जानने समझने के बाद भी कुछ न कर पाने की विवशता कहानी के पात्र दिनेश को क्रान्तिकारी कदम उठाने को विवश करती है। राजनीति, मीडिया के मिले-जुले घालमेल के मध्य दिनेश का रद्दी की टोकरी में गे टेप को निकालना व्यवस्था परिवर्तन का संकेत करता है।

लेखिका के जीवन का एक बड़ा हिस्सा समुद्री यात्राओं, जहाजों की दुनिया में गुजरा है। कहानियाँ 'शांत सागर से उठा तूफान' तथा 'चंद कागज के टुकड़े' सागर जीवन की सच्चाई से अवगत कराती हैं। सागर की अथाह जलराशि के मध्य अनुकूल मौसम, स्वच्छ नीला आसमान कब संकट के बादलों को ला खड़ा कर दे; कैसे एक निर्णय जीवन और मृत्यु को तय कर दे, इसे इन कहानियों के द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। एक छोटी सी गलती किस प्रकार समूचे जीवन के दर्शन को प्रभावित कर देती है यह सत्यता अर्जुन ने अपने साथी को खोकर ही ज्ञात होती है।

छोटे भाई द्वारा लाई चूड़ियों को लेते समय सलमा के चेहरे पर जो चमक थी वह उसकी नन्हीं, कोमल सी उँगलियों में घाव देखकर मिट जाती है। पहले से झुलसी उँगलियाँ, उनमें फिर से आग की तपन, चेहरे का दर्द महसूस करने से सलमा को चूड़ियों की खनक में दर्द भरी कराह सुनायी देती है। बाल मजदूरी के दर्द को उभारती कहानी 'झुलसी पंखुड़ियाँ' देश के दुर्भाग्य को दर्शाती है जहाँ गरीबी की मार से नौनिहालों को नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है और परिवार, समाज, सरकार सभी अनजानी सी खामोशी ओढ़े हैं।

बाल मजदूरी का एक विकृत स्वरूप हमें अपने ही घरों में देखने को मिलता है। परायेपन की ग्रन्थि के वशीभूत बच्चों की भोली दुनिया, मासूम मुस्कान, पावन सपनों को अपने पैरों तले किस प्रकार से रौंद देते हैं, इसका संवेदनशील चित्रण 'अनजाना रिश्ता' कहानी में लेखिका ने किया है। ''आप आराम से नही बैठ पायेंगे तो मुझे डाटेंगे'' का डरा-सहमा सा भाव पाठकों की आँखों को बच्ची बसंती के दुःख से गीला करता है तो हेमंत द्वारा उसको अपनाने की पहल पर खुशी के आँसू बहते हैं।

मध्यमवर्गीय परिवार की छोटी-छोटी आवश्यकताओं पर त्रासदियों का साया इस प्रकार से पड़ा होता है कि वह चाह कर भी सामाजिक, पारिवारिक सम्बन्धों का निर्वहन प्रसन्नतापूर्वक नहीं कर पाता है। 'मेवालाल की रज़ाई' में एक-एक पैसे की जुगाड़ बैठाते आदमी की कड़वी सच्चाई है तो किसी न किसी प्रकार दूसरों की जेब पर डाका डालते लोगों की हकीकत है। अपनी ही रजाई को बापस लेने के लिए दो सौ रुपये देने की अक्षमता के कारण मेवालाल अंत में रजाई छोड़ कर चला जाता है।

संग्रह की अन्य कहानियाँ प्रतिभा जी की समकालीन यथार्थ पर गहरी पकड़, मनोवैज्ञानिक समझ को प्रदर्शित करतीं हैं। इसी कारण वे परिवेश के प्रति सजगता एवं पठनीयता का प्रवाह दिखातीं हैं।

❑ *प्रवक्ता-हिन्दी विभाग, गाँधी महाविद्यालय, उरई जिला-जालौन (उ. प्र.)*

पुस्तक मंच

सरकारी योजना का आंकलन

❑ डॉ. रौशन कुमार

पुस्तक : मिड-डे मील योजना, एक अध्ययन
लेखक : डॉ० कुमारेन्द्र सिंह सेंगर
प्रकाशक : दीपशिखा प्रकाशन, उरई
मूल्य : रु० १२५.००

[illegible] समीक्ष्य पुस्तक में अध्ययन हेतु प्रस्तुत किया है।

युवा साहित्यकार एवं आलोचक कुमारेन्द्र सिंह सेंगर का नजरिया किसी भी स्थिति को आलोचनात्मक रूप से समझने का रहता है। साहित्यिक क्षेत्र की कृतियों, कृतिकारों का आकलन वे आलोचनात्मक रूप से करते रहते हैं। उत्तर प्रदेश द्वारा चलायी जा रही मिड-डे मील योजना की वास्तविक स्थिति को जानने, समझने के लिए एक सर्वेक्षण के माध्यम से इस योजना का अध्ययन किया गया।

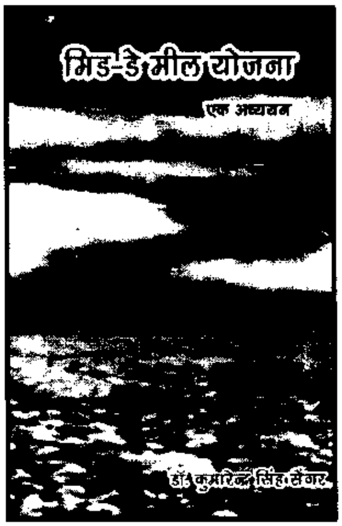

विभिन्न बिन्दुओं, प्रश्नों के आलोक में एक प्रश्नावली के द्वारा चयनित गाँवों के प्राथमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों, अभिभावकों, छात्रों से आँकड़ों को ज्ञात कर योजना का आकलन किया गया।

मिड-डे मील योजना के स्वरूप, छात्रों पर उसके स्वास्थ्य सम्बन्धी एवं शिक्षा सम्बन्धी प्रभाव, स्वच्छता की स्थिति, भोजन का स्तर, भोजन की स्वास्थ्य सम्बन्धी गुणवत्ता, अध्यापकों द्वारा भोजन निर्माण में भूमिका, ग्राम प्रधानों का रवैया, स्थानीय राजनीतिक हस्तक्षेप की स्थिति, योजना के आगामी संचालन हेतु राय आदि तमाम सारे बिन्दुओं पर आँकड़ों का संग्रहण कर योजना को विश्लेषित किया गया।

सरकारी योजना जितनी कागजों में प्रभावी दिखती है उतनी प्रभावी वह व्यावहारिक रूप में नहीं दिखायी देती है। मिड-डे मील योजना की हकीकत का अक्षरशः बयान यह पुस्तक स्वयं करती है। ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों में लगातार कम होती जा रही छात्र संख्या को बढ़ाने तथा गरीबी के कारण भोजन से वंचित रह जाने वाले बच्चों को विद्यालयों में ही भोजन दिये जाने के उद्देश्य से इस योजना को प्रारम्भ किया गया था।

राजनैतिक हस्तक्षेप, प्रत्येक योजना में कमीशनबाजी की प्रवृत्ति के चलते योजना की गुणवत्ता पर व्यापक असर हुआ है। पुस्तक में सारणीबद्ध आँकड़ों के आधार पर योजना की सच्चाई को नितान्त शालीनता के साथ प्रदर्शित किया गया है। चयनित प्रश्नों के साये में पूरी योजना का आकलन कर लेखक ने अपने सर्वेक्षण के साथ न्याय करने का प्रयास किया है।

आँकड़ों, तथ्यों और उनके विश्लेषण से पुस्तक आम पाठकों को कदापि रुचिकर नहीं लगेगी पर जो लोग आँकड़ों एवं योजनाओं की वास्तविकता के प्रति जागरूक रहते हैं वे अवश्य ही इस पुस्तक से लाभान्वित हो सकते हैं। देखा जाये तो यह पुस्तक किसी कथा, किसी घटना को आधार बना कर नहीं लिखी गयी है, इस कारण इसमें कथानक अथवा नाटकीयता का पूर्णतः अभाव दिखता है। इसके बाद भी यह पुस्तक पठनीयता में अवरोध उत्पन्न करती नहीं दिखती है, इसे लेखक के भीतर के साहित्यकार का प्रयास ही कहा जा सकता है।

लेखक ने योजना का मूल्यांकन करते हुए बिना लाग-लपेट के लिखा भी है कि ग्राम प्रधान की प्रभावी भूमिका परन्तु जवाबदेही प्रधानाध्यापक की; ग्राम प्रधान की दबंगई और ठगा महसूस करें बच्चे; ग्राम प्रधान और प्रधानाध्यापक में असहयोग तो भूखों रहें बच्चे; यह सब योजना को सफल होने से रोकता है।

समूची योजना का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के बाद योजना की कमियों को सामने रखा गया साथ ही उन कमियों को दूर करने के उपाय भी बताये गये हैं। वर्तमान परिस्थितियों में आई कमियों के कारण भले ही योजना सफल सिद्ध न हो पा रही हो किन्तु उपायों को अपना कर, योजना को सुधार का अमली जामा पहना कर इसके उद्देश्य को सफलतापूर्वक प्राप्त करने की आशा की जा सकती है।

❑ *व्याख्याता-स्नातकोत्तर, हिन्दी विभाग, शांति प्रसाद जैन महाविद्यालय, सासाराम, रोहतास (बिहार)*

पुस्तक मंच

नई राह दिखाता संघर्ष

❐ डॉ० उमारतन

पुस्तक : टुकड़ा-टुकड़ा संघर्ष (उपन्यास)
लेखक : डॉ० दिनेश चमोला 'शैलेश'
प्रकाशक : अखिल प्रकाशन, देहरादून
मूल्य : रू० १६०.००

बाल मनोविज्ञान की गहराई से पड़ताल करने में डॉ० दिनेश चमोला 'शैलेश' साहित्य के क्षेत्र में अपरिचित नाम नहीं है। अनेक बाल कविता एवं कहानी संग्रह की रचना करने के अतिरिक्त उनके कई मूल्य संपादन, अनुवाद एवं शब्दकोश प्रकाशित हो चुके हैं। 'प्रतिभाश्री', 'साहित्य-भास्कर', 'साहित्य शिरोमणि', 'राष्ट्रभाषा गौरव सम्मान', 'बालसाहित्यालंकार', 'हिन्दी गौरव' आदि सहित अनेक सम्मानों, पुरस्कारों से विभूषित 'शैलेश' जी के साहित्य पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोधकार्य जारी है। देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर लेखन करने के साथ-साथ सम्प्रति 'विन्यास' के सम्पादक हैं।

बाल मनोविज्ञान की गहरी समझ रखने वाले डॉ० दिनेश चमोला का यह उपन्यास बाल संघर्ष एवं चेतना का सुखद प्रस्तुतिकरण करता है। तमाम सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रयासों के बाद भी बाल मजदूरी का अभिशाप देश के नौनिहाल सहने को विवश हैं। आन्दोलनों, रैलियों, सभाओं के द्वारा बाल मजदूरों की दशा को सुधारने का दम्भ तो भरा जाता है किन्तु वास्तविकता में इस प्रकार के कोई ठोस प्रयास होते नहीं दिखते जिससे बाल मजदूरों में चेतनात्मक विकास जाग्रत हो सके।

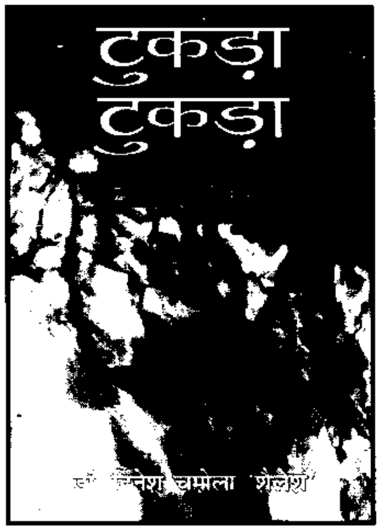

इन विडम्बनाओं, असमानताओं के बीच टुकड़ा टुकड़ा संघर्ष का राजू क्रान्ति की मशाल जला कर रोशनी फैलाने का कार्य करता दिखता है। ग्रामीण परिवेश में पल रहे राजू के मन में बचपन से ही स्वाभिमान की ज्योति प्रज्ज्वलित थी। *"मैं तो तुम सब से अच्छा मैच खेलने जा रहा हूँ....मैं तो जीवन का मैच खेलने जा रहा हूँ....ऐसा मैच जिसमें एक बार जीत होने पर मनुष्य फिर कभी जीवन में हार का मुख नहीं देख सकता"* के द्वारा उसके आत्मविश्वास का पता चलता है। इसी विश्वास के सहारे वह परिश्रम करने से भी नहीं घबड़ाता है। लेखक उसी के मुख से कहलवाता है-*"केवल प्रारब्ध (भाग्य) आपको मंजिल तक नहीं पहुँचाता, मंजिल तक पहुँचाने में प्रमुख भूमिका आपके कर्म, परिश्रम व ईमानदारी की होती है।"*

अपनी चेतना, संघर्षशीलता के कारण राजू परिस्थितियों से घबराये बिना कार्य करता रहता है और अपने साथ-साथ अपने दो मित्रों तथा अनेक बाल मजदूरों का भी भला करता है। परहित को लेकर कार्य करने के पीछे उसकी सोच थी कि *'भगवान ने हमें यहाँ गुलाम बनने के लिए या फिर शोषित होने के लिए नहीं भेजा है....भेजा है तो केवल मनुष्य जीवन का अच्छे से अच्छा लाभ उठाने के लिए....मनुष्य होकर मानवता का कुछ उत्थान करने के लिए।'* राजू की सही सोच उसका तो विकास करती ही है उन लोगों के लिए भी प्रेरणादायी हो सकती है जो परिस्थितियों का रोना रोकर हताशा, निराशा भरा जीवन व्यतीत करते रहते हैं।

दिनेश जी की बाल मनोविज्ञान की गहरी समझ के कारण उन्होंने अपने उपन्यास में बच्चों के विकास की राह बच्चों द्वारा ही निर्मित करवाई है। कहानी के आरम्भिक बिन्दु से लेकर उसके सुखद समापन तक का क्रमशः विस्तार सहजता से प्राप्त होता दिखता है। चरणबद्ध रूप से बालक राजू के द्वारा उत्थान करते रहना कर्मठता का द्योतक है। लेखक कथा के विस्तार के साथ बाल मजदूरों के मानसिक विकास, सामाजिक विकास को भी विस्तार देता जाता है, यह लेखक के बाल मनोविज्ञान को गहराई से समझने का प्रमाण है।

पूरे उपन्यास का विश्लेषणात्मक रूप से पाठन किया जाये तो लेखक द्वारा दिये जाने वाले संदेश को आसानी से समझा जा सकता है। कामगार बच्चों की नियति मात्र काम करते रहना ही नहीं है, उनके भीतर भी एक छोटी सी दुनिया का अस्तित्व है, उनकी आँखों में भी सुनहले सपनों का इन्द्रधनुष सजा हुआ है बस आवश्यकता उसे पहचान कर बसाने की है, खिलाने की है। बाल मन की दृढ़ प्रतिज्ञा, उसका आत्मविश्वास, कार्य के प्रति लगन, निःस्वार्थ भाव से संगठन खड़ा करने की शक्ति को लेखक ने बड़ी ही खूबसूरती से दर्शाया है। निःसंदेह दिनेश चमोला का यह उपन्यास बाल मनोविज्ञान को सही रूप में प्रकट करता है साथ ही बाल मजदूरी को समाप्त करने वालों को भी नई राह दिखाता है।

❐ *रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)*

पुस्तक मंच

अँधेरी सुरंग में रोशनी फैलाने की प्रतिबद्धता

❑ डॉ० रोशनलाल जिन्टा

पुस्तक : अपने होने का एहसास (कविता संग्रह)
लेखक : वरुण कुमार तिवारी
प्रकाशक : नमन प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य : रु० १२५.००

[illegible]

'शब्द!/क्यों हो मौन?/बज उठो/जीवन की/सम्पूर्ण सम्भावनाओं को लेकर' के साथ वरुण कुमार तिवारी की जीवनानुभवों की यात्रा प्रारम्भ होती है। सामान्य जीवन के प्रति गहरे लगाव को दर्शाती कविताओं के पीछे कवि के अन्तस की बेचैनी भी छिपी है। *'तब/अपने ही भीतर से/सुनाई पड़ जाती है मुझे/संभावनाओं की आहट'* की आत्माभिव्यक्ति जीवन के प्रति कवि की आस्था को व्यक्त करती है। संग्रह की कविताएँ एक ओर आम आदमी के दर्द को, सौन्दर्य को प्रतिस्थापित करती दिखती हैं, वहीं जीवन की सच्चाई की चोट भी सीधे हृदय पर करती हैं। *'कभी न आयी थी/अड़चन की ऐसी घड़ी/उलझे जीवन की/ऐसी मजबूरी'* आम आदमी के भीतर की अकुलाहट है। इस अकुलाहट, स्वानुभूति को कवि ने स्वयं शिद्दत के साथ महसूस किया है।

कवि अपनी कविताओं के माध्यम से आम जन की बात करता है, उसकी अकुलाहट को बयान करता है किन्तु वह मानवता को किसी कटघरे में नहीं बाँधता है, उसके लिए किसी प्रकार की परिभाषा निर्धारित नहीं करता है। *'अपने होने का एहसास', 'अपने होने का संघर्ष'*, के मध्य वह तमाम आस्था को अर्जित करना चाहता है। इसी आस्था-अर्जन में कवि को लगता है कि *'सब कुछ अतिरेक है ऊर्जा का/सब कुछ उत्सव है अस्तित्व का।'*

आम जीवन की परेशानियों के मध्य वह जिजीविषा को सार्थक सौन्दर्य प्रदान करने का प्रयास करता है। इस अभिव्यंजना के लिए वह बच्चों की स्वप्नीली दुनिया को सामने लाता है। स्कूल से घर लौटते बच्चों के उत्सव को कवि ने *'धरती पर/आकाश के तारों को/उगाने के लिए'* आते दिखा कर बच्चों के द्वारा ही स्वर्णिम विकास का सपना देखा है। *'बच्चों के कोयल संग गाने को', 'बच्चों के न उदास होने को'* कवि देखता है और *'बच्चे बुहार रहे हैं/हमारे जूतों के पास/फेंके हुए/मूँगफली और नारंगी के छिलके'* जैसी भयावह सच्चाई भी प्रकट करता है।

बदसूरत होती दुनिया की चिन्ता के बीच उसकी खूबसूरती का एहसास इन कविताओं में व्याप्त है- *'अपना सब कुछ/सौंपकर/कविता के हाथों में/बचा लेता हूँ/बच्चों की उन्मुक्त किलकारी/और दादी माँ के सपने।'* इस खूबसूरती के पीछे कवि का संशय मन प्रश्न भी उठाता है- *'मैं पूछता हूँ/क्या अब भी बची है/तुम्हारे पास/आदमी होने की स्मृति?'* और कोई जवाब न मिलने पर आर्तनाद कर बैठता है- *'रोशनी!/अब तो/रहम करो/और उड़ेल दो/कुछ किरणें/मेरी खाली सुराही में।'*

कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से संवेदनाओं को जगाने का प्रयास किया है। अपने अन्तस में झाँक कर आम आदमी के अन्तस में छिपे दर्द को उकेरा है। शब्दों के विशाल फलक के सहारे वह शून्यता को भरने की कोशिश में *'आम आदमी को ढूँढ़ने की कोशिश में लहुलुहान होती कविता'* को देख पाता है तो इसके साथ विश्वास भरी स्वीकारोक्ति भी करता है कि *'एक न एक दिन/अपने आकाश को/ढूँढ़ ही लेगी/कहीं न कहीं कविता', 'फिर भी स्थिर है/अपने पुरुषत्व पर विश्वास/जो बरसायेंगे/बरसाती बादल/श्रम-स्वेद से भीगे शरीर पर/ और उग आयेंगे/मुलायम हरी घास/हमारे कठोर तलवों के नीचे।'*

ये कवितायें आम जन का दर्द प्रकट करती हैं तो सभ्य दुनिया की निर्ममता की पड़ताल भी करतीं हैं। वर्तमान समाज की संवादहीनता, संवेदनहीनता के फैले विशाल मरुस्थल में वरुण तिवारी की कविताएँ संवाद का ताला खोलती हैं, संवेदना की फुहार बरसाती हैं।

❑ *वरिष्ठ प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हिमाचल प्रदेश)*

पुस्तक मंच

क्या तुम्हें इसका एहसास है?

❐ डॉ० आलोक रंजन

पुस्तक : कहीं कुछ दरक रहा [illegible] (कविता संग्रह) [illegible]

मूलचन्द सोनकर के काव्य में सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध कुछ कर गुजरने की चाह रहती है। इसी क्रम में वे सशक्त काव्य रचनाओं के माध्यम से अपने अन्तस का दर्द उकेरते भी रहते हैं। गज़ल संग्रह 'दर्द की लकीरें' के अतिरिक्त 'ग़ालिब मेरी नज़र में' के द्वारा वे अपनी प्रतिभा दिखा चुके हैं। समीक्ष्य काव्य संग्रह 'कहीं कुछ दरक रहा' के द्वारा वे झुलसते प्रश्नों और उनके सम्भाव्य समाधानों को प्रस्तुत करने का निश्छल एवं निर्दोष प्रयास करते नज़र आते हैं।

मूलचन्द सोनकर के दूसरे काव्य-संग्रह में भी गम्भीरतापूर्ण काव्य रचनाओं की बानगी देखने को मिलती है। विचारों की प्रौढ़ता, भाषा-शैली की गम्भीरता एवं विषयों की स्वीकार्यता उनकी काव्य-रचनाओं से आशाओं का सृजन करती दिखती है। आसपास की घटनाओं से मन का उद्वेलन कागजों में शब्द रूप में प्रस्फुटित होता है। संवेदना का आवेग सामाजिक सरोकारों के निहितार्थ साहित्य-सृजन का रास्ता चुनता है। *'मेरे अनजाने बहुत कुछ घट गया संसार में/मेरा अनचाहा बहुत कुछ बँट गया संसार में'* का अनजाना सा डर *'प्रश्नों के घेरे में प्रश्न'* खड़ा करता है- *'अकेले दम पर प्रश्न करने का/जोखिम/कितने लोग उठा सकने का साहस/कर सकते हैं।'*

कवि यक्ष प्रश्नों के पैदा होने को सुखद आश्चर्य न मान कर प्रश्न करने का साहस और उत्तर तलाशने का मानसिक सम्बल लेकर विचारों को उद्वेलित करता है, तरंगित करता है। यही साहस उसे अपने भीतर झाँकने की प्रेरणा देता है, जहाँ 'इनकार की चीख है', कुरुक्षेत्र है। इनकार की चीख में कवि चाहता है *'कि फट जाऊँ एकाएक/न जाने कितनी मुद्दतों से/भर रही है मेरे अन्दर/बेइन्तहा बर्द-ओ-गुबार।'* बावजूद इस प्रयास के आदमी के भीतर का कुरुक्षेत्र नहीं मिटता *'वह कभी वीरान नहीं होता/उस पर चलने वाले/युद्ध का अन्त नहीं होता/इसलिए ज्यादा भयानक है/ज्यादा वीभत्स है।'*

यह वीभत्सता कवि को आदमी के भीतर ही नहीं दिखती वरन् समाज में भी दिखती है। स्वार्थमयी सोच के चलते व्यक्ति की पहचान मानव के रूप में तो होती ही नहीं है, मरने के बाद उसकी लाश पर भी राजनीति की जाती है- *'क्योंकि उनकी लाशों की गिनती/आदमी से नहीं/वर्ग, जाति, धर्म, सम्प्रदाय से होती/और मानवता रोती है/और देखिये कब तक/यह रोना जारी रहेगा।'* यह असमंजस वर्तमान राजनीति पर गहरी चोट करता दिखता है। मूलचन्द जी यह चोट एक-दो स्थानों पर नहीं बल्कि अनेक स्थानों पर करते दिखे हैं। 'सिर्फ इतनी सी बात', 'व्यवस्था चालू आहे', 'सपने बेचते लोग', 'मौत को मासूम चाहिए', 'अन्तहीन त्रासदी', 'अन्त्यज की अनिवार्यता' आदि काव्य रचनाओं में इसकी गूँज देखी जा सकती है।

कहीं कुछ दरकने का अहसास कवि को होता है और इस अहसास से वह सभी को परिचित करवाना चाहता है। यही कवि की मूल भावना है, संवेदना का विकास है। समूचे काव्य-संग्रह की एक-एक पंक्ति किसी न किसी प्रकार का संदेश देती दिखती है। *'रोटियाँ मंहगी हैं तेरे राज्य में/दूरियाँ कल से बढ़ी हैं आज में/छीन कर धनवान ने निर्धन का सब/है लगाया अपने-अपने ताज में'* के द्वारा समाज की विद्रूप स्थिति का चित्रण करने से भी वह नहीं चूकता है।

इन सब विषमताओं, विद्रूपताओं आदि के बीच भी लेखक को सम्भावनाओं की राह दिखायी देती है। तभी तो वह *'आज का बचपन यदि जल जायेगा/कल सुनहरा पल कोई न आयेगा/ढूँढ़ता रह जायेगा लेकर चिराग/कुछ अँधेरे के सिवा न पायेगा'* के द्वारा चेतावनी देता हुआ समाज को बाल विकास के लिये जागरण के लिये प्रेरित करता है। कुछ दरकने को दिखाने की, उस दरकते को बचाने की पहल कवि की ओर से पुरजोर तरीके से की गयी है। मूलचन्द जी के उठाये गये प्रश्नों को सुधियों की बस्ती में खड़ा कर दिया गया है, अब देखना यह है कि इन प्रश्नों का समाधान क्या है? *'हो चुका जो भूत उसको भूलना बेहतर है अब/वर्तमान देखना, जीना यही बेहतर है अब।'*

❐ *प्रवक्ता-हिन्दी विभाग, मारवाड़ी कालेज, भागलपुर (बिहार)*

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स रूल्स १६५६ (सेन्ट्रल) के अन्तर्गत 'कृतिका' - हिन्दी अर्द्धवार्षिक के संबंध में स्वामित्व तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा-पत्र

(फार्म-४)

१.	प्रकाशन स्थल	:	१७६०, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
२.	प्रकाशन अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
३.	मुद्रक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		१७६०, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
४.	प्रकाशक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		१७६०, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
५.	संपादक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		१७६०, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
६.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों, तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव १७६०, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.

मैं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : जनवरी २००८

हस्ताक्षर

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

प्रकाशक

कृतिका परिवार

मुख्य परामर्शदाता एवं मानद संरक्षक

- प्रो. शिवनारायण यादव, कुलपति, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, (म. प्र.)
- प्रो. गिरिजाराय, प्रोफेसर हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ. प्र.)
- श्री चन्द्रेश कुमार यादव, आई. ए. एस., पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)
- डॉ. किशन यादव, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, अतर्रा, बाँदा (उ. प्र.)
- डॉ. दलवीर सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता, भूगोल विभाग, राजकीय महाविद्यालय, हांसी, हिसार (हरियाणा)

प्रमुख अप्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति

- डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव, ६४ लांगसवर्ड, ड्राइव, स्कारवोरो ओनटारियो, कनाडा, एम.आई.वी. ३ ए. ३
- डॉ. अजीत सिंह राही, पो. बॉ. ११६, हानउड २६८०, एन.एस. डब्ल्यु, आस्ट्रेलिया
- डॉ. तिलकराज चोपड़ा, हाज़ल वेग १५, ५३३४० मेकन्हाईम, जर्मनी
- डॉ. दिव्या माथुर, नेहरू सेन्टर, ८ साउथ आउडली स्ट्रीट, लंदन-डब्ल्यु १ के १ एच. एफ.
- श्री धनंजय कुमार, ७८०६ वेन्डीराइड लेन आनन्दले वर्जीनिया, यू. एस. ए. २२००३

विशेष परामर्शदात्री समिति

- डॉ. एन. डी. समाधिया, प्राचार्य, डी. वी. (पी. जी.) महाविद्यालय, उरई जिला-जालौन (उ. प्र.)
- श्री राजबहादुर यादव, सहायक कुलसचिव, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उ. प्र.)
- श्री महेन्द्र कुमार, सहायक कुलसचिव, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)
- श्री बी. आर. बुद्धप्रिय, संजय नगर आशापुरम, बरेली (उ. प्र.)
- डॉ. कालिका प्रसाद, संचालक प्रौढ़ शिक्षा, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म. प्र.)
- डॉ. देवदास टेम्भरे, सदस्य, अभिषद् (सिंडीकेट), सदस्य, अनुकम्पा समिति एवं वि. वि. प्रतिनिधि वीर कुंअर सिंह वि. वि. आरा (बिहार)

संपादकीय परामर्शदात्री समिति

- डॉ. कुमुदिनी एम. पाटील, हिन्दी-विभागाध्यक्ष एवं निदेशक, हिन्दी अनुसंधान केन्द्र नासिक रोड, महाराष्ट्र (महाराष्ट्र)
- डॉ. जार्जकुट्टी बट्टोत, रीडर (पी. जी.) एण्ड रिसर्च विभाग हिन्दी सेंट थामस कालेज पाला जिला-कोट्टयम (केरल)
- डॉ. हेमा देवरानी, रीडर हिन्दी ५८३ स्कीम नं. १० ए विवेक बिहार जैन मन्दिर के पास, अलवर, (राजस्थान)
- डॉ. रौशन कुमार, व्याख्याता-स्नातकोत्तर, हिन्दी-विभाग, शांति प्रसाद जैन महाविद्यालय, सासाराम, रोहतास (बिहार)
- डॉ. सुनीता शर्मा, हिन्दी विभाग, गुरूनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर (पंजाब) १४३००५
- डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, रीडर, संस्कृत विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग (पी. जी.) महाविद्यालय, पुखरायां, कानपुर देहात (उ.प्र.)
- डॉ. ज्योति सिन्हा, प्रवक्ता संगीत, भारतीय महिला (पी. जी.) कालेज, जौनपुर (उ. प्र.)
- डॉ. मधुरबाला यादव, प्रवक्ता हिन्दी विभाग, पी. पी. एन. कालेज, कानपुर (उ. प्र.)
- डॉ. हरिनिवास पाण्डेय, प्रवक्ता हिन्दी, रंगफ्राह शासकीय महाविद्यालय, चांगलांग (अरूणाचल प्रदेश)

- डॉ. सतीश यादव, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर (महाराष्ट्र)
- डॉ. शुभा जौहरी, रीडर इतिहास, विभाग-राष्ट्र संत तुकादोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर (महाराष्ट्र)
- श्री राघवेन्द्र सिंह राजू, ७ जाफलिन रोड, लखनऊ (उ. प्र.)
- डॉ. उर्मिला कुमारी, व्याख्याता, दर्शनशास्त्र विभाग, भूपेश गुप्त महाविद्यालय, रामलाल नगर भभुआ जिला कैमूर (बिहार)
- डॉ. आलोक रंजन, प्रवक्ता हिन्दी विभाग, मारवाड़ी कालेज, भागलपुर (बिहार)
- डॉ. विजय पाल, रीडर, राजनीति विज्ञान, बी. एस. एस. डी. कालेज, कानपुर (उ. प्र.)
- डॉ. प्रतिमा सिंह यादव, प्राध्यापक हिन्दी विभाग, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, भोपाल (म. प्र.)
- डॉ. उमारतन, रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)
- डॉ. हरिकेश सिंह यादव, प्रवक्ता, कीट विज्ञान, गोचर महाविद्यालय, रामपुर मनिहारान, सहारनपुर (उ. प्र.)
- डॉ. सत्येन्द्र कुमार दुबे, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, वाई. डी. कालेज, लखीमपुर, खीरी (उ. प्र.)
- डॉ. हरेन्द्र जी मौर्या, प्रवक्ता-इतिहास, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ोदरा (गुजरात)
- डॉ. ब्रजपाल सिंह, प्राचार्य, डी. एस. एम. कालेज, कांठ मुरादाबाद (उ. प्र.)

मुख्य सम्पादक मण्डल

- डॉ. चन्द्रमा सिंह, नयकागाँव जी. टी. रोड, सासाराम (बिहार)
- डॉ. कश्मीरी देवी, म. नं. १६५१/२१ हैफेड चौक, रोहतक (हरियाणा) ८२१११५
- डॉ. सुरेश एफ कानडे, ८, साईंधाम, अपार्टमेंट, दादा जी कोंडदेव नगर गंगापुर रोड, नासिक ४२२०१३ (महाराष्ट्र)
- डॉ. रोशन लाल जिन्टा, वरिष्ठ प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हिमाचल प्रदेश)
- डॉ. नीना शर्मा 'हरेश', व्याख्याता हिन्दी, आनन्द आर्ट्स कालेज, गुजरात (गुजरात)
- डॉ. शंकर लाल, एस.डब्ल्यु.बी.डी. महाविद्यालय भुस्का मेजा रोड, इलाहाबाद (उ. प्र.)
- प्रा. योगेन्द्र बेचैन, शिक्षक शिक्षा विभाग, डी. वी. (पी. जी.) कालेज, उरई जिला-जालौन (उ. प्र.)

विशेष सम्पादन सहयोग

- डॉ. कुमारेन्द्र सिंह सेंगर, प्रवक्ता-हिन्दी विभाग, गाँधी महाविद्यालय, उरई जिला-जालौन (उ. प्र.)
- श्री रणविजय सिंह, शोध छात्र, राजनीति शास्त्र, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)

सम्पादक

- **डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव**

१७६०, नया रामनगर, उरई जिला-जालौन २८५००१ (उ. प्र.) भारत

सम्पर्क : ०६४१५६२४८८८, ०६८८६५१७६५०, ०६६१६१२३७६३

०६४५०४८०८७०, ०६१८४-२२३२७१

Email : kritika_orai@rediffmail.com

Email : virendra_kritika@rediffmail.com

Email : lokkalyansansthanorai@rediffmail.com